ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

आलोचन दृष्टि
Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष-6 अंक-24 अक्टूबर-दिसम्बर, 2021

गुजरात में हिंदी की परंपरा : विशेष

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

आलोचन दृष्टि
वर्ष-6 अंक-24 अक्टूबर-दिसम्बर, 2021 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 6 अंक - 24 अक्टूबर-दिसम्बर, 2021

Year - 06 Volome - 24 October-December, 2021

गुजरात में हिंदी की परंपरा : विशेष

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**
संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–
सृजनश्री न्यास,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com
दूरभाष : 9451949951/7376267327

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- ❖ **प्रो0 गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- ❖ **प्रो0 चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- ❖ **प्रो0 नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- ❖ **प्रो0 सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- ❖ **प्रो0 कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- ❖ **प्रो0 माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालयए शिलांग, मेघालय।
- ❖ **प्रो0 प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- ❖ **प्रो0 दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- ❖ **प्रो0 आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- ❖ **प्रो0 उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- ❖ **प्रो0 एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- ❖ **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- ❖ **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- ➢ **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- ➢ **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- ➢ **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- ➢ **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- ➢ **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- ➢ **श्री राम कुमार मानिक,** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जिम्मेंदारी नहीं होगी और किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में होगा।

संपादकीय

भारतवर्ष में संस्कृत भाषा के बाद हिंदी ही राष्ट्रीय–एकता की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है और आधुनिक एवं स्वतंत्र भारत के बनने में इसी भाषा ने सभी भाषाओं से समन्वय स्थापित करते हुए, महती भूमिका निभाई है। आज भी हिंदी हिंदुस्तान की प्रतिनिधि भाषा के रूप में कार्य कर रही है। यह जान लेना आवश्यक है कि हिंदी 'एक राज्य' या 'एक क्षेत्र विशेष' की भाषा नहीं है, बल्कि तमाम प्रान्तीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं को– बोलियों के रूप में अपने में समाहित करते हुए, अपना स्वरूप निर्धारित करते हुए, आगे बढ़ी है। ज्ञान उसने संस्कृत भाषा से ग्रहण किया तो रस उसने तमाम आधुनिक भारतीय भाषाओं से। इस तरह हिंदी सबसे अलग होकर भी, सबसे जुड़ती चली गई और भारतीय चिंतनधारा की प्रतिनिधि भाषा के रूप में अपनी जड़े जमाती रही।

गुजराती और हिंदी भाषा के जुड़ाव को इस रूप में समझा जा सकता है कि हिंदी की उपभाषा पश्चिमी हिंदी (जिसमें 5 बोलियाँ हैं) और गुजराती भाषा, दोनों का आविर्भाव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इस आधार पर देखें तो पश्चिमी हिंदी की बहुत सी शब्दावली और 'व्याकरण का स्वरूप', गुजराती भाषा के निकट ठहरता है। इसके अतिरिक्त हम इसके जुड़ाव को– 'जैन धर्म के प्रचार–प्रसार में', 'अमीर खुसरो के फकीराना अंदाज में', 'मीराबाई की भक्ति–भावना में', 'दयानंद सरस्वती के वैदिक जागरण में', 'महात्मा गांधी के राष्ट्रीय जन–जागृति में', और 'स्वतंत्र भारत की आशा–आकांक्षा से जुड़े विचारों में', बराबर देख सकते हैं। यही इसके परस्पर सम्बन्धों को समझने के प्रमुख और महत्वपूर्ण आयाम भी हैं। आधुनिक भारतीय चिंतन में भले ही भारतीय भाषाओं की कुछ अपनी–अपनी जातीय अवधारणाएं और भौगोलिक सीमाएं रही हों, पर राष्ट्रीय सौहार्द के विकास में सभी ने अपनी महती भूमिका निभाई है, जिसे हमेशा हिंदी ने जोड़ने का कार्य किया है।

प्रस्तुत अंक, दो खंडों में बाँटा गया है। पहला खंड 'गुजरात में हिंदी की परंपरा' पर केन्द्रित है, जिसके अन्तर्गत 7 (सात) उत्कृष्ट शोध–लेखों ('हिन्दी–साहित्य को गुजरात की देन (सन्दर्भः आधुनिक काल के पूर्व)', 'राओ लखपत की ब्रजभाषा–काव्यशाला (चारणी साहित्य की पोषक संस्था)', 'गुजरात में हिन्दी की स्थिति', 'गुजरात में हिंदी की परंपरा', 'गुजराती रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद और उसकी भूमिका', 'रामकथा व्यास परम्परा में गुजरात के संतों का योगदान' एवं 'हिन्दी–साहित्य के विकास में गुजरात की भूमिका') को चयनित करके– प्रकाशित किया जा रहा है, जो 'गुजरात में हिन्दी' एवं 'हिन्दी में गुजरात' का एक मुकम्मल आइना प्रस्तुत करते हैं।

दूसरा खंड, सामान्य अंक की तरह महत्वपूर्ण 42 शोध लेखों को चयनित कर प्रकाशित किया जा रहा है। जिसके अन्तर्गत 21 शोध लेख 'हिंदी भाषा के' और 21 शोध लेख 'अंग्रेजी भाषा के' शामिल किये गये हैं। प्रस्तुत शोध–लेख मानविकी के विविध सरोकारों को अपने में समाहित करते हैं, जो संस्कृति, परंपरा, साहित्य, राजनीति, इतिहास, समाज, लोक–संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान एवं शिक्षा के– महत्वपूर्ण बिंदुओं को रेखांकित करते हैं। साथ ही साथ पर्यावरण, कोरोना जैसी तमाम चिंताओं की ओर हमारा ध्यान भी आकर्षित करते हैं और इन चिंताओं का– एक वैचारिक समाधान/निराकरण भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत अंक को संपादित करने में 'आलोचना दृष्टि' परिवार ने बिना किसी भेद–भाव के सक्रिय भागेदारी निभाते हुए मर्यादित समय में प्रस्तुत अंक के कार्य को पूरा किया है। सभी के सहयोग के प्रति मैं आभार प्रगट करता हूँ। अंत में, मैं सभी शोध–लेखकों के सहयोग के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और सुधी–पाठकों के स्नेह के प्रति अनुगृहीत हूँ और दृढ़ प्रतिज्ञ भी। शेष फिर...।

31 दिसम्बर, 2021।

विषयानुक्रमणिका

खण्ड-1
(गुजरात में हिंदी की परंपरा : विशेष)

1. हिन्दी-साहित्य को गुजरात की देन (सन्दर्भः आधुनिक काल के पूर्व) 1-15
डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी

2. राओ लखपत की ब्रजभाषा-काव्यशाला (चारणी साहित्य की पोषक संस्था) 16-19
प्रो. बलवंत शान्तीलाल जानी

3. गुजरात में हिन्दी की स्थिति 20-23
प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल

4. गुजरात में हिंदी की परंपरा 24-27
डॉ. सुशील जी. धर्माणी

5. गुजराती रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद और उसकी भूमिका 28-34
डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय

6. रामकथा व्यास परम्परा में गुजरात के संतों का योगदान 35-37
डॉ. सरोज गुप्ता

7. हिन्दी-साहित्य के विकास में गुजरात की भूमिका 38-41
डॉ. अमित कुमार ओझा

खण्ड-2

8. त्रिलोचन की कविता में लोक-जीवन और प्रकृति 42-45
डॉ. राजेश श्रीवास

9. महर्षि वाल्मीकि के दस्यु प्रकरण : एक विवेचन 46-49
डॉ. आर्यकुमार हर्षवर्धन

10. केदारनाथ सिंह की कविताओं में जनपदीय-चेतना 50-54
उमेश कुमार पर्वत

11. स्वतंत्रता सेनानी एवं शहीद कवि फौजी मेहर सिंह के लोककाव्य में राष्ट्रीयता के स्वर 55-58
राजेश कुमार एवं डॉ. के. डी. शर्मा

12. रीतिकालीन काव्य में स्त्री-विषयक दृष्टि 59-62
शुभम सिंह

13. भोजपुरी लोकगीतों में करुणा का स्वर और स्त्री 63-66
अश्वनी कुमार सिंह

14. लोक-संस्कृति एवं उसकी परम्पराएँ 67-70
डॉ. विश्वनाथ वर्मा एवं प्रो. उदयन मिश्र

15. सांस्कृतिक विमर्श और कोरोना से युद्ध (भारतीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में) 71-73
प्रो. निरंजन कुमार

16. बौद्ध धर्म की पुनर्स्थापना में अनागारिक धर्मपाल का योगदान 74-76
डॉ. अमिताभ तिवारी

17. राष्ट्र-निर्माण में महामना का योगदान 77-81
डॉ. ममता गुप्ता

18. महान् कर्मयोगी स्वामी विवेकानन्द 82-84
डॉ. ऋता दीक्षित

19. यज्ञ और सुख-शान्ति : एक अन्तर्सम्बन्ध 85-87
डॉ. वन्दना कुमारी

20. मुगल साम्राज्य में जागीरदारी प्रणाली की भूमिका 88-92
उमा शंकर तिवारी

21. जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के मध्य आकाँक्षाओं का संघर्ष 93-98
डॉ. सुनीता मंगला

22. विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों का समावेशन (एक समीक्षात्मक अध्ययन) 99-102
सुधीर कुमार तिवारी

23. उच्च शिक्षा का संदर्भ और योग 103-106
बजरंग भूषण

24. शिक्षक-शिक्षा में सार्वभौमिक मूल्यों की प्रासंगिकता 107-110
डॉ. अविनाश पारीक

25. श्रवणबाधित छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्तिगत रणनीतियाँ 111-115
धीरज कुमार भारती एवं डॉ. आर. एन. शर्मा

26. आर्थिक उदारवाद और सांस्कृतिक परिवर्तन 116-118
डॉ. सुषमा मिश्रा

27. पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता (राजस्थान राज्य...) 119-122
मांगी लाल

28. शिमला गाँव (खेतड़ी) के ऐतिहासिक कुओं का सिंचाई में योगदान 123-126
देवेन्द्र कुल्हार

29. शम्से अदब : पद्मश्री शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी (प्रथम पुण्यतिथि 25 दिसम्बर, 2021) 127-129
डॉ. फ़ाज़िल अहसन हाशमी

30. **India's Environmental Policy (Challenges of 2030 Target)** 130-135
Dr. Poornima Tripathi

31. **Vijay Tendulkar's Delineation of Women in his play *Silence! The....*** 136-139
Dr. Anupam Soni

32. **Happiness In The World Of The Visually Impaired : *A Review*** 140-143
Rumti Das & Dr. Indrani Ghosh

33. **The spirit of Resistance in Isabel Allende's *The House of the Spirits*** 144-146
P. Sarojini

34. **Religion and Spirituality** 147-150
Dr. G. Sowbhagya

35. **Understanding Dementia through the Prism of Literature** 151-154
Ms. Sarita Agarwal & Dr. Sangeeta Jhajharia

36. **Development of Science In Ancient India** 155-159
Dr. Shashi Kant Dwivedi

37. **Socio-culture Determinants of Female Foeticide in India : A Never....** 160-164
Dr. Prashant Dwivedi

38. **Feminine Sensibility in 'The Kept Woman and other stories' by...** 165-168
Dr. Rousonara Begum

39. **Constitutional Provisions for Marginalized Sections in India : A...** 169-172
Dr. Shailendra K. Tiwary

40. **Empowering Women Through Skill Development** 173-175
Dr. Neeraj Kumar

41. **Pedagogy for Inclusion: A quest for academic success in higher Education** 176-179
Alokita Vishal, Pathloth Omkar & Ankita Vishal

42. **Role of self-help groups in rural empowerment (A Review...)** 180-185
Dr. Reenu Rani Mishra

43. **Comparative Study of Levels of Aspirations in University Students...** 186-191
Aishwarya Prakash, Anita Singh & Anuradha Rai

44. **Misconceptions Related with Learning Disabilities among Teaching...** 192-197
Anuradha Rai, Anita Singh & Anupama Rai

45. **New Media and its Relation to Political Communication** 198-202
Dr. Amita

46. **Stress Management Through Yoga And Yogic Dietary Considerations** 203-206
Dr. Pratap Chandra Debnath

47. **Assessment of Nutrient Intake in Daily Diet of U.G. Girls Students...** 207-210
Rina Devi & Deepa verma

48. **The unexplored Rock art Site of 'Sindur' Village** 211-215
Dr. Nitesh Kumar Mishra, Anshu Mala Tirkey & Baleshwar kumar Besra

49. **Case Study: Developing Theory Of Mind In Students With Autism...** 216-221
Diana Lil Philip & Jayanti Pujari

हिन्दी–साहित्य को गुजरात की देन

(सन्दर्भः आधुनिक काल के पूर्व)

डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी*

1

'हिन्दी–साहित्य को गुजरात की देन' का आशय क्या है, यह एक गम्भीर विचार का प्रश्न है। कारण कि भारतीय गणराज्य के एक स्वतन्त्र प्रान्त के रूप में गुजरात को मान्यता सन् 1960 में मिली। अंग्रेजी शासन–काल से लेकर भारत के आजाद होने के बाद लगभग पन्द्रह वर्षों तक वह वृहत्महाराष्ट्र में शामिल था और अंग्रेजी शासन के पहले मुस्लिम–हिन्दू बादशाहों, राजाओं के शासन के दौरान उसकी राजनीतिक भौगोलिक सीमा–रेखा घटती–बढ़ती रही है। बावजूद इसके, गुजरात प्रान्त की एक मोटी–मोटी धारणा अंग्रेजी शासन के पहले थी और उसके समय में थी। अंग्रेजी शासन के दौर में नर्मद अपनी ख्यात कविता– 'जय जय गरबी गुजरात' में गुजरात की चारों सरहद का उल्लेख इस रूप में करते हैं–

उत्तरमां अंबामात, पूरबमां कालीभात,
छे दक्षिण दिशमां करंत रक्षा कुंतेश्वर महादेव,
ने सोमनाथ ने द्वारकेश ए पश्चिम केरा देव,
(नर्मद नां काव्यों–सं० जयंन पाठय, पृष्ठ–21)

फिलहाल भारतीय गणराज्य के अहिन्दीभाषी राज्यों से विशेष रूप से 'हिन्दी–साहित्य को देन' का शगल भाषायी आधार पर राज्यों के गठन के साथ खूब जोर–शोर से आकर्षक विज्ञापन के सामान सामने आने लगा। हिन्दी में दर्जनों की संख्या में ऐसे शोध–प्रबन्ध और लेख लिखे और लिखाये गये हैं, जो अहिन्दीभाषी राज्यों के साहित्यकारों की हिन्दी–साहित्य को देन पर है। मसलन हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, हिन्दी को उड़ीसा की देन, हिन्दी को पंजाब की देन, हिन्दी को गुजरात की देन, हिन्दी को कूर्मांचल की देन आदि। और इस प्रकार का शोधकार्य करने–कराने का प्रश्रय देने वाले ज्यादातर वे हिन्दीभाषी पढ़े–लिखे लोग हैं, जो अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में जाकर हिन्दी की रोजी–रोटी से जुड़े या फिर अहिन्दीभाषी क्षेत्र के वे हिन्दी–विद्यार्थी हैं, जिन्होंने हिन्दीभाषी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में शोधकार्य किया। हिन्दीभाषी अध्यापकों की अहिन्दीभाषी राज्यों में और अहिन्दीभाषी शोधार्थियों को हिन्दीभाषी राज्यों में आपसी तालमेल बैठाने के साथ अपनी खास पहचान बनाने के लिए आत्मसजग होकर ऐसा करना पड़ा।

आजादी के बाद अहिन्दीभाषी राज्य क्या, 'देन और दान' की हवा हिन्दी भाषी राज्यों की राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी आदि क्षेत्रीय बोलियों को लग गयी है और उनके समर्थकों ने जब जोर देकर विशेषकर खड़ी बोली के समर्थकों से यह कहना शुरू कर दिया है कि भाई अबतक हमने तुमको बहुत दिया है। अब हमें माफ करो, तुम्हारे साथ हमें नहीं रहना है। डॉ. रामविलास शर्मा की 'हिन्दी जाति' की धारणा के सामने एक ज्वलन्त प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया है। कुछ वर्षों से डॉ अमरनाथ (कलकत्ता) इस देन–दान और बाँट वाली मानसिकता के खिलाफ एक मुहिम चला रहे हैं। आश्चर्य की बात यह, जो लोग अपनी क्षेत्रीय भाषा के बँटवारे की अलग खिचड़ी पकाते रहे हैं, वही लोग दूसरी तरफ हिन्दी की मलाई भी उड़ाते रहे हैं। बहरहाल!

यह बात तो समझ में आती है कि गुजरात आदि अहिन्दीभाषी प्रदेश में लिखा गया और लिखा जा रहा हिन्दी–साहित्य, वह चाहे गुजराती साहित्यकारों के हिन्दी–प्रेम और सेवा की भावना से रचा गया हो, चाहे वह हिन्दीभाषी क्षेत्र में गुजरातियों की रोजी–रोटी के कारण उत्पादित हो या फिर गुजरात में आकर बसे या फिर स्थानान्तरण प्रकृतिवाली नौकरी के चलते आगन्तुक हिन्दी–साहित्यकारों द्वारा सृजित हो, उसपर विचार अवश्य होना चाहिए। हिन्दी की सांस्कृतिक एकता और संवर्द्धन के मद्देनजर एवं प्रादेशिक स्तर पर

* प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–हिंदी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद, गुजरात।

उसकी साहित्यगत, भाषागत पहचान और विशिष्टता के मद्देनजर भी। लेकिन, इसपर विचार और इसका मूल्यांकन 'देन–दान' वाली संकीर्ण कृपादृष्टि और अलगाववादी प्रान्तीय विशिष्टता की मानसिकता, दोनों से ऊपर उठकर करना बेहद जरूरी है। बेशक, आजादी के पहले हमारे अहिन्दी और हिन्दी भाषी पुरखे भारतीय सोच और भारतीय दिल रखते थे। वे लेन–देन, आदान–प्रदान वाली व्यापारिक मानसिकता और अलगाववादी क्षेत्रपरक भाषिक विशिष्टता के जोड़–घटाने, लाभ–हानि से ऊपर उठकर राष्ट्रीय–सांस्कृतिक एकता के परिप्रेक्ष्य में स्वभावतः सोचते थे। वे भाषायी साम्प्रदायिकता और पृथकतावादी भाषायी क्षेत्रीयता की संकीर्ण सोच से दूर अन्तर्देशीय मेल–जोल, भाईचारे के धरातल पर सोचते थे और इसमें प्रेम, सेवा और गौरव का अनुभव भी करते थे। इस मानसिकता में विशेष पेंच अंग्रेजी शासन के हस्तक्षेप से आया और स्वाधीनता–आन्दोलन के चरित्र को भी उसने काफी प्रभावित किया। गनीमत यह थी कि हम 'जय!जय! गरबी गरबी गुजरात' (नमर्द) 'आमारसोनार बांग्लादेश' (बंकिम), 'जय! जय! तमिलमाता' सुब्रह्मण्यम भारती) कहते हुए भी बंगला भारतीय, गुर्जरभारती, तमिलभारती की सकारात्मक सोच से सम्पन्न थे। इसीलिए सामूहिक रूप से भारत की आजादी, उसकी एकता, अखण्डता में विश्वास रखते थे और प्रयास भी करते थे। लेकिन, इसी के दौरान, विडम्बना यह है कि भाषा–साहित्य के मुद्दे पर हमारी साम्प्रदायिक, प्रान्तीय, हिन्दी–अहिन्दीभाषी चेतना नकारात्मक रूप लेती रही है और आजादी के बाद भाषाआधारित प्रान्तों के गठन से इसे और बल मिला है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इसका खुलेआम विरोध भी किया था।

सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्य भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रहा है और उनमें मेल–जोल और परस्पर आदान–प्रदान भी खूब हुआ है; लेकिन उनमें एकतरफा संकीर्ण कृपादृष्टिका लेश नहीं है और न तो अपने प्रदान की ऐसी आत्मसजग आत्मश्लाघा है कि हिन्दी आफत की मारी भिखारी है, उसे ही भाषायी चन्दे और दान की जरूरत है, इसलिए दिल खोलकर भाषा का दान दो। हिन्दी और गुजरात–जैसे अहिन्दीभाषी राज्यों के साहित्यिक और भाषिक रिश्तों की व्याख्या के लिए 'हिन्दी–साहित्य को गुजरात की देन' से बेहतर शीर्षक मौजूद हैं। मसलन–गुजरात के साहित्यकारों का हिन्दी–प्रेम या हिन्दी–साधना, गुजरात और हिन्दी का अन्तःसम्बन्ध तथा भाषायी दादागीरी की मानसिकता से मुक्त गुजराती–हिन्दी सन्तों, कृष्णभक्त कवियों या मात्र कवियों का तुलनात्मक अध्ययन आदि। आधुनिक काल के पहले गुजरात–जैसे अहिन्दीभाषी क्षेत्रों का हिन्दी से जो रिश्ता था और आजादी के बाद भाषा के आधार पर नवगठित राज्यों के हिन्दी से जैसे रिश्ते कायम हुए, उन्हें एक चश्में से देखना सही नहीं है। पहले के रिश्ते में कोई राजनीति नहीं थी और आजादी के बाद के रिश्ते में राजनीति है।

आजादी के पहले गुजरात और हिन्दी–प्रदेश के बीच धर्म, संस्कृति, साहित्य, संगीत, भाषा के स्तर पर अविच्छिन्न अन्तःसम्बन्ध रहा है और दोनों में अहेतुक आदान–प्रदान भी होता रहा है। पोरबन्दर के सुदामा उज्जैन में शिक्षा ग्रहण करते हैं और कृष्ण मथुरा से द्वारिका में बस जाते हैं। उत्तरप्रदेश के तराई इलाके–गोरखपुर, मगहर से शुरू करने वाले नाथ सम्प्रदाय की शाखा काठर पन्थी कच्छ और सौराष्ट्र में थी और गोरखनाथ की गुफा गिरनार में। काशी के कबीर भृगुकच्छ (भरुच) गुजरात में आते हैं और 100 साल के बाद नरसी मेहता और अखा के हृदय में अपनी जगह बना लेते हैं। अहमदाबाद के अखा गुजरात का धागा गोकुल और काशी से जोड़ देते हैं। दयाराम गुजरात को नाथद्वारा से मिलावाते हैं और मीरा, गाबरी बाई वृन्दावन को द्वारिका से मिला देती है। जामनगर के प्राणनाथ गुजरात का तार पन्ना–मध्यप्रदेश के बुन्देला शासक छत्रसाल से मिला देते हैं। वल्लभाचार्य, उनके पुत्र विट्ठलनाथ, गोपीनाथ ब्रज को, अयोध्या–क्षेत्र के स्वामी सहजानन्द हिन्दी–क्षेत्र को गुजरात, सौराष्ट्र से मिलवाते हैं और अहमदाबाद के दादूदयाल अपना पाँव राजस्थान जमाते हैं। पाटण पर अलाउद्दीन खिलजी की विजय (सन् 1297), दिल्ली पर तैमूर लंग का आक्रमण और कत्लेआम (सन् 1398) के चलते दिल्ली के आस–पास के सूफी अहमदाबाद, प्रभासपट्टण, मांगरोल, गोधरा, सूरत में अपना डेरा जमाते हैं और सन् 1573 में अकबर द्वारा गुजरात–विजय के बाद वे गूजरी को दकन में रोप देते हैं। वली गुजराती, वली दकनी और वली देहलवी एक ही शायर की रचनाशीलता की मिसाल है। धार्मिक–सांस्कृतिक, समाजसुधार,राजनीतिक, रोजीरोटी के कारण कृष्णदास, गोविन्द गिल्लाभाई, आनन्दशंकर ध्रुव, महात्मा गाँधी आदि गुजरात और हिन्दीभाषी क्षेत्र के बीच सेतु का कार्य

करते हैं। यही कारण है कि गुजरात और हिन्दी का धार्मिक–सांस्कृतिक–साहित्यिक सूत्र कमोवेश एक है। यहाँ तक कि दोनों भाषाओं के आदिमस्रोत काव्यरूप, छन्द ज्यादातर एक हैं। डॉ० महावीर सिंह चौहान का यह कहना बिल्कुल सही है कि "हिन्दी और गुजराती–साहित्य की प्राणधारा एक है। दोनों काव्यधाराओं की अनेकविध प्रवृत्तियों का उद्‌गम–केन्द्र एक ही है। दोनों भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों में भेद कम, समानता का तत्त्व ही अधिक है।" दयाराम और उनकी हिन्दी–कविता इसलिए संस्कृत अपभ्रंश की परम्परा को आत्मसात करके गुजराती के साथ ब्रज में लिखनेवाले जैन हिन्दू रचनाकार हों या अरबी–फारसी की विरासत लेकर गूजरी में लिखनेवाले गुजरात के सूफी कवि हों, वे बड़े शौक से, स्वेच्छा से अन्तर्देशी हिन्दी, ब्रज और खड़ीबोली दोनों में लिखते थे। उनके मन में देन और दान–जैसी बात नहीं थी। आधुनिक काल के पहले सभी आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हो रहा था और उनमें अलगाव से अधिक निकटता थी। इसीलिए वे बड़े मनोयोग से फारसी–ब्रज, संस्कृत–ब्रज, गूजरी–गुजराती का अपनी रचना में मिलान करते थे। पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी समेत अन्य भारतीय भाषाओं के पुराने साहित्य के बारे में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही है, वह यह कि "हमारी भाषा का पुराना साहित्य प्रान्तीय सीमाओं में बँधा नहीं है। अगर आपको हिन्दी–साहित्य का अध्ययन करना है, तो उसके पड़ोसी साहित्य, बंगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, नेपाली आदि के पुराने साहित्य–लिखित, अलिखित को जाने बिना घाटे में रहेंगे। यही बात बंगला, उड़िया, मराठी आदि पुराने साहित्य के बारे में भी ठीक है। हमारे देश का सांस्कृतिक इतिहास इस मजबूती के साथ अदृश्य कालविधाता के हाथों सी दिया गया है कि उसे प्रान्तीय सीमाओं में बाँधकर सोचा ही नहीं जा सकता। उसका एक टाँका यदि काशी में मिल गया, तो दूसरा बंगाल में, तीसरा उड़ीसा में चौथा महाराष्ट्र में मिलेगा और यदि पाँचवाँ मालावार या सीलोन में मिल जाय, तो आश्यर्च करने की कोई बात नहीं है।" (कल्पलता, पृष्ट–98) इसीलिए गुजरात–जैसे अहिन्दीभाषी प्रान्त के हिन्दी–साहित्य को हिन्दीभाषी क्षेत्र के साहित्य के पूरक रूप में देखना ज्यादा सही है, न कि देन और दान के रूप में। गुजरात का हिन्दी–साहित्य, हिन्दी–क्षेत्र के साहित्य का अपनी क्षेत्रीय विशिष्टता के साथ ऐसा पूरक है कि वह हिन्दी के मात्र विकास और प्रसार को सूचित नहीं करता, बल्कि उसकी पुष्टि और समृद्धि में भी सहभागी है।

2

आधुनिक काल के पहले गुजरात में गुजराती के साथ बड़ी मात्रा में उत्साह, प्रेम और आदर के साथ हिन्दी–ब्रजभाषा और खड़ीबोली–दोनों में साहित्य लिखा गया और लिखनेवाले सामान्यतः गुजराती थे। उसका प्रधान कारण यह है कि धार्मिक–सांस्कृतिक, व्यापारिक और राजनीतिक जरूरतों के चलते ब्रजभाषा और खड़ीबोली का समानान्तर विकास. आदिकाल के समय से ही अन्तर्देशीय भाषा के रूप में हुआ। भारतीय हिन्दू–जैन सांस्कृतिक विरासत वाले गुजराती कवियों ने गुजराती भाषा–लिपि के साथ ब्रजभाषा को पसन्द किया, तो अरबी–फारसी की सांस्कृतिक विरासत वाले गुजराती सूफियों और उनसे प्रभावित कवियों ने 'गूजरी' रंगवाली खड़ीबोली और फारसी लिपि में रचना अपने माकूल पाया। "एक तो हिन्दीभाषी प्रदेश का निकटवर्ती प्रदेश होने के कारण, दूसरे वल्लभ–सम्प्रदाय, स्वामिनारायण–सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय, जैन धर्म और सन्तमत के व्यापक प्रभाव के कारण, तीसरे गुजरात के मुसलमान बादशाहों और राजपूत राजाओं के हिन्दी–प्रेम के कारण गुजरात के अंचल में हिन्दी को फलने–फूलने का पर्याप्त अवसर मिला था।" (गुजरात का ब्रजभाषा–काव्य, लेखक–डॉ. अम्बाशंकर नागर, पृष्ठ 216)

बावजूद इसके, वह गुजरात का ब्रजभाषा का साहित्य हो या गूजरी में लिखा साहित्य, उसका स्वरूप हिन्दी–क्षेत्र की ब्रजभाषा और खड़ीबोली आधार वाली उर्दू से कुछ अलग है। एक तो वह बोलचाल वाली चलती हुई भाषा है, दूसरे वह गुजराती रंगत के कारण अपने स्वरूप में विशिष्ट भी है। यही कारण है कि गुजरात की ब्रजभाषा और खड़ीबोली के आधार वाली गूजरी के साहित्य के विकास और प्रसार की अभिन्न कड़ी मानते हुए उनकी प्रादेशिक भाषायी विशिष्टता का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

आधुनिक काल के पहले गुजरात में साहित्य की जितनी धाराओं का विकास और प्रसार हुआ, हिन्दी के भक्ति–काव्य की तरह उनकी प्रेरणा धार्मिक है। भक्ति–आन्दोलन की जो लहर दक्षिण भारत से उत्तर भारत में पहुँची थी, वही लहर कालान्तर में हिन्दी–क्षेत्र के भक्ति–आन्दोलन और भक्ति–साहित्य से नाभिनाल

बद्ध है। इसलिए दोनों अपने साहित्यसर्जन में सापेक्ष हैं। गुजरात का चाहे ब्रजभाषा का हिन्दी–साहित्य हो या 'गूजरी' में लिखा हिन्दी–साहित्य हो, दोनों भारतीय गुर्जरी हिन्दी हैं। 'गुर्जरी हिन्दी' इसलिए कि दोनों हिन्दी भाषाओं पर गुजरात और गुजराती भाषा की छाप है। आधुनिक काल के पहले प्रान्तीय भाषाओं से हिन्दी के मेल–जोल के अप्रतिम उदाहरण एक ओर पश्चिम भारत में गुजरात और महाराष्ट्र हैं और दूसरी ओर पूर्वी भारत में बंगाल है, जिसने ब्रजबुली साहित्य को जन्म दिया। पूर्वी भारत भी मध्यकाल में भक्ति के लिए हिन्दी–क्षेत्र के भक्ति–आन्दोलन से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। महाप्रभु चैतन्य और उनकी गौड़ीय परम्परा के दोनों आचार्य–रूप गोस्वामी और जीव गोस्वामी सीधे ब्रज–क्षेत्र के वृन्दावन से ताल्लुक रखते थे। इसके कारण हिन्दी–क्षेत्र का भक्ति–साहित्य हो या गुजरात का हिन्दी भक्ति–साहित्य दोनों भक्ति–आन्दोलन के विकास और प्रसार की अभिव्यक्तियाँ है। दोनों के सम्बन्धों की व्याख्या हमें देन–दान की मानसिकता से मुक्त होकर करना जरूरी है। दूसरी बात, दोनों का तुलनात्मक अध्ययन भी साहित्य की औपनिवेशिक मानसिकता को दरकिनार रखकर करना आवश्यक है। दो प्रदेशों की हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में सबसे बड़ा खतरा साहित्य और भाषा की इस औपनिवेशिक मानसिकता से है। गुजरात के ज्ञानी सन्तों, सम्प्रदायेतर कृष्णभक्त कवियों, वल्लभसम्प्रदाय में दीक्षित कवियों, जैन धर्म के कवियों, स्वामीनारायण सम्प्रदाय से सम्बद्ध कवियों, सूफी परम्परा के कवियों तथा सौराष्ट्र और भुज के कई राजा–रानियों और उनके आश्रित कवियों ने हिन्दी का अलख गुजरात में जगाये रखा। उन्होंने गुजराती भाषा और साहित्य की सेवा तो की ही, हिन्दी की ब्रजभाषा और खड़ीबोली को भी बड़ी बहन का मान दिया। दो भाषाओं की ऐसी हमजोली बहनों का प्रेम का उदाहरण दुर्लभ है।

ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक पूरा पश्चिमोत्तर भारत नाथ–पन्थियों से प्रभावित था। गुजरात भी नाथ–पन्थियों के प्रभाव से अछूता न था। कण्ठरनाथ सम्प्रदाय भुज में था और नाथ–पन्थियों में शामिल हो गया था। नाथ–पन्थी धर्मनाथ और गरीबनाथ का कच्छ से सम्बन्ध था। गोरखनाथ के अखाड़े और मठ गिरनार में स्थापित हुए। (नाथ सिद्धों की बानियाँ–सं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ0 9,10,13) नाथ योगी खड़ीबोली आधार वाली सधुक्कड़ी भाषा का व्यवहार करते थे। निर्गण मत के प्रवर्तक कबीर 16वीं शताब्दी के आरम्भ में गुजरात आये और उन्होंने सौ वर्षो के भीतर गुजरात के पिछड़े समाज से सम्बद्ध रचनाकारों को बहुत प्रभावित किया। नाथ–पन्थियों से निकट सम्बन्ध के चलते उनकी भाषा का ठाट खड़ीबोली–प्रधान है। कबीर के निर्गण सन्त–मत ने गुजरात के ज्ञानी सन्तों को तीन शताब्दियों तक प्रभावित किया; वस्तु, भाषा छंद सभी स्तरों पर। नटवर अम्बालाल व्यास का यह मानना सही है कि हिन्दी–क्षेत्र के "निर्गुण सन्तों ने जान–बूझकर संस्कृत आदि भाषाओं का त्याग किया था। इन सन्तों ने खड़ीबोली को अपना लिया और ये अपना उपदेश इसी भाषा में देते थे। प्रारम्भ में ही खड़ीबोली बहुत व्यापक थी। इसीलिए अहिन्दी प्रदेशों में घूमनेवाले साधु भी इसी भाषा का प्रयोग करते थे और उनके सम्पर्क से अहिन्दीभाषी प्रदेशों में हिन्दी बोली व समझी जाती थी। गुजरात, महाराष्ट्र एवं अन्यान्य अहिन्दी प्रदेशों में फकीरों तथा सन्तों के घूमने–फिरने और उपदेश देने से हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ती गयी।" (गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य–साहित्य को देन, पृष्ठ–11–12) नामदेव, कबीर, रैदास, दादूदयाल आदि सन्तों की वाणी की लोकप्रियता ने अखा, प्राणनाथ, प्रीतम, धीरो, जीवण, निरात, बापू साहब गायकवाड, भाणदास, रवि साहब, वीकम, मोरार साहब आदि को अपने रंग में रंग लिया।

गुजरात के ज्ञानी सन्तों में अखा (सत्रहवीं शताब्दी) पहले और सर्वश्रेष्ठ भक्त–कवि हैं। उन्होंने अपनी मातृभाषा गुजराती के साथ ब्रज रंगवाली और खड़ीबोली रंगवाली हिन्दी में भी खूब लिखा है। भूपेन्द्र त्रिवेदी लिखते हैं कि "अखा ने हिन्दी में काफी लिखा है। इनमें विशेष उल्लेखनीय है 'सन्त प्रिया' और सोलह सौ जितनी भिन्न–भिन्न अंगों मे विभाजित साखियाँ। अखा के हिन्दी पदों–भजनों की संख्या भी लगभग सवा सौ है। 'अमृत कला रमेणी,' 'एक लक्ष रमणी', 'ब्रह्मलीला कुण्डलिया' और सिंधी–पंजाबी मिश्रित 'झूलणा' लघु रचनाएँ हैं। उत्तर भारत के कबीर आदि सन्तों की वाणी का प्रभाव इन सब हिन्दी–रचनाओं में दिखाई देता है। आध्यात्म को विषय बनाकर अखा ने जो विपुल रचनाएँ की हैं, उसके कारण अखा को गुजरात के कबीर

अवश्य कह सकते हैं।" (अखा, पृष्ठ–14) उनकी हिन्दी–कविता के खड़ीबोली और ब्रजभाषा के रंगवाले दो नमूने यहाँ दिये जा रहे हैं।

खड़ीबोली– आनंद अद्‌भुत आया, अब मोहे आनंद अद्‌भुत आया।
किया कराया कुछु भी नाहीं, सहजे पियाजी कुं पाया।
देश न छोड्‌या वेष न छोड्‌या, ना छोड्‌या संसारा।
सूता नर निद्रा से जाग्या, मिट गया सपना सारा। (अखा, पृष्ठ 63)

ब्रजभाषा– रे मन! श्राम हृदे न पेहेचान्यों, कोन तू नींद सोयो रे गुमानी।
ओस कूं नीर त्यूं धन योवन, ज्यूं धन में बीजुरी मुसकानी।
ताही में मोती तू प्रोई ले प्रानी, सेइले संत सतगुरु ज्ञानी।
हंस कला गुरु देवे अखे के हे, न्यारा करे दूध, रहे पानी का पानी।

महामति प्राणनाथ (सन् 1618–1694) ने अपना अलग सम्प्रदाय स्थापित किया। वे पैदा हुए गुजरात में, लेकिन उनके कर्मक्षेत्र का विस्तार सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र सूरत से लेकर पन्ना (मध्यप्रदेश) तक था। पन्ना के प्रसिद्ध बुन्देला राजा छत्रसाल (सन् 1649–1731) के वे गुरु थे। उनके जीवन का उत्तरार्द्ध हिन्दी–क्षेत्र में बीता। गुजरात के हिन्दी–रचनाकारों में सबसे ज्यादा भाषाओं का मिश्रण प्राणनाथ की काव्यभाषा में है। उनकी रचनाएँ गुजराती, कच्छी, सिन्धी के साथ हिन्दुस्तानी (हिन्दी) में है। उन्होंने अपनी प्रकाश, कलश–जैसी गुजराती रचनाओं का अनुवाद सन् 1734 में हिन्दुस्तानी में किया था और उनकी हिन्दुस्तानी में पश्चिमी हिन्दी के दोनों रंग बृज और खड़ीबोली मिलते हैं। मसलन–

ब्रज– पहेले आप पेहेचान्यो रे साधो, पहेले आप पेहेचान्यो।
बिना आप चीन्हे परब्रह्म को कौन कहे मैं जान्यो।
पीछे ढूँढो घर आपनो, कौन ठौर ठेहरानो।
जब जग घर पावें नहीं अपनो, सो भटकत फिरत भरमानो।

खड़ीबोली– साधो हम देख्या बड़ा तमासा
विस्व देख भया मैं विस्मय, देख देख मोहे आवत हाँसा।
मरी–तेरी करते दुनीं जात है, बोझ ब्रह्मांड सिर लेवे।
पाउ पलक का नहीं भरोसा, तो भी सिर सरजन के न देवे।

प्रीतम, धीरो, भाण, रवि साहब गुजरात के ऐसे महत्त्वपूर्ण सन्त–कवि हैं, जिन्होंने गुजराती के साथ हिन्दी (ब्रज और खड़ीबोली) में रचनाएँ की है। दृष्टान्त के रूप में प्रीतम और रवि साहब की रचनाएँ प्रस्तुत हैं।

प्रीतम– मोरली मदन–मदमाती देखी आली, मोरली मदन–मदमाती
नौतम बाजत मनड़ा लाजत, परम मुदित रंगराती।
जड़ चेतन चेतन जड़ कीने, सुंदर स्याम सुहाती।
प्रीतम के स्वामी का अधर रस, प्रेम पीवत दिन राती।
(गुजराती सन्तो की हिन्दी–वाणी, पृष्ठ–101)

रवि साहब–रमता राम हमारा नाथ जी, रमता राम हमारा रे।
ज्यां ठेराऊं त्यां हरि नाही, ऐसा अपरमपारा रे।
कोई कहत है नाम निरंजन, को कहे हृदय प्रकाश रे।
कोई कहे नाशा के अग्र है, कोई कहे भृकुटि वास रे।
निराकार निर्लेप निरंजन, लेखे बिन सब लेख रे।
रबीदास ग्रही सतगुरु शरनां, पुरुष निराला पेखे रे।
(गुजराती के कवियों का हिन्दी काव्य–साहित्य को देन, परिशिष्ट–194)

खड़ीबोली और ब्रज पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ हैं। खड़ीबोली अपने भौगोलिक क्षेत्र के दक्षिणी छोर पर ब्रजभाषा के भौगोलिक क्षेत्र के उत्तरी सिरे से मिल जाती है। हिन्दी–क्षेत्र में नहीं, बल्कि अहिन्दी–क्षेत्र में

दोनों काव्य–भाषा के स्तर पर समानान्तर विकसित हुई और दोनों में एक–दूसरे के शब्दों की दूध और शक्कर की तरह मिलावट भी हुई। खड़ीबोली को गुजरात में फैलाने का काम नाथों, सूफियों और सन्तों ने किया, तो ब्रजभाषा को विशेष रूप से फैलाने में कृष्ण–भक्तों की भूमिका मुख्य है। गुजरात के अखा, प्राणनाथ, प्रीतम, रवि साहब आदि सन्तों के अपनी खड़ीबोली वाले पदों में मोहे, कछु, कुं, लेवे–देवे, आवत, पीवत, को (कौन) बिन– जैसे ब्रजभाषा के शब्द मिल जाते हैं। इसी प्रकार उनके ब्रंज के पदों में बिना, पीछे ढूँढ़ो–जैसे खड़ीबोली के शब्द मिलते हैं। गुजराती सन्तों की हिन्दी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता गुजराती शब्दों–पहेले, पेहेचान्यो, मोरली मनड़ा, ठेराऊ, ठेहरानो, केहे, हुदे आदि का प्रयोग। विचारधारा के स्तर पर ये सामाजिक भेद–भाव और पाखण्ड के विरोधी थे।

3

सन् 1297 में सिद्धपुर पाटण पर अलाउद्दीन खिलजी की विजय, उसके बाद मुहम्मद तुगलक द्वारा दिल्ली की जगह पर दौलताबाद को राजधानी बनाने, सन् 1398 में तैमूरलंग द्वारा दिल्ली के कत्लेआम और सन् 1415 में अहमद शाह द्वारा अहमदाबाद को अपनी राजधानी बनाने आदि कारणों से गुजरात सूफियों को बसने के लिए सुरक्षित प्रान्त बन गया। पंजाब, हरियाणा, विशेषकर दिल्ली से सूफियों की बहुत बड़ी जमात अहमदाबाद, गोधरा, प्रभास पट्टण, मांगरोल, वीरपुर, बड़ौदा, भरुच, सूरत आदि शहरों में बस गयी। उनकी शिक्षा–दीक्षा की भाषा और लिपि तो फारसी थी, लेकिन वे जिन क्षेत्रों से आये थे, वहाँ की बोलचाल की भाषा प्रधानतः खड़ीबोली थी। अपनी धर्म–सम्बन्धी पुस्तकों की रचना में उन्होंने इसी कच्ची भाषा का इस्तेमाल किया। उर्दू–लेखक इनके तर्जेकलाम की हिन्दी और प्रारम्भिक उर्दू मानते हैं और नटवरलाल व्यास भी इस बात को मानते हैं कि "फारसी के साथ सूफी मत भी गुजरात में आया और गुजरात के कई सूफी कवियों ने भी हिन्दी में पद्य–रचना की। साहित्य की दृष्टि से इन सूफी कवियों का अधिक मूल्य न होने पर भी गुजरात के सूफी कवियों की कविता कम महत्त्व की नहीं है। उर्दू के विद्वानों ने गुजरात के इन सूफी मत के कवियों की भाषा को उर्दू का प्रारम्भिक रूप माना है। पर, वस्तुतः इन कवियों की भाषा खड़ीबोली (हिन्दी) की परम्परा की एक कड़ी है। शेख बहाउद्दीन बाजन, काजी महमूद दरियाई, शाह अली जी 'गामधनी', हजरत मुहम्मद चिश्ती आदि गुजरात के प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने सूफी मत पर हिन्दी भाषा (खड़ीबोली) में काव्यों का प्रणयन किया है।" (गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य–साहित्य को देन, पृष्ठ–19)

ये सामान्यतः अपनी काव्य–भाषा को 'गूजरी' कहते हैं और कभी–कभार 'जबाने हिन्दी' और 'देहलवी'। दर असल गुजरात के सूफी कवियों की 'गुजरी' अमीर खुसरो के 'देहलवी' और दकन की 'दकनी' के बीच की अविच्छिन्न कड़ी है। कारण कि सन् 1573 में गुजरात पर अकबर की विजय के बाद अनेक सूफी परिवार दकन कूच कर गये और कई को तो खुद दकन के बादशाहों ने बुलाया। वहाँ जाने पर भी वे अपनी काव्य–भाषा को 'गूजरी' ही कहते रहे।

डॉ. अम्बाशंकर नागर ने 'गुजरात की हिन्दुस्तानी काव्यधारा' में गुजरात के 21 सूफी कवियों की रचनाओं को शामिल किया है, लेकिन 15 वीं शताब्दी से लेकर 19 वीं–20वी शताब्दी के काजी अनवर मियाँ 'ज्ञानी' तक इनकी संख्या चार दर्जन से भी ज्यादा है। फिर भी इनमें ख्यातनाम गूजरी रचनाकार ये हैं– शेख बहाउद्दीन बाजन (सन् 1388 –1406) की रचना 'खजानाएं रहमत' है। उनकी भाषा और दन्द हिन्दी है और विषय धार्मिक है। मसलन–

रावल–दवल कहीं न जाना! फटा पहनना रूखा खाना।
हम दरवेशन यह ही रीत। पानी लोरे होर मसीत।
बैठे ठंडी अच्छी छाँव। जो कोई देवे सोही खाँव।
बाजन जीव अमर बहे। मूवा न कहियो कोय।।
जो कोई ए मुवा कहे। मूवा एही होय।।

गूजरी के दूसरे महत्त्वपूर्ण कवि काजी महमूद 'दरियाई' (सन् 1468–1534) हैं। 'मिफ्ताहुल कुलूब', 'तोहत तुलकारी' उनकी रचनाएँ हैं। छंद–योजना और राग–रागनियाँ हिन्दी के निर्गुणियाँ सन्तों जैसी हैं।

मसनवी, गजल, जिकरियाँ इनकी प्रसिद्ध हैं। 'गूजरी का बड़ा ही मुहावरेदार, सरल और साफ–सुथरा रुप इनकी रचनाओं में मिलता है।' इनके 'उकदादर मलहार' का एक उदाहरण इस प्रकार है–

आयो री मुझ मिलन के काज। तुझ पे प्यार मेरा है आज।
तपती थी नित जपती थी। तुझ कारन भी खपती थी।
कह सकी तो मुझ राखे। जिन जिन आगे करज नाँखे।
छुपता रहता हूँ तुझ पास। क्यूं न मिले तू रासक रास।
महमूद परगट न कीजिए प्यार। लोक जाने तो आणे खार।

शाहअली जीव 'गामधनी' (सन् 1488–1563) गूजरी के तीसरे महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। 'जवाहिरे असरारुल्लाह' इनकी रचना है और उसपर गुजराती भाषा का विशेष प्रभाव है। एक गूजरी गीत में गुजराती का वाक्य अँगूठी में नगीने की तरह सुन्दर ढंग से 'गामधानी' ने इस्तेमाल किया है। उस गीत की टेक है–रे भाइयो हूँ सुँ करूँ?

ये जीव तो रहता नहीं, होर मन दुख सहता नहीं,
को जाए पियुं कहता नहीं, रे भाइयो हूँ सुँ करूँ?
मुझ जग कहे जमता नहीं, पियु बाज मुझ गमता नहीं
मन मांह ने समता नहीं, रे भाइयो हूँ सूँ करूँ?
कुछ बात है पन क्यूँ कहूँ, मन मांह की मन ले रहूँ
तू सुखकर हूँ दुख सहूँ, रे भाइयो हूँ सुँ करूँ?

गुजरी के चौथे महत्वपूर्ण कवि खूब मुहम्मद चिश्ती 'खूब' (सन् 1531–1614) हैं। इनकी फारसी में भी रचनाएँ हैं। सबसे खास बात है कि इन्होंने अपनी रचनाओं का नाम हिन्दी में–खूबतरंग, 'भावाभेद,' 'छंदछंदा' रखा है। 'शेखचिल्ली' कहानी का प्रारम्भिक रूप देखिए–

शेखचिल्ली के थे घर चार। चढ़े फिराने एकस बार।
ऊँचे चढ़कर देखा कीन। गिनती छपरे हुए सो तीन।
जिस पर बैठे आप फिराए। तिसकूं गिनती माँह न लियाए।
फिकर करे नी कहवें यूं। अंदाजा घर जावे क्यूं?
मन मने यूं किया विचार। दिल सेंती यूं दिया करार।

17 वीं–18वीं शताब्दी से गूजरी पहले की तुलना में अधिक प्रौढ़ हो गयी और इसके कारण मसनवी और गजल के विकास में बड़ी सहायता पहुँची। गजल की तुलना में मसनवी में भारतीय रंगत थी और उसकी भाषा भी अपेक्षाकृत सरल थी; इसलिए वह अधिक लोकप्रियता अर्जित कर सकी। इस दौर के प्रसिद्ध गूजरी कवियों में मिस्कीन गुजराती, मुहम्मद अमीन गुजराती और वली मुहम्मद 'वली' (सन् 1641–1744) के नाम लिये जा सकते हैं। मिस्कीन गुजराती की जंगनामा (सन्1681), अमीन गुजराती की 'युसुफ जुलेखा' (सन् 1697) प्रसिद्ध मसनवियाँ हैं। अमीन गुजराती की मसनवी भाषा, कलात्मकता–दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। उससे एक नमूना देना पर्याप्त होगा–

भरोसा कुछ नहीं यह बेवफा का, नहीं मालूम खेल इस पुर दगा का।
जिने दुनिया सेंती दिलकूँ लगाया, उसने आखिर नफा जरनि पाया।
जो आया जग में, उस आखिर है जाना, अबस दुनिया के सेंती दिल लगाना।
हजारा साल जो जीवे जगत में, तो भी आखिर वो डूबे इस रगत में।
देखो ये है जगत दरिया रगत का, भरोसा कुछ न करना इस जगत का।

वली मुहम्मद 'वली' अहमदाबाद, दकन और दिल्ली से अपने सम्बन्धों के कारण क्रमशः वली गुजराती, वली दकनी, वली देहलवी तीनों है। जहीरउद्दीन मदनी की वली गुजराती नाम से पुस्तक है। वली की प्रारम्भिक शायरी पर गूजरी की रंगत तो है ही, उसकी रवानगी भी। फारसी की रंगत की शायरी उत्तरार्द्ध और वह भी दिल्ली की हवा लगने के बाद की है। गूजरी की रंगतवाली एक गजल देखिए–

प्रीत की कंठा जिन्ने ली (विरागी जो कहाते है) उसे घर–बार करना क्या?
हुई जोगन जो कुइ पी की उसे संसार करना क्या?

जो पीवे नीर नैनो का, उसे क्या काम पानी सूँ?
जो भोजन दुख का करती है उसे आहार करना क्या?

सूफी कवियों की गूजरी का मूल ढाँचा तो खड़ीबोली का है, लेकिन वह रूप–रचना के स्तर पर सबसे ज्यादा ब्रज से प्रभावित है, कारण दोनों पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ है। दोनों में विशेष फर्क यह है कि खड़ीबोली आकारान्त और ब्रजभाषा ओकरान्त है। दरवेशन (संज्ञा); तिसकूँ, एही, को (सर्वनाम); कहियो, आयो, कहवे, देवे, पीवे, खांव कीन, अहे (क्रिया); कूं, सेंती, सूं (कारक चिन्ह) ब्रजभाषा के हैं और गूजरी के वाक्यों में घुस आये हैं। पंजाबी से 'होर' (और) 'बाज' (बिना), हजारां (हजारों) और गुजराती से हूँ, सूँ (क्या), नाँखे (डालना), आणे (लाना) शब्द भी उसके हिस्से बन गये हैं। खड़ीबोली के पुराने रूप 'जिन्ने' (जिन्होंने), कुइ (कोई) भी उसमें बचे हुए हैं। खड़ीबोली वाली गूजरी से ब्रजभाषा, पंजाबी, गुजराती के रूप आगे चलकर झड़ जाते हैं।

4

गुजरात और राजस्थान आधुनिक आर्यभाषाओं के उदय के पहले से जैन धर्म के प्रधान क्षेत्र रहे हैं। जैन कवियों ने अपभ्रंश में विपुल रचनाएँ की हैं। परवर्ती अपभ्रंश के जैन कवियों की रचनाएँ भाव–भाषा–शैली हर दृष्टि से हिन्दी के निर्गुण सन्तों के बहुत निकट पड़ती हैं। "आठवीं–नवीं शती के जैन मरमी कवि जोइंदु (योगीन्दु या योगीन्द्र) के दो ग्रन्थ 'परमात्म प्रकाश' और 'योगसार' दोहों में उपलब्ध हुए हैं। इन दोहों का स्वर नाथ योगियों के स्वर से इतना अधिक मिलता है कि इनमें से अधिकांश पर से यदि जैन विशेषण हटा दिया जाय, तो यह समझना कठिन हो जायगा कि ये निर्गुण मार्गियों के दोहे नहीं हैं। भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से ये दोहे निर्गुणिया साधकों की श्रेणी में ही आते हैं। इसी प्रकार दसवीं शताब्दी के कवि रामसिंह की रचना 'पाहुड़ दोहा' प्राप्त हुई है, जो भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उसी श्रेणी में आती है। इन दोनों में कबीर, दादू आदि की परवर्ती दोहाबद्ध रचनाओं की परम्परा स्पष्ट होती है।" (हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास–हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ–28) जैन कवियों की यह परम्परा आगे भी बढ़ती रही और उसमें आनन्दघन और किशनदास की रचनाएँ भाव और भाषा की दृष्टि से हमारा विशेष ध्यान खींचती हैं। ये दोनों कवि सत्रहवीं शताब्दी के हैं इन्होंने ब्रजी छौंक वाली खड़ीबोली में रचनाएँ की हैं। आनन्दघन की 'आनन्दघन चौबीसी' तो गुजराती में है, लेकिन 'आनन्दघन–बहोतरी' खड़ीबोली हिन्दी में है; लेकिन उस पर यत्र–तत्र ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट है; कारण कि गुजरात में खड़ी और ब्रज समानान्तर विकसित हो रही थी। नमूने के तौर पर यह उदाहरण देखा जा सकता है–

अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारण मिथ्यात् दीयो तज, क्युं कर देह धरेंगे।
राग–दोस जग बंध करत है, इनको नास करेंगे।
मर्यो अनंत कालतें प्राणी, सो हम काल हरेंगे।
देह विनाशी हुँ, अविनाशी, अपनी जाति पकरें गे।
नासी जासी हम थिर वासी, चोखे ह्वै निखरेंगे।
मर्यो अनंत बार बिन समज्यो, अब सुख दुख विसरेंगे।
आनन्द घन निपट निकट अक्षर दो, नहिं समरे सो मरेंगे।

(गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य–साहित्य को देन, परिशिष्ट, पृष्ठ–250)

छूसरे महत्वपूर्ण जैन कवि किशनदास हैं, जिन्होंने अपनी बहन रतन बाई की मृत्यु पर 'किशन बावनी' या 'उपदेश बावनी'– जैसी वैराग्यपूर्ण रचना की। आनन्दघन की तरह उनकी भाषा की सामान्यतः ब्रज और खड़ी की गंगा–जमुनी भाषा है। उदाहरण के लिए–

झूठी काया, माया के भरोसे भर माया लाया
माया हूँ गुमाया पर मूरखता पाया है।
ज्यों ज्यों समझाया त्यौं त्यौं जात मुरझाया
सुरझे न सुरझाया ऐसा आप उरझाया है।

काचा पाया पाया तातै कौन चैन पाया पर,
सांचा साइ सांचा जो किशन गुन गाया है।
दगा दिया काया जानि जमकों बुलाया आनि
काल बाज खाया तब याद प्रभु आया है।
(गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य–साहित्य को देन, पृष्ठ 265–66)

ब्रजभाषा के रंग के भी कुछ छंद हैं, मसलन–

फूट्यो फाट्यो ख्वार जाके खुले खट चार द्वार।
पिंजरो असार यार तामें पंखी पौन सो।।
आवत पिछानियें न जाहि जात जानियें न।
बोले तातें मानियें सु डौले रुचि रान सो।।(वही,पृष्ठ–267)

आनन्दघन की कविता का भाषायी ढाँचा प्रधानतः खड़ीबोली हिन्दी का है और विषय–निर्वचन तो कबीर और अखा जैसा है। उनकी काव्यभाषा में जहाँ–तहाँ ब्रजभाषा के सर्वनाम–हूँ, कोउ और क्रियाएँ–दीयो, मर्यो, समज्यो, रमे, हवै, कहावत आ जाती है, तो कभी–कभार गुजराती संज्ञा (कान) और क्रियाएँ–करशे, जासी (जायेगी), समरे। किशनदास की काव्यभाषा की खूबी यह है वह खड़ीबोली की रचनाओं में खड़ीबोली का पूरा रंग दिखाती है और ब्रजी की रचना में ब्रजभाषा का। कवित्त में वे दोनों भाषाओं को साधने में माहिर हैं। खड़ीबोली की रचना में वे कभी–कभार अनजाने ब्रजभाषा की छौंक, जैसे–आनि, जानि, जम आदि लगा देते हैं।

5

द्वारिका, डाकोर, प्रभास–पट्टण से कृष्ण के प्रत्यक्ष सम्बन्ध के चलते गुजरात में कृष्णकथा बहुत पहले से लोकप्रिय रही है। जैन धर्म के अपभ्रंश कवियों, नरसी मेहता और मीरा–जैसे सम्प्रदाय निरपेक्ष कवियों की रचनाओं से इसका अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है। लेकिन गुजरात के हिन्दी–गुजराती कृष्णकाव्य को जवानी मिली गुजरात में बल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ और गोपीनाथ के बार–बार आने से। वल्लभाचार्य ने अपने बड़े बेटे गोपीनाथ की शादी भी गुजरात में ही की थी। डॉ. जगदीश गुप्त लिखते हैं कि "गुजराती साहित्य पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव वस्तुतः सत्रहवीं शती में पड़ना प्रारम्भ हुआ। इस समय तक वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ अनेक बार गुजरात जा जुके थे और अनेक स्थलों पर उनकी बैठकें स्थापित हो चुकी थीं। वल्लभाचार्य अपने पर्यटन में सूरत, भरुच, मूर्वी, नवानगर, खँभालिया, पिण्डतार, डाकोर, द्वारिका, जूनागढ़, प्रभास, नरोड़ा गोधरा आदि स्थानों पर गये– ऐसा माना जाता है। वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ के प्रचार का मुख्य क्षेत्र गुजरात ही था।" (गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण–काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ–474)।

गुजरात के गुजराती और ब्रजभाषा–काव्य में हिन्दी–क्षेत्र के ब्रजभाषा कृष्ण–काव्य जितनी सम्प्रदायगत विविधता नहीं है, कारण कि वल्लभ–सम्प्रदाय के साथ राधावल्लभी, हरिदासी, निम्बार्क और गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रधान केन्द्र ब्रज–क्षेत्र के गोकुल और वृन्दावन रहे हैं और उनमें कमोवेश महत्त्वपूर्ण भक्त–कवि होते रहे हैं। गुजरात में कृष्णभक्ति का इतना महत्त्वपूर्ण केन्द्र स्थापित नहीं हो पाया। फिर भी, हिन्दी ब्रज–क्षेत्र के कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में वल्लभ–सम्प्रदाय ने गुजरात के लोगों और कवियों को खासतौर पर प्रभावित किया। "गुजरात ने पुष्टिमार्ग के विकास में उसे स्वीकार करके ही योग नहीं दिया, वरन् तत्सम्बन्धी साहित्यनिर्माण में भी भाग लिया।... युगों पुरानी गुजरात और ब्रज की अभिन्नता पुष्टिमार्ग के प्रसार के साथ चरम सीमा पर पहुँच गयी। पुष्टिमार्ग के पहले के सम्प्रदायों का गुजरात पर जो प्रभाव पड़ा, वह इतना पर्याप्त नहीं था कि साहित्य–सृजन को उस प्रकार प्रभावित कर सकता जैसे कि ब्रज ने किया है। यही कारण है कि पुष्टिमार्ग के प्रवेश के पूर्व साम्प्रदायिक प्रेरणा से लिखा गया साहित्य गुजराती में उपलब्ध नहीं होता।" (वही, पृष्ठ–477)

विट्ठलनाथ के शिष्य भीम की 'रसिक गीता', गोकुलनाथ के शिष्य केशवदास की 'मथुरा लीला' और बैकुण्ठनाथ की रचनाओं पर पुष्टिमार्ग का सीधे असर पड़ा। इनसे भी अधिक प्रभाव कृष्णदास, जो विट्ठलनाथ के शिष्य थे, की रचनाओं पर पुष्टिमार्ग का पड़ा, जो अष्टछाप के कवियों में से एक थे। सबसे सुखद आश्चर्य ज्ञानी

सन्त परम्परा के अखो, जिन्होंने प्रारम्भ में गोकुलनाथ को गुरु बनाकर बाद में उन्हें छोड़ दिया। (गुरु कर्या में गोकुलनाथ, गुरु मुजने घालीनाथ) की रचनाओं पर पड़ा। इसी प्रकार प्रीतम और त्रिकम की रचनाओं पर वल्लभ–सम्प्रदाय का बड़ा प्रभाव है। गुजरात में कृष्णभक्ति के व्यापक प्रभाव का यह चमत्कार है कि हर धारा के भक्त कवि सगुण–निर्गुण भेद का सामान्यतः अतिक्रमण कर जाते हैं।

गुजरात के पुष्टमार्गी ब्रजभाषा कवियों में कृष्णदास के बाद सबसे प्रतिभा और प्रभावशाली कवि दयाराम (सन् 1777–1853) हैं। वे हमारे रीति–काल के कवियों के समकालीन भक्त–कवि हैं। उनकी सतसई को प्रकाश में लाने का काम डॉ. अम्बाशंकर नागर ने किया। डॉ. रघुनाथ भट्ट ने उसका विशेष अध्ययन किया है। लेकिन दयाराम की सम्पूर्ण हिन्दी–रचनाशीलता पर सबसे गम्भीर कार्य डॉ. महवीर सिंह चौहान का है और वह दयाराम के काव्य की गुजराती–आलोचना की एकांगिता को दूर करता है। दरअसल गुजराती आलोचकों का अध्ययन सामान्यतः दयाराम की गुजराती–रचनाओं तक सीमित रहा है। दयाराम की हिन्दी–रचनाओं के बारे में उनकी टिप्पणियाँ प्रायः सूचनात्मक और अनुशंसात्मक हैं। डॉ. महावीर सिंह चौहान का इस सम्बन्ध में यह कहना बिल्कुल जायज है कि "दयाराम का हिन्दी–काव्य उनके गुजराती–काव्य का रूपान्तर न होकर स्वतन्त्र सृजन है।... ये एक–दूसरे के पूरक हैं, एक–दूसरे की अनुकृति नहीं। इसलिए समग्र रुप में दयाराम के रागात्मक बोधात्मक प्रवृत्तियों का अध्ययन तभी सम्भव है, जब उनकी गुजरात और हिन्दी दोनों ही भाषाओं की रचनाओं का समान रुप से महत्त्व स्वीकार किया जाय।" (दयाराम और उनकी हिन्दी–कविता, पृष्ठ–07)

आधुनिक काल के पहले हिन्दी–अहिन्दी क्षेत्र के कवियों के प्रति हमारी आधुनिक आलोचकीय चेतना टोबा टेक सिंह वाली ग्रन्थि का शिकार रही है। टोबा टेक सिंह की विडम्बना तो जीवन में धर्म और साम्प्रदायकिता के आधार पर घटित होती है, लेकिन आधुनिक साहित्य में वह जाने–अनजाने भाषा और लिपि के मद्देनजर भी घटित होती रही है। आधुनिक काल के पहले के वे रचनाकार, जो दो या दो से अधिक भाषाओं को एक लिपि में लिखते हैं, उनके साथ ऐसा व्यवहार आलोचकों ने किया है और उनके साथ भी, जो एक ही भाषा को दो लिपियों में लिखते रहे उनके साथ भी। पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, दकन और हिन्दी–क्षेत्र के कवियों के साथ हमारी आधुनिक आलोचकीय चेतना सामान्य भाषा और लिपि के मुद्दे पर विभाजित और संकीर्णता की हद तक प्रान्तीय अस्मितावादी रही है, जबकि कवियों की चेतना अधिक उदार रही है। इसी के चलते अखा, दयाराम– जैसे बड़े गुजराती–हिन्दी रचनाकार के ऐसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं कि गुजराती रचनाओं की आलोचना गुजराती आलोचकों का अभिप्रेत बन जाता है और दयाराम की हिन्दी–रचनाओं का मूल्यांकन हिन्दी–आलोचकों का। इस प्रकार अखा, दयाराम के समग्र रचनात्मक व्यक्तित्त्व को भाषा के आधार पर दो टुकड़ों में बाँट दिया जाता है। यह सीमा अखा, दयाराम की रचनाशीलता की नहीं, बल्कि हमारी आधुनिक गुजराती–हिन्दी आलोचना की है। दयाराम गुजरात के और गुजराती के बड़े भक्त–कवि हैं और ब्रजभाषा के भी प्रभावशाली कवि हैं। इसलिए रचनात्मक स्तर पर उनकी साहित्यिक चेतना एक ओर गुजरात की भौगोलिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आबा–ओ–हवा से बँधी है और दूसरी तरफ पुष्टिमार्गीय होने के कारण ब्रज प्रदेश के ब्रजभाषा–काव्य और रीतिकालीन हिन्दी–कवियों के समकालीन होने के कारण उसके भावबोध और शैली से भी। दयाराम के पहले वाले पक्ष को गुजराती आलोचक ठीक से जानते–समझते रहे हैं। दरअसल गुजरात में जो साहित्य पुष्टिमार्ग की प्रेरणा से रचा गया, उसपर निश्चय ही ब्रज की विचारधारा का प्रभाव है, क्योंक सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र ब्रज ही बना रहा। इसी तरह गुजराती के भालण, नरसी, केशवदास, लक्ष्मीदास, ब्रह्मदेव के रचनाओं में जो ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है, वह भी निश्चित रूप से ब्रज का प्रभाव कहा जा सकता है।.... भाषा और सम्प्रदाय, इन दो विन्दुओं को मिलाकर एक रेखा खींची जा सकती है, जिसकी गति स्पष्टतया ब्रज से गुजरात की ओर है। वृन्दावन के कृष्णभक्ति के मुख्य केन्द्र होने के कारण प्रभाव का प्रवाह मथुरा से द्वारिका की ओर प्रवाहित हुआ ऐसा गुजराती विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।" (गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण–काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ–481) लेकिन दयाराम की रचनाओं पर रीतिकालीन प्रभाव को न देख पाने के कारण उनकी आलोचना में असंगति आ गयी है। "यदि गुजरात के इस कवि को हिन्दी के रीतिकाल के साथ जोड़कर देखा गया होता, तो गुजराती के विविध आलोचकों (नर्मद, गोवर्द्धनराम त्रिपाठी, कन्हैयालाल मुंशी) में दयाराम के श्रृंगार को लेकर किसी प्रकार के भटकाव के लिए अवकाश नहीं रह जाता।" (दयाराम और उनकी हिन्दी–कविता, पृष्ठ–10) दयाराम की हिन्दी–कविता से गुजराती–आलोचना के इस तिर्यक सम्बन्ध का एक कारण था कि दयाराम की हिन्दी–रचना हिन्दी–क्षेत्र की उस समय की रचनाशीलता से सम्बद्ध थी और

गुजराती–आलोचकों की आलोचना–दृष्टि बम्बई शिक्षा–केन्द्र वाले पुनर्जागरण के आलोक में विकसित हुई थी। वे भक्ति को जिस प्रकार हिन्दी के ब्रज–क्षेत्र से जोड़ पाते थे, गुजरात में रीतिकावियों की परम्परा विशेष विकसित न होने के कारण और हिन्दी की रीतिकालीन परम्परा का ज्ञान न होने के कारण, दयाराम के रीतिकाल से सम्बद्ध पक्ष को हिन्दी से जोड़कर नहीं देखा पाये।

हिन्दी ब्रजप्रदेश के पुष्टमार्गी कवि हों या गुजरात के पुष्टमार्गी गुजराती हिन्दी–कवि दोनों की कृष्ण–लीलाओं का स्रोत भागवत् पुराण था, लेकिन दोनों ने कृष्ण–काव्य की रचना अपने–अपने प्रदेश की संस्कृति, भूगोल और व्यवहार के अनुरुप की। जगदीश गुप्त का यह कहना बिल्कुल वाजिब है कि "सभी कवियों ने अपने आराध्य को लोकचेतना का केन्द्र बनाने के लिए अपने चारों ओर की भूमि के जीवन से विविध तत्त्व संचित करके उनसे कृष्ण का श्रृंगार किया। समस्त कृष्ण–काव्य वास्तव में अपने व्यक्त रूप में लोकोन्मुखी काव्य है। उसकी रचना भी ऐसे वर्ग के कवियों द्वारा हुई है, जिन्होंने लोकजीवन से अपना सम्बन्ध कभी विच्छिन्न नहीं किया।" (गुजराती और ब्रंजभाषा कृष्ण–काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ–480) गुजरात का पुष्टमार्गी कृष्ण–काव्य लोकोन्मुखी है, जबकि हिन्दी–क्षेत्र के ब्रजभाषा का रीतिकाल का काव्य राजाश्रयी होने के कारण लोक से कटा हुआ है। गुजराती पुष्टमार्गी कृष्ण–काव्य की प्रेरणा और केन्द्र भक्ति है, इसलिए उसमें रीतिकालीन अलंकारप्रियता, मांसलता, भाव की कृत्रिमता नहीं है। हाँ, श्रृंगार के प्रति विशेष आकर्षण यद्यपि दोनों में समान रूप से है। बावजूद इसके हिन्दी–क्षेत्र के ब्रजभाषा के कृष्ण–काव्य और गुजरात के गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण–काव्य में कुछ मूलभूत अन्तर भी है। हिन्दी–क्षेत्र के कृष्ण–भक्त कवियों ने कृष्ण के गोकुल, वृंदावन और मथुरा–चरित्र को विशेष महत्व दिया है, जबकि गुजरात के कृष्ण भक्त कवियों ने उनके सम्पूर्ण चरित्र– यानि द्वारिका को भी उसमें शामिल कर लिया है। इसके चलते उनके काव्य में दो नयी बातों का इजाफा हो गया है। एक तो उन्होंने द्वारिकावासी कृष्ण के राजसी जीवन को महत्व दिया, दूसरे कृष्ण की वृन्दावन–रामलीला का विस्तार द्वारका में उनकी रानियों तक कर दिया। दरअसल ब्रज–क्षेत्र की लोकसंस्कृति यदि हिन्दी ब्रजभाषा की धुरी है, तो गुजरात की लोकसंस्कृति गुजरात के गुजराती और हिन्दी कृष्ण–काव्य की। गुजराती खान–पान, वेष–भूषा, आभूषण, भाषा, लोकगीत, छंद का असर उस पर बहुत स्पष्ट है। रूक्मिणी के लिए रूक्मिणी बाई, किनारे के लिए कांठे, हमची वाद्य, गरवी गीत इसी कारण उसमें आये हैं। दयाराम ने अपनी हिन्दी–रचनाओं में गुजराती शब्दों को नगीने की तरह जड़ा है। मसलन–'श्रुति को पार न पामे', 'नक्की दो दिन की जिन्दगानी' में 'पामे' और 'नक्की' आदि।

दयाराम की गुजराती–हिन्दी रचना की दूसरी विशिष्टता यह है कि वे बर्गर आख्यान–रचना के गुजरात के दो–तीन बड़े कृष्ण–भक्त कवियों में से एक हैं। उन्हें गुजरात का स्थायी निवासी होने के कारण गुजराती भाषा और साहित्य की विरासत स्वभावतः मिली और पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के कारण ब्रजभाषा के संस्कारों को उन्होंने बड़े मनोयोग और प्रेम से अर्जित किया। ब्रजभाषा के कवियों के समान गोकुल–वृन्दावन से विशेष अनुराग होने के बावजूद उनमें गुजराती होने की आत्मसजगता भी है। उन्होंने गुजराती और ब्रजभाषा दोनों में विपुल रचनाएँ की। 'रसिक रंजन' और दयाराम सतसई' उनकी महत्वपूर्ण ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं और ये उनके गुजराती काव्य की भावभूमि का गुणात्मक रुप में विस्तार करती हैं। दयाराम अपनी गुजराती रचनाओं में संयोग–श्रृंगार के इर्द–गिर्द ही ज्यादातर चक्कर काटते हैं, लेकिन हिन्दी–रचनाओं में वे अपनी भावभूमि को वियोग, दैन्य, वैराग्य, नीति तक विस्तार करते हैं। तीसरी बात, हिन्दी ब्रजभाषा के रीतिकालीन दरबारी कवियों के समकालीन होने पर भी दयाराम की मानसिकता, उनके प्रभाव के बावजूद दरबारी नहीं है। अपनी सतसई में उन्होंने घोषणा की कि–

"पुरुषोत्तम गोपीश कृष्ण मनोहर रुप।
तद् प्रीत्यर्य सुग्रन्थ यह नहिं रिझवन को भूप।"

दयाराम के काव्य की प्रेरणा और प्रयोजन पुष्टिमार्गीय कृष्ण–भक्ति है। कारण है कि "दयाराम का श्रृंगार रीतिकालीन दरबारी कवियों के श्रृंगार की अपेक्षा अधिक संयत और भावनामूलक है। रीतिकालीन प्रेम जहाँ शारीरिक सौन्दर्य के आकर्षणपाश में बद्ध होकर इन्द्रियभोग का विधान करता है, वहाँ दयाराम का प्रेम इन्द्रियातीत आनन्दानुभवों के संकेतों से भरपूर हैः" (दयाराम और उनकी हिन्दी–कविता, पृष्ठ–10)

दयाराम ने अपने समय में प्रचलित गुजराती– हिन्दी छन्दों,–दोहा, पद, रोला, कुण्डलिया, सवैया, छप्पय, कवित्त में अपनी रचनाएँ की है। पद उनके राग–रागनियों में हैं और संगत की खराद पर चढ़े हैं। उदाहरण के तौर पर पद और दोहे के नमूने देखें–

दोहा– सजल नैंन आधे वचन, कहत कहत सकुचाय।
ललना समुझि लच्छ सों, लिय हिय लाल लगाय।
माननि प्रीति परिछ को, दुति बरने पिय दोस।
सुनत लाल द्रग ह्वै गये, भानु रोश के कोस।।

(गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य–साहित्य को देन, परिशिष्ट–1, पृष्ठ–148)

राग भैरवी–मोहे बाँके नेंन खंजर से लगाय गयो रे।
ओ लगाय के झपक हिये साय गयो रे। खूनी नेंन...
गजवी घायल कर गयो, दारु दवा न कोय।
कलम मालम मेरे धुव हार, मिले तबी सुख रोया। हो लगाय.....
मिल बिछरन की पीर कं, बीरन समझत कोय।
कहत अयाने बाहायरी, जांने लागी होय री। हो लगया... (वही, पृष्ठ–150)

दयाराम अपने हिन्दी काव्य में बड़े प्रयोगशील कवि है। भाषा और काव्यरुप दोनों दृष्टियों से। उन्होंने अपने एक छन्द में बारह भाषाओं का प्रयोग किया है। यहाँ तक गुजरात में सूफी कवियों की 'गूजरी' में लिखने की परम्परा पन्दहवीं शताब्दी से चली आ रही थी। उनकी गूजरी (खड़ीबोली) के रंग में भी कुछ कविताएँ हैं। मसलन–

सुनिये जु हरि हजरत बंदे की अरजी है
बेदिल हुई सब साही (सखी) साहेब की मरजी है।
जिस काम कूं भेजा था सो कुछ भी न किया।
मैं क्या करूं अकेला किसी ने न तन दिया।

इस प्रकार दयाराम की सर्जनात्मकता गुजराती और ब्रजभाषा दोनों में अपनी विशेष पहचान बनाती है। खड़ीबोली में उनका प्रयास प्रायोगिक स्तर पर है, लेकिन ब्रजभाषा की उनकी काव्यसृष्टि दो दृष्टियों से खास है। डॉ. महावीर सिंह कहते हैं कि ''यह तथ्य इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है कि गुजरात में हिन्दी–कवियों की एक दीर्घ परम्परा रही है। लेकिन इस परम्परा के बहुत सारे कवियों की रचनाओं का महत्त्व उनके साहित्यिक गुणों के कारण नहीं, बल्कि इसलिए है कि वे हमारी सांस्कृतिक विरासत के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन करती हैं। दयाराम की हिन्दी–सर्जना का सांस्कृतिक महत्त्व तो है ही, लेकिन साहित्यिक सृजनशीलता के स्तर पर भी उनकी मर्यादा अपेक्षाकृत ऊँची ठहरती है।''(दयाराम और उनकी हिन्दी–कविता, पृष्ठ–241)

6

18वीं शताब्दी के अन्त आते–आते वल्लभ–सम्प्रदाय के आचार्यों की कृष्ण की सेवा के बहाने भोग–विलासपूर्ण जीवनचर्या के कारण गजरात के लोगों की आस्था काफी कम हो गयी। गुजरात की इस परिस्थिति ने स्वामीनारायण–सम्प्रदाय–जैसे सदाचारप्रधान धर्म को फूलने–फलने का मौका दिया। स्वामीनारायण–सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी सहजानन्द (1781–1730) थे। स्वामीनारायण–सम्प्रदाय दर्शन के स्तर रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से जुड़ा है और भक्ति के स्तर पर स्वामी सहजानन्द और कृष्ण के एकात्म का उपासक रहा है। इस सम्प्रदाय ने सामाजिक–धार्मिक स्तर पर गुजरात के लोगों की बड़ी सेवा की है। उन्हें अन्धविश्वास, भेदभाव, छुआछूत से ऊपर उठाकर सदाचार–प्रवण जीवन जीने की प्रेरणा दी। इसके साथ इस सम्प्रदाय में दीक्षित कवियों ने गुजराती और हिन्दी–साहित्य की भी बड़ी सेवा की है। वैसे वल्लभ–सम्प्रदाय के अष्टछाप के आठ कवियों की तरह स्वामी सहजानन्द के भी आठ शिष्य थे, लेकिन उनमें स्वामी मुक्तानन्द (सन् 1761–1830), ब्रह्मानन्द (1772–1832), स्वामी प्रेमानन्द 'प्रेमसखी' (सन् 1779–1845), निष्कुलानन्द की हिन्दी–साहित्य–सेवा विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

स्वामीनारायण–सम्प्रदाय के कवियों में सबसें वरिष्ठ मुक्तानन्द स्वामी हैं, जिन्होंने गुजराती और हिन्दी दोनों में रचनाएं की। 'सन्त सिरोमणि' और 'विवेक चिन्तामणि' उनकी हिन्दी की रचनाएँ हैं। उनकी कविता

खड़ीबोली और ब्रजभाषा के मेलजोल का अच्छा दृष्टान्त प्रस्तुत करती है। खड़ीबोली की रचनाओं में ब्रज (मोसे) और गुजराती (कनैया,मोरली) के शब्द जहाँ–तहाँ ऐसे सहज रूप में आते हैं कि उसकी रवानगी को बाधित भी नहीं करते। नमूने के तौर पर उनकी कविता एक उदाहरण देखिए–

पिचकारी मतमारो कनैया, मैं तो दऊँगी गारी,
केल चले अपने मनमोहन, हम हे पराई नारी।
जो तुम मोसे बात करोगे स्याम सुन्दर सुखकारी
ल्युंगी खेंच पीताम्बर मोरली जायेगी लाज तुम्हारी।

स्वामीनारायण–सम्प्रदाय के सबसे प्रतिभासम्पन्न कवि ब्रह्मानन्द और स्वामी प्रेमानन्द 'प्रेमसखी' हैं। दोनों का उस समय के हिन्दी–छन्दों और राग–रागिनियों पर बड़ा अधिकार है। यदि कई भाषाओं–गुजराती, राजस्थानी, चारणी, कच्छी, ब्रज, खड़ीबोली आदि में बहुज्ञता और रचनाशीलता ब्रह्मानन्द के कवि–कर्म को विशिष्ट बनाती है, तो भाषा की सरलता, मधुरता और सांगीतिक सुघड़ता प्रेमानन्द के कवि–कर्म को। ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द दोनों ने हिन्दी में सर्जन किया है; लेकिन ब्रह्मानन्द का हिन्दी में सर्जन विपुल है। विवेक चिन्तामणि, उपदेश चिन्तामणि, सुमति प्रकाश, नीति प्रकाश, ब्रह्म विलास, ब्रज विलास उनकी उल्लेखनीय हिन्दी रचनाएँ हैं। उन्होंने कृष्ण–प्रेम–भक्ति में रँगी– रचनाएँ तो की है, सन्तों के मौज में ज्ञान–वैराग्य वाली खड़ीबोली में भी रचनाएँ की हैं। मुक्तानन्द और प्रेमानन्द की तुलना में इनकी रचना खड़ीबोली की ओर ज्यादा झुकी हुई है। दोनों मिजाज की एक–एक कविताएँ दृष्टान्त के तौर पर पेश हैं।

कान कुँवर मन भाए आली री, मेरे कान कुँवर मन भाए।
मैं जो खड़ी थी अपने भुवन में, चल के अचानक आए।
कोमल गात न जात बखाने, छेल छगन रंग छाए।
ब्रह्मानन्द जोर दृग मोसे, मंद मंद मुसकाए।
(हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान, पृष्ठ–93)
धर ले ध्यान अचल सतगुरु का दुबिधा तज दिलागीरी रे।
पाँच पचीस चोर या घर में प्रकट लेत धन हेरी।
याकुं मार पकड़ बश कर ले, तीन लोक जय तेरी रे।
किसके माता–पिता सुत–बांधव, किसी माया मेरी।
(गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी, उद्धृत पृष्ठ–158)

स्वामी प्रेमानन्द 'प्रेमसखी' की संगीत की खराद पर चढ़ी स्फुट हिन्दी रचनाएँ हैं। ब्रजभाषा की मिठास और खानगी इनकी कविता में अधिक है। मसलन–

बैरन मोरी रे बाजी बाँसुरी।
श्रवन सुनत मोरी सुध–बुध बिसरी, नैना बहत हैं मोर आँसु री।
बिरहा–भरी बाजे बन बाँसुरी, छेद करेजा मोरी पाँसु री।
कैसी करु अब कल न परे मोहे, निकसत नाही रे मोरी साँसु री।
'प्रेमानन्द' घनस्याम पिया मोरे, जिया में ठारी रे प्रेम फाँसु री।।

डॉ. अम्बाशंकर नागर ने इनकी कविता की विशिष्टता पर उचित टिप्पणी की है– "इनकी कविता बहुत सरल एवं प्रभावपूर्ण है। भावाभिव्यक्ति एवं शब्दयोजना की दृष्टि से वह बिल्कुल मीरा की जैसी है। संगीतात्मकता के कारण इनके पद अत्यन्त लोकप्रिय बन गये हैं।" (हि0भा0 और सा0 के विकास में गुजरात का योगदान, पृ013) स्वामीनारायण–सम्प्रदाय के सभी कवियों ने उस समय हिन्दी–गुजराती में प्रचलित छन्दों–दोहा, चौपाई, कवित, सवैया, छप्पय, कुण्डलिया, सोरठा, झूलना, पद आदि में रचना की है। ब्रह्मनन्द और प्रेमानन्द की रचनाओं में गुजराती शब्दों का प्रयोग गुजरात प्रदेश की महक को– कायम रखता है। दूसरी बात, जिस प्रकार काव्यभाषा के लिए संघर्ष आधुनिक काल में ब्रज और खड़ीबोली में हुआ, उसका इनकी भाषा में लेश भी नहीं है। इनकी कविता इस सन्दर्भ में बड़ी उदार और भाषिक हदबन्दी की संकीर्णता से मुक्त है। बोलचाल के उर्दू शब्दों से भी इन्हें बिल्कुल परहेज नहीं है। अनायास वे इनकी कविता के बहाव का हिस्सा बन जाते हैं। ब्रह्मानन्द की कविता में 'दिलगीरी' और प्रेमानन्द की कविता में 'कलेजा' इसी प्रकार के शब्द हैं।

7

सूफियों, ज्ञानी सन्तों, जैन भक्तों, पुष्टिमार्गी और सम्प्रदायेतर कृष्ण–भक्तों, स्वामी सम्प्रदाय के भक्त–कवियों के अलावा भी गुजरात में हिन्दी–काव्य की एक परम्परा 18वीं–19वीं शताब्दी में सौराष्ट्र और कच्छ के राजाश्रय में पनपी। सौराष्ट्र कच्छ में ऐसे राजा–रानियों की संख्या दर्जनों में है, जो स्वयं हिन्दी में कविता करते थे और अपने आश्रय में हिन्दी–कविता करने वाले कवियों को प्रोत्साहित भी करते थे। दरअसल हिन्दी की रीतिकालीन लक्षण काव्य–परम्परा को प्रोत्साहन देने और उसका विस्तार गुजरात की राजाश्रयी कविता में किया। इनमें पहला नाम कच्छ के महाराव लखपति सिंह (सन् 191–1961) का लिया जाता है, जिन्होंने भुज में ब्रजभाषा की काव्य–पाठशाला (सन्1747) स्थापित की। इस पाठशाला पर गम्भीर शोधकार्य करनेवाली डॉ. निर्मला असनानी ने लिखा है कि "इस पाठशाला की विधिवत् स्थापना सन् 1747 में आचार्य कनक कुशल एवं उनके शिष्य कुँवर कुशल के संचालन में की गयी। ये दोनों मरुघरा (राजस्थान) निवासी एवं पिंगलशास्त्र में पारंगत जैन आचार्य थे।... ब्रजभाषा पाठशाला स्थापित करते ही महाराव लखपति ने सिन्ध, काठियावाड़, गुजरात, राजस्थन, एवं अन्य प्रदेशों में इस पाठशाला के उद्घाटन की विज्ञप्ति करवा करके कवि बनने के इच्छुक सहदयों को पाठशाला में निःशुल्क काव्यशस्त्र की दीक्षा पाने के लिए कच्छ में आमन्त्रित किया था।" (हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान, पृष्ठ–316) यह पाठशाला दरअसल हिन्दी की रीतिकालीन लक्षण काव्य–परम्परा का विस्तार थी और उसका सर्जन भी रीतिकालीन प्रवृत्तियों से अत्यन्त प्रभावित था। महाराव लखपति ने स्वयं अपने साहित्य–सर्जन से इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। उन्होंने 'लखपति श्रृंगार' (लक्षण ग्रन्थ), 'सुरतंरगिणी' (संगीत–ग्रन्थ), 'लखपत भक्ति विलास' का सर्जन करके एक साथ रीति–भक्ति–संगीत की त्रिवेणी का– उदाहरण प्रस्तुत किया। स्वामीनारायण–सम्प्रदाय के सबसे ख्यात् कवि ब्रह्मानन्द स्वामी और गुजराती साहित्य को आधुनिक युग के दरवाजे तक लानेवाले दलपत राम ने इसी पाठशाला से कवि–शिक्षा प्राप्त की थी। हिन्दी के रीतिकाल और कच्छ की पाठशाला में काल और प्रवृत्ति में कुछ अन्तर भी है। हिन्दी में रीतिकाल का उफान सन् 1850 के बाद धीरे–धीरे ठण्डा पड़ गया, लेकिन कच्छ की पाठशाला भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के सिंह द्वार तक आती है और स्वाधीनता–आन्दोलन की चेतना से लैस होकर आती है। इस प्रकार "रीतिकालीन परम्पराओं की लक्ष्मण रेखा से बँधी होने पर भी, देश की युगीन परिस्थितियों से इसके कवि अछूते नहीं रहे थे। देशभक्ति एवं स्वतन्त्रता की पावन–धारा इन्हें भी स्पर्श कर गयी थी। अतः राष्ट्रीय उत्थान–सम्बन्धी ग्रन्थों की रचनाएँ पाठशाला के कवियों द्वारा सम्पन्न हुई है।" (वही, पृष्ठ 319–320)

गुजरात की हिन्दी रीतिकालीन काव्यपरम्परा के सबसे पारंगत, बहुज्ञ, रसिक, प्रतिभासम्पन्न कवि हैं राजकोट के राजकुमार **मेहरामण सिंह जाड़ेजा** (सन्1756–1794) जिन्होंने अपने छः मित्रों के साथ मिलकर 84 लहरों (सर्गों) में' **प्रवीण सागर**' सन् 1780)– जैसे वृहद् महाकाव्य की रचना की। इसकी 60 लहरें प्राप्त थीं, 12 लहरें दलपत राम और गोविन्द गिल्ला भाई ने खोजी और शेष 12 लहरें उन्होंने जनश्रुति के आधार पर रची तथा पूरे काव्य–ग्रन्थ का व्यवस्थित सम्पादन भी किया। यह ग्रन्थ साहित्य के साथ साहित्येतर विषयों और भाषाओं का बहुत भारी खजाना है। इसमें प्रवीण और सागर, जो गुजराती 'मेहरामण' का पर्याय है– की प्रेमकथा राधा–कृष्ण की प्रेमकथा पर आरोपित है। मेहरामण कहते हैं कि– "राधा सोई प्रवीण है, सागर राधाकान्त।" ब्रजभाषा मेहरामण की वशवर्तिनी तो है ही, उसमें कोमलता और पूरी रवानगी भी है। उनके छन्दों को पढ़कर देव और पद्माकर के छन्दों की याद तरोताजा हो जाती है।

परसे पुरवा धुरवा धरसें, धरसें बढ़ि बेली चढ़ी तरसें।
तरसे चित चातुक के हरषें, हरषें दुति दामिनि अंबर सें।।
बरसे घनघोर घटा झर सें, झरसें धुनि बाढ़त दादुर सें।
दरसें बिन मीत ब्रथा सरसें, सरसें दिनु सागर जु परसें।।
अंबर तें गिरतें, धरतें सरतें सरितें धुरवा जल धावें।
आँखन तें तनतें मनतें असुवा, अरु स्वेद सनेह बढ़ावे।।
दादुर मोरन सोरनतें, घन घोरनतें दरतें जु बचावे।
कंठ प्रवीन भुजा धर कें, भरि कें करि आसव पावस पावे।।

(गुजरात का ब्रजभाषा–साहित्य, पृष्ठ–250)

गुजराती, मराठी, मारवाड़ी, सिन्धी, कच्छी, संस्कृत, ब्रज, खड़ीबोली आदि कई भाषाएँ मेहरामण के लिए हस्तामलक हैं। खड़ीबोली आधारवाली गूजरी से आगे बढ़ी हुई अमानत के 'इंदरसभा' की परियों की भाषा की पूर्ववर्ती कड़ी 'प्रवीणसागर' की यावनी सखी की भाषा है। बोलचाल की खड़ीबोली की फड़कती भाषा है। देखिए–

नूरे आफताब महताब है चेहरा तेरा
सितारा सी चश्म बुलबुल सी बुबान है।
हुआ है जिगर तेरा दरद में गिरफ्तार
सबब सुनाओ रास्ता जानु मेरी जान है।

इस प्रकार गुजरात में हिन्दी के विकास की कई दिशाएँ और चरण हैं। खड़ीबोली गुजरात में पश्चिमोत्तर भारत पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और राजस्थान की ओर से नाथों और सूफियों के मार्फत आती है। खड़ीबोली की एक लहर कबीर काशी से गुजरात में लेकर आते हैं। वस्तु, भाषा–शैली के स्तर पर वे गुजराती के ज्ञानी सन्तों को प्रभावित करते हैं। यहाँ तक कि ब्रजभाषा के कवियों को भी प्रभावित करते हैं। गुजरात के ब्रजभाषा–साहित्य की प्रेरणा हिन्दी का ब्रजप्रदेश और राजस्थान का नाथद्वारा बनते हैं। और गुजरात के क्या कृष्ण, क्या कृष्णतर संप्रदाय, सभी पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं संत, जैन, स्वामीनारायण संप्रदाय कृष्ण और ब्रजभाषा के प्रभाव से अछूते नहीं रह पाते। गुजरात की गूजरी, खड़ीबोली, ब्रजभाषा भले हिन्दीभाषी क्षेत्र से प्रेरित हों, लेकिन इनकी अपनी सबसे बड़ी विशिष्टता है आपसी मेलजोल। और यह मेलजोल वस्तु, भाषा शैली, छन्द सभी स्तरों पर है। खड़ीबोली गूजरी में ब्रजभाषा और गुजराती के शब्द, ब्रजभाषा में गुजराती और खड़ी बोली के शब्द हार में हीरे की तरह जड़े हुए हैं। गूजरी का साहित्य वस्तु के स्तर पर फारसी की ओर जाता है, लेकिन भाषा, छन्द, शैली में भारतीय रंग ग्रहण करता है। इसी प्रकार सगुण–निर्गुण में जिस प्रकार का फासला हिन्दी–क्षेत्र के निर्गुणिया सन्तों और सगुण भक्तों में है, गुजरात की भक्ति–कविता में वैसा नहीं है। साहित्य और भाषा में हिन्दी की सहिष्णुता और सह–अस्तित्व का सबसे बड़ा मानक गुजरात का हिन्दी–साहित्य है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. अखा–भूपेन्द्र बालकृष्ण त्रिवेदी (अनुवाद–डॉ. भोलाभाई पटेल), साहित्य अकादमी–नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–1993।
2. कल्पलता–हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन–नयी दिल्ली, संस्करण–1994।
3. गुजरात का ब्रजभाषा–साहित्य (विराट् अभिनन्दनग्रन्थ), सं० अक्षयकुमार गोस्वामी, गुजरात हिन्दी प्रचारिणी सभी–बड़ोदरा, संस्करण–2007।
4. गुजरात की हिन्दुस्तानी काव्यधारा–सं० अम्बाशंकर नागर, अल्लाबख्श शेख, महात्मागाधी हिन्दुस्तानी संशोधन विस्तरण केन्द्र–गुजरात विद्यापीठ, अहमदबाद।
5. गुजरात के कवियों का हिन्दी काव्य–साहित्य को देन–नटवरलाल अम्बालाल व्यास, विनोद पुस्तक मन्दिर–आगरा, प्रथम संस्करण–1967।
6. गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण–काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन–इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1957।
7. गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी–प्र०सं० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, सरदार पटेल युनिवर्सिटी–वल्लभ विद्यानगर, संस्करण–1971।
8. दयाराम और उनकी हिन्दी–कविता–महावीर सिंह चौहान, पार्श्व प्रकाशन–अहमदाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।
9. नर्मदानां काव्यों, सं० जयन्त पाठक, आदर्श प्रकाशन–अहमदाबाद, प्रथम अवृत्ति 1912।
10. वली गुजराती–जहीरुद्दीद मदनी, गुजरात विद्यापीठ–अहमदाबाद, संस्करण–1999।
11. हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान–डॉ. अम्बाशंकर नागर, (अभिनन्दनग्रन्थ) प्र०सं० रामकुमार गुप्ता, हिन्दी साहित्य परिषद्–अहमदाबाद, संस्करण–सन् 1985।
12. हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल–नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण–सन् 1985।
13. नाथ सिद्धों की बानियाँ, सं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नागरी प्रारिणी सभा–काशी, द्वितीय संस्करण–सं० 2034।

–(हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के 67 वें अधिवेशन भुज–गुजरात में 13–15 मार्च, 2015 को विषय विशेषज्ञ के रूप में दिया गया व्याख्यान)

ꣿ★ꣿ

राओ लखपत की ब्रजभाषा-काव्यशाला
(चारणी साहित्य की पोषक संस्था)

प्रो. बलवंत शान्तीलाल जानी*

मध्यकालीन साहित्य की बहुत सारी कृतियों का विशद् अध्ययन हुआ है। उनमें अधिकतर उन कृतियों के छद–विधान, अलंकार, शब्द–योजना की सूझबूझ और विषय के रोचक विवेचन में सर्जक के कौशल को केंद्र में रखा गया है। वही यह भी सही है कि मध्यकालीहन सर्जकों ने परंपरा का भरपूर उपयोग किया है। फिर भी, सब कुछ एकदम अनुकरण तो नहीं हो सकता। अनुपात में कम–अधिक, विषय–निरूपण में सर्जक की मौलिकता तो होती ही है। प्रश्न हो सकता है कि काव्य–सर्जन एकदम अनुकरण नहीं है, तो फिर वह कौशल सभी सर्जकों में कहाँ से आता है कैसे आता है?

हमारे पास मध्यकालीन शिक्षा–व्यवस्था परांग के बारे में जानकारी बहुत कम है। काव्य–शिक्षा के बारे में भी जानकारी बहुत कम है। वास्तव में प्राचीन पुस्तकालयों, ग्रंथों की नकल तैयार करने वाले लिपिकों और पाठशाला/काव्यशाला के अनेक उल्लेख ऐतिहासिक/सांस्कृतिक लेखों में प्राप्त होते हैं। तक्षशिला, नालंदा, वल्लभी, पाटण, भिन्नमाल–श्रीमाल में इस प्रकार के ग्रथा–भंडारों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। कुमारपाल, सिद्धराज, वस्तुपाल के समय के अनेक प्रतिलिपिकारों के उल्लेख हैं। जैन संप्रदाय के हेमचंद्राचार्य से लेकर स्वामिनारायण संप्रदाय के ब्रह्मानद तक के अनेक कवियों ने इस प्रकार के ग्रंथों की रचना की है। ये जानकारियाँ उनके ग्रंथों से ही प्राप्त होती है। कृति के अंत में उसके प्रतिलिपिकार के नाम का उल्लेख होता है। पाटण के सिद्धराज और कच्छ के राजा लखपत जैसे अनेक राजा काव्यशाला/लेखशाला के लिए उदार मन से दान के रूप में एक निश्चित धनराशि देते थे। अधिक प्रसन्न होने पर दान स्वरूप गाँव भी देते थे। इस बारे में दानपत्र और खतपत्र प्रतिलिपिकारों के लिए लेखशालाओं तथा काव्य–शिक्षा के लिए काव्यशालाओं के निर्माण के प्रमाण (शिलालेख) भी प्राप्त होते है।

सम्मट ने काव्य हेतु (काव्योत्पति के कारण) की चर्चा करते हुए काव्यज्ञ शिक्षा को काव्यहेतु का एक घटक माना है। अभ्यास' (रियाज) अर्थात् अनुकरण की शिक्षा तो थी ही; परंतु काव्य के मर्मज्ञ से प्रशिक्षण लेने को भी आवश्यक माना है। अर्थात् 11 वीं शताब्दी के पहले भी यह परंपरा थी। बाद में दलपत के समय तक थी। अहमदाबाद में 11वीं शताब्दी में तथा 20वीं शताब्दी के आरभ तक स्वामितनारायण के मंदिरों में काव्य–शिक्षा की सुविधा थी। जै संप्रदाय में तो जब–जब विहार के लिए साधु–साध्वी आते हैं, उनकी शिक्षा की व्यवस्था आज तक चलती है। वशोविजयजी जैसे तो काशी की पाठशाला में जाकर शिक्षा ली थी, ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं। मध्यकाल में कवियों के लिए उपयोगी अनेक शब्द–संग्रह तैयार किए गए थे। उनमें से वर्णक समुच्चय' तथा 'शिष्ट समुच्चय' जैसे संग्रहों का तो समग्र साहित्य परपरा पर समान रूप से प्रभाव रहा है। कई कोशग्रंथ तो किसी न किसी काव्यशाला/पाठशाला के लिए तैयार किए गए थे– ऐसे उल्लेख मिलते हैं। इस प्रकार के ग्रंथों की रचना की परंपरा संस्कृत, प्राकृत, मध्यकालीन गुजराती में तथा उसके पूर्व हेमचंद्र के समय में भी थी। इसके भी स्पष्ट उल्लेख मिलते है। कच्छ–भुज' की 'राओ लखपत काव्यशाला' के लिए वहाँ के आचार्यों ने इस प्रकार के कोशग्रंथों की रचना की थी। ऐसे प्रमाण मिलते हैं। इस सभी प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि भिन्न–भिन्न राज्यों में काव्य–शिक्षण के लिए पाठशालाएँ अस्तित्व में थी; और वहाँ से प्रशिक्षित होकर कवि साहित्य–सर्जन करते थे; अथवा राजदरबारों में रहकर काव्य–प्रस्तुति करते थे।

जैन परंपरा के सर्जकों के लिए अभ्यास की व्यवस्था थी। इसके उल्लेख तो मिलते है; उसके पाठयक्रम, प्रशिक्षण के स्वरूप प्रशिक्षण की समयविधि और मूल्यांकन की पद्धति आदि के बारे में कुछ भी जानकारी मिलती है। जैनेतर सर्जकों के बारे में भी ऐसा ही है।

कच्छ–भुज की 'महाराव श्री लखपतजी ब्रजभाषा काव्यशाला' नाम की काव्य शिक्षण संस्था 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्थापना हुई थी। ब्रह्मानंद और लाँगीदास महेडु आदि अनेक कवियों ने इस काव्यशाला में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। इस काव्यशाला में दीक्षित अनेक कवियों के बारे में प्राप्त दास्तावेजी सामग्री के आधार पर और डॉ. निर्मला असनानी के 'कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला' नामक प्रकाशित

***कुलाधिपति, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.।**

शोध–प्रबंध के अलावा डॉ. गोवर्धन शर्मा के 'भुज (कच्छ) की काव्यशाला नामक लघु शोध–प्रबंध ('परंपरा' नामक मासिक में सन् 1989 के 89 वे अंक में प्रकाशित) की यथार्थमूलक सामग्री के आधार पर यहाँ काव्यशाला का परिचय प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

काव्यशाला का स्वरूप :– कच्छ के युवा राजा राओ लखपत में राजकवि श्रीहमीर जी रत्नु के काव्य–शिक्षा प्राप्त की थी। ऐसी शिक्षा सभी को सुलभ हो, इस सदिच्छा से प्रोरित होकर लखपत जी ने भुज मे काव्यशाला स्थापित करने की इच्छा गुरूवर श्री हमीर जी के समक्ष व्यक्त की। युवा राजा के इस साहित्य–प्रेम को साकार करने के लिए हमीर जी ने काव्यशाला की स्थापना की योजना बनाई; और उसमें प्रशिक्षण देने के लिए काव्यशास्त्रविद जैनमुनि श्री कनक कुशल जी से आचार्य पद स्वीकार करने की विनती की। कनक कुशल जी ने उस विद्याकार्य को सहर्ष स्वीकार किया। इस तरह सन् 1941 में यह पाठशाला आरंभ हुई। पाठशाला का नाम काव्य–प्रेमी राजा लखपत के नाम पर 'राओ लखपत बंजभाषा काव्यशाला' रखा गया।

आज के निवासी विद्यालय की तरह की तथा गुरूकुल शैली की वह पाठशाला थी। उसका दैनिक कार्यक्रम ब्रह्ममुहूर्त में प्रातः स्तवन से आरंभ होता था। प्रातः विधि पूरी करने के बाद सुबह सात अजे से ग्यारह अजे तक अध्ययन कार्य चलता। उसके बाद विद्यार्थी ही, थके होने के बावजूद, सामूहिक रूप से भोजन बनाते और खाते। फिर दोपहर के दो बजे से शाम को सात बजे तक पुनः अध्ययन कार्य चलता। उसके बाद रात्रि भोजन की तैयारी चलती। रात्रि–भोजन के बाद आठ बजे से चर्चा–गोष्ठी चलती।

उस काव्यशाला में आरंभ में पचास विद्यार्थियों की कोई आर्थिक जिम्मेदारी नहीं होती थी। उसका सारा खर्च संस्था उठाती थी। संस्था को आर्थिक कठिनाई न हो, इसके लिए कच्छ के युवा राजा लखपत जी ने कच्छ का रेहा नामक गाँव दान में दे दिया था। इसके अलावा दान तो मिला ही करता था।

उस काव्यशाला में काव्य–प्रशिक्षण के लिए कच्छ काठियावाड़ सहित पूरे गुजरात से तथा सिंध और राजस्थान के विविध भागों से विद्यार्थी आते थे। इस बारे में उस समय के सभी राज्यों को जानकारी दे दी गई थी। पाँच से सात वर्ष तक संस्था में रहकर काव्य–शिक्षण प्राप्त करके असंख्य कवियों ने न जाने कितने राज्यों में राज्याश्रित कवि के रूप में सम्मान प्राप्त किया। कच्छ की काव्यशाला के कवियों को देश भर में बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता था। दस्तावेजों से पता चलता है कि ऐसे भी अनेक कवि हुए हैं, जिन्होंने भ्रमण करते हुए अनेक राज दरबारों में मान–सम्मान और धन प्राप्त किया था।

काव्यशाला का पाठयक्रम तथा अन्य क्रिया कलाप :– ऐसा लगता है कि काव्यशाला में काव्य–प्रशिक्षण के लिए व्यापक दृष्टि से पाठयक्रम बनाया गया था। वहाँ मात्र छंद/अलंकार के ही ग्रंथों का नहीं, बल्कि संगीत, राजनीति, बुद्धनीति, बैद्यक, अश्वपरीक्षा, रत्नपरीक्षा, मानव परीक्षा जैसे विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इसके अलावा कविता कैसे पढी जाए, इसकी शिक्षा दी जाती थी। काव्य–सर्जन की शिक्षा के अलावा शुद्ध उच्चारण की युक्ति और अलंकार की छटा के साभिप्राय प्रस्तुतीकरण की भी शिक्षा दी जाती थी। संस्था के आचार्यो ने ही इसके लिए अनेक ग्रंथों की रचना की थी। विद्यार्थियों ने भी कई ग्रथों की रचना की थी। दूसरों के द्वारा रचे गए ग्रंथों को भी पाठयक्रम में रखा जाता था। पाठयक्रम के लिए सामग्री निश्चित थी। परंतु उसमें परिवर्धन–परिवर्तन का भी काम चलता रहता। इसमें काव्यशाला के आचार्यों के खुले और व्यापक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

आरंभ में भाषा–व्याकरण का अभ्यास तथा मान–मंजरी कोश, 'अनेकार्थ मंजरी' जैसे ग्रंथ कंठस्थ कराए जाते थें। उसके बाद 'छंद शृंगार पिंगल', चिंतामणि पिंगल', 'हमीर पिंगल', 'लखपत पिंगल', 'छंद भास्कर पिंगल' जैसे पिंगल ग्रंथों का तथा आखिर में तो 'रघुनाथ रुपक गीत और 'प्रवीण सागर' जैसे ग्रंथों को भी पाठयक्रम में शामिल किया गया था। पिंगल ज्ञान के लिए ऐसे ग्रंथों को भी कंठस्य कराया जाता था। अलंकार ज्ञान के लिए भाषाभूषण', कविप्रिया' और 'वंशीधर' आदि ग्रंथ पाठयक्रम में रखे गए थे। इन सभी ग्रंथों में कविता के गुण–दोष उदाहरण के साथ विस्तार से समझाए गए थे। रस के रहस्यों का उद्घाटन करने वाले ग्रंथ 'सुंदर शणगार', रस रहस्य' और रसिक प्रिया' भी विद्यार्थियों को कंठस्थ कराया जाता था। 'सुंदर विलास', 'अवतार चरित्र', 'रागमाला' जैसे ग्रंथ भी कंठस्थ कराए जाते थे।

ये सभी ग्रंथ कंठस्थ हों, काव्य–सर्जन के सिद्धांतों का प्रशिक्षण दिया गया हो और सभी के समझ कविता किस प्रकार प्रस्तुत करनी है, इसका ज्ञान दिया गया हो, तो स्वाभाविक है कि यहाँ से दीक्षित कवि काव्यतत्व के बारे में गहरा और व्यापक ज्ञान प्राप्त करते होंगे।

राज दरबार के वातावरण से, वहाँ के रीति रिवाजों अन्य ललित कलाओं से और इतिहास से भी विद्यार्थी को परिचित कराया जाता था। मनोरंजनात्मक समारोह की कविताएँ, गूढार्थपूलक– समस्यापूर्ति की कविताएँ भी कंठस्थ कराई जाती थीं। इसके लिए पाठय सामग्री भी तैयार कराई जाती थी। अभ्यास के लिए मौलिक ग्रंथों की रचना कराने का कार्य, दूसरों के द्वारा रचे ग्रंथों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का काम, संस्कृत भाषा के महत्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद का काम भी यहाँ कराया जाता था। अनेक ग्रंथों की टीकाएँ भी लिखवाई जाती थीं।

इस प्रकार काव्य शिक्षण के अलावा ग्रंथों के सर्जन के लिए भी यह काव्यशाला प्रयत्नशील रहती थी।

काव्यशाला की मूल्यांकन–पद्धति :– पाँच–सात वर्ष की लंबी अवधि के पाठयक्रम को यहाँ एक निश्चित क्रम में विभाजित किया गया था। नियमानुसार वर्ष में एक बार परीक्षा ली जाती थी। परीक्षा लिखित तथा मौखिक दोनों प्रकार की होती थी। परीक्षा लेने के लिए तटस्थ कवियों की एक समिति बैठती थी। उसके समक्ष कंठस्थ किए गए ग्रंथों में से जो भाग पूछा जाता, उसको अर्थ सहित प्रस्तुत करना होता। पदपूर्ति के रुप में कविता भी रचनी होती थी। रस, अलंकार इत्यादि का परिचय भी उदाहरण के साथ देना होता था। वर्णनों को लिखने के लिए भी कहा जाता था। कोई तेजस्वी विद्यार्थी यदि दो वर्ष के पाठयक्रम पूरा कर लेने के बाद दूसरा पाठयक्रम विद्यार्थी को लेना होता था।

काव्यशाला के शिक्षक :– सन् 1741 से 1948 तक कार्यरत इस काव्यशाला का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं होता। टुकडो टुकडों मे जानकारियाँ मिलती है। दो सौ वर्षों तक चलने वाली संस्था में स्वाभाविक है कि बहुत सारे शिक्षक कार्यरत रहे होंगें।

राजकवि श्री हमीर जी रत्नु ने राजस्थान के किशनगढ़ से जैन मुनि श्री कनक कुशल जी को काव्यशाला के आचार्य के रुप में विशेष रूप से आमंत्रित किया तो। आचार्य श्री कनक कुशल जी संस्कृत, अर्धमागधी, राजस्थानी तथा ब्रजभाषा के पंडित थे। राव लखपत जी ने उन्हें 'भट्टारक' की उपाधि दी थी। आचार्य जी ने अनेक पंडितों के साथ विचार–विमर्ष करके काव्यशाला की रूपरेखा तैयार की थी। कनक कुशल जी के बाद उनके शिष्य कुंवर कुशल जी आचार्य के पद पर नियुक्त हुए थे। वे भी प्रतिभा संपन्न कवि तथा पंडित थें। उन दोनों पडितो का हिन्दी भाषा में भी बहुत बड़ा योगदान है। कुँवर कुशल जी के बाद उनकी शिष्य परंपरा काव्यशाला में शिक्षा देती रही। उनमें वीर कुशल, गुलाब कुशल, लक्ष्मी कुशल आदि पंद्रह आचार्यों की परंपरा कर उल्लेख मिलता है। उसके बाद प्राणजीवन त्रिपाठी नामक शिक्षक ने जीवन कुशल जी से काव्यशाला की शिक्षा–व्यवस्था हस्तगत कर ली। वे भी बड़े पंडित थे। वे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी तथा कुशल वक्ता थे। वे रा. खेगार जी के कृपापात्र थे। वे शिष्य–परंपरा का अनुसरण करके पद पर नियुक्ति करने के बजाय प्रशिक्षण पूरा करने वाले मेधावी छात्र को नियुक्त करते थे। ऐसे ही श्री गोपाल जगदेव (कवि गोप) को सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति मिली थी। इन दोनों आचार्यों ने काव्यशाला को विख्यात बनाया था। उसके बाद चारण और भाट की आपसी स्पर्धा से त्रस्त होकर कवि गोप ने काव्यशाला का आचार्य पद छोड़ दिया । उसके बाद से कच्छ के चारण कवि ही प्रायः काव्यशाला के शिक्षक बनते रहे। उस दौरान केशवजी, हमीरजी, देवीदान जी आदि आचार्यो का योगदान उल्लेखनीय रहा। शंभुदान गढवी अंतिम आचार्य थे।

प्रारंभ में जैन मुनियों की परंपरा, बीच में थोड़े समय के लिए भाट और ब्राम्हणों की परंपरा और उसके बाद चारण शिक्षकों की परंपरा बहुत लंबे समय तक चली थीं।

यहाँ आरंभ से ही चारण विद्वानों के ग्रंथों का विशेष महत्त्व रहा। यहाँ ऐसी व्यवस्था कि समय–समय पर राजकवि अतिथि अध्यापक के रूप में आते और विद्यार्थियों को शिक्षित करते।

काव्यशाला में दीक्षित विद्यार्थी और उनके ग्रंथ :– लगभग एक हजार कवियों ने इस काव्यशाला से शिक्षा प्राप्त की थी। अभी तक उन सभी के बारे में पूरी जानकारी तथा उनका साहित्य प्राप्त नहीं किया जा सका है। उस काव्यशाला में दीक्षित कवि अधिकांशतः गुजरात तथा राजस्थान के राजदरबारों में मान–सम्मान पाते थे। कई कवियों ने राजकवि की उपाधि भी प्राप्ति की थी।

काव्यशाला में दीक्षित विद्याथिर्यों द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या भी अनुमानतः चार हजार तक है। सबके बारे में अब तक पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। एक हजार तक तो अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ इस काव्यशाला में पढ़े विद्यार्थियों द्वारा रचे गए हैं।

ब्रह्मनंद तथा लाँगीदास महेडु जैसे अनेक कवियों से लेकर दलपतराम तक के अनेक तेजस्वी विद्वान कवि इस काव्यशाला की उपज थे। कृष्णदास, कानदास महेडु, खीमजी खेतदान, झीबा, गोविंद गीलाभाई, महेरामणजी मोर, शंकरदान देथा, शुभदान जी अयाची, शिवा वरसड़ा जैसे अनेक प्रसिद्ध कवियों ने इस काव्यशाला से शिक्षा ली थी।

अनेक साहित्यिक महत्त्व के ग्रंथ इन कवियों ने रचे हैं। उनमें से उदयराम बारहठ का 'अनेकार्थी कोश', कृष्णराम कृत 'कच्छी भाषा की कविता', भोज गढ़वी कृष्णराम कृत 'कच्छी भाषा की कविता', भोज गढ़वी कृत 'चारणी रामायण' और 'माणेक रासो', कानदास महेडु कृत 'शोभा सागर' एवं देवगढ़ बारिया नरेश विशे', शंकरदान देधा कृत 'दामोदर शतक', जीवाभाई कृत 'नलाख्यान', हमीरदान मोतीसर कृत 'नृसिहावतारनी टीका', दरबार श्री महेरामणजी कृत 'प्रवीण सागर', गोविंद गीलाभाई कृत 'प्रवीण सागरनी बारह लहरीओ', जीवाभाई महेडु कृत 'पांडव यशेंदु चद्रिकानी टीका', ब्रह्मानंद जी कृत 'रणपिगल', पंचाण रावल कृत 'सुदामाचरित्र', जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

इस महत्वपूर्ण काव्यशाला के बारे में जो भी जानकारी प्राप्त हुई हैं, उसके आधार पर कहा जा, सकता है कि वह काव्यशाला सर्जन– विशेष करके काव्य–प्रस्तुतीकरण की प्रेरणा तथा कुशलता कैसे प्राप्त की जाए, कवियों को इसकी शिक्षा देने वाली प्राचीन परंपरा की एक कड़ी थी। संस्कृत में तो इसके लिए अनेक सूत्र, व्याख्याएँ और कारिकाएँ उपलब्ध हैं। हमारी मौखिक परंपरा के साहित्य को जीवंत रखने वाले परिबल स्वरूप ऐसी काव्यशालाओं की परंपरा के बारे में अधिकाधिक सामग्री की खोज हो सके, तो मध्यकालीन साहित्य की समझने की विशेष दृष्टि प्राप्त होगी; और मध्यकालीन साहित्य के मूलभूत उद्देश्यों, लक्ष्यों और अवधारणाओं का भी ख्याल आएगा। अनेक संप्रदायों, राजाओं तथा जातियों की अपनी–अपनी पाठशालाएँ थीं। जाति राजकुल और संप्रदायों के बारे में अनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिलते हैं। इस बारे में विशेष अनुसंधान की संभावना है।

गुजरात में हिन्दी की स्थिति

प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल*

वैश्विक बनने के लिए राष्ट्रीय माध्यम भाषा का ज्ञान होना चाहिए। हम सब जानते हैं कि भाषिक संरचना भौगोलिकता पर आधारित होती है। इसके साक्ष्य वल्लभीपुर, नालंदा एवं तक्षशिला के शिक्षा केन्द्र थे। यानी वैदिक, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट एवं पुरानी हिन्दी के मारफत पंच प्राकृतों के तहत सातवीं शताब्दी में सरहपाद या पुष्य द्वारा प्रारम्भ की गयी हिन्दी का इतिहास तकरीबन 1350 वर्ष पुराना है। यानी धर्म जोड़ने–तोड़ने दोनों का कार्य करता हैं। फिलहाल मुसलमानों के आने के बाद रेख्ता, रेख्ती, हिन्दुस्तानी, अवधी, ब्रज, दकनी या दक्खिनी को राजाश्रय, मठों, मस्जिदों का संरक्षण मिलने से हिन्दी का विकास गति पकड़ने लगा। कच्छ भुज की ब्रजभाषा पाठशाला के चलते दकनी या दक्खिनी के मारफत हिन्दी का विकास पश्चिम एवं दक्षिण भारत में प्रारम्भ हो गया। इसीलिए लल्लूलाल गुजराती भाषा मुंशी के साथ स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिन्दी एवं संस्कृत में लिखा। वृहत्तर भारत के कोने–कोने का भ्रमण करने से उन्हें एहसास हो गया था कि क्षेत्रीय बोलियों में हिन्दी ही सम्पर्क भाषा बनेगी। हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' 1826 से लेकर 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' 1893, महात्मा गाँधी की किताब 'हिन्द स्वराज' 1909, 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' 1910,'एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय' 1913, 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा,' 1936, 'गूजरात विद्यापीठ' 1920, 'दक्षिण भारत राष्ट्रभाषा प्रचार समिति मद्रास' 1918, की स्थापनाएँ कहीं न कहीं महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय एवं पुरुषोत्तमदास टंडन के अवदान को ही इंगित कर रही हैं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से लेकर अब तक हिन्दी का वर्चस्व दिखायी दे रहा है। इसीलिए भारतीय संविधान, उच्च, सर्वोच्च न्यायालय, राष्ट्रीय एवं शैक्षिक अनुसंधान परिषद के पाठ्यक्रम, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगि अनुसंधान परिषद, राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद के पठन–पाठन–पत्राचार हिन्दी एवं अंग्रेजी में होते हैं। इसको उत्तरोत्तर प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारतीय भाषा संस्थान मैसूर, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, सूचना प्रसारण मंत्रालय की पत्रिकाएँ, संसदीय कार्यवाही भी हिन्दी एवं अंग्रेजी में ही प्रकाशित होती हैं।

जार्ज पंचम द्वारा स्थापित स्कूल आज मिलिटरी स्कूल बन गये और उसी के तर्ज पर सैनिक, केन्द्रीय विद्यालय एवं नवोदय विद्यालय स्थापित हुए। इस समय गुजरात में एक सैनिक स्कूल जामनगर, तकरीबन 50 केन्द्रीय विद्यालय, 36 नवोदय विद्यालय तथा सी.बी.एस.ई. मान्यता प्राप्त हजारों विद्यालय कार्यरत हैं। गुजरात ही नहीं कहीं भी प्रवर्जन करने वाले लोग भी केन्द्र सरकार की नौकरियों को केन्द्र में रखकर बच्चों को सी.बी.एस.ई. मान्यता प्राप्त विद्यालयों में पढ़ा रहे हैं। गुजरात ही नहीं कहीं भी मारवाड़ी, फिल्म उद्योग हिन्दी का ही प्रचार प्रसार कर रहे हैं। भावनगर, कच्छ, सौराष्ट्र, गूजरात विद्यापीठ, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय पाटण, गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय क्षेत्रीय कार्यालय, महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय बड़ौदा, गुरु गोविन्द विश्वविद्यालय, गोधरा, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय सूरत, नरसी मेहता विश्वविद्यालय, जूनागढ़ में हिन्दी का पठन–पाठन एवं शोध हो रहा है। हालॉकि 1909ई० में गाँधी जी ने 'हिन्द स्वराज' किताब में त्रिभाषा (मातृभाषा, सम्पर्क भाषा एवं विदेशी भाषा) पढ़ने एवं सीखने की ताकीद की थी। देश के स्वतंत्र होने के बाद भाषावार प्रदेशों के गठन की सिफारिश के आधार 1 मई 1960 को महाराष्ट्र से अलग होकर गुजरात अस्तित्व में आया। यानी 2001ई० तक गुजरात में हिन्दी का काफी संवर्द्धन हुआ। 2001–2002 के बाद हिन्दी के विकास में अवरोध आया जिसके कारण उत्तरोत्तर हिन्दी की स्थिति गुजरात में दयनीय बनती जा रही है। साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के तर्ज पर हर प्रदेश में भाषाओं के विकास के लिए अकादमियाँ बनती गयीं। लेकिन 1990ई० के बाद उदारीकरण का दौर कहें या प्रादेशिकता के बाहुल्य

***आचार्य, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211002।**

से शैक्षणिक वातावरण बिगड़ा तो सभी भारतीय भाषाओं का बाजार ठंडा पड़ने लगा। इधर सरकार ने भी हिन्दी की अनिवार्यता खत्म कर दिया। परिणाम स्वरुप गुजरात में हिन्दी का पठन–पाठन ठप्प पड़ने लगा और शिक्षक–प्राध्यापक कार्य शून्य होने लगे। गुजरात से हिन्दी में निकलने वाली कई पत्रिकाएँ बंद हुई तो कई पत्रिकाएँ अभी भी ऑक्सीजन पर चल रही हैं। साहित्य परिवार, साहित्य वीथिका, नूतन भाषा सेतु, गुजरात विद्यापीठ पत्रिका एवं सरदार पटेल विश्वविद्यालय की पत्रिका 'प्रज्ञा' अभी भी निकल रही है। केन्द्र सरकार के उपक्रमों से भी हिन्दी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं।

गुजरात में हिन्दी की इस स्थिति के लिए सरकार की उदासीनता या वैश्वीकरण का दौर या अध्यापकों की उदासीनता मानी जाय परंतु हिन्दी के प्रति लोगों की अभिरुचि नहीं दिखायी दे रही है। हालॉकि समग्र भारत में यू.जी.सी. एवं राजीव गाँधी छात्रवृत्ति सतत् आबंटित की जा रही हैं, यदि गुजरात राज्य पात्रता परीक्षा पास होने पर छात्रवृत्ति दी जाय तो शायद हिन्दी का कुछ भला हो सकता है। वैसे भारत में केन्द्रीय विद्यालय संगठन का पाठ्यक्रम एवं नियुक्ति प्रक्रिया जैसी कर दी जाय तो ज्यादा अच्छा होगा। जाने अनजाने कथावाचक, राजनेता एवं अधिकारी त्रिभाषा (गुजराती, हिन्दी एवं अंग्रेजी) में व्याख्यान देते हैं। राजभाषा प्रकोष्ठ के तहत हिन्दी के संवर्द्धन के लिए तकरीबन 17000 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष खर्च हो रहे हैं। इसलिए शिक्षकों की उदासीनता को खत्म किया जाय तथा 100 प्रतिशत परिणाम के चक्कर में पड़े बिना सरकार प्राध्यापकों को पढ़ाने दे तो किसी भी भाषा का विकास होगा। गुजरात ही नहीं तकरीबन हर प्रदेश में शोध का स्तर इतना गिर गया है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग समय–समय पर चाबुक लगाता है फिर भी शोध का स्तर गिरता जा रहा है। गुजरात में सामान्यतया आरक्षण रोस्टर का ध्यान रखते हुए हिन्दी की ही जगहें आरक्षित की जाती रही हैं। आरक्षित जगहों में भी यदि अच्छे हिन्दी प्राध्यापकों का चयन होता तो भी शिक्षा एवं शोध का स्तर सुधरेगा। ऐसी विषम परिस्थिति में केन्द्रीय विद्यालय संगठन या जवाहर नवोदय विद्यालय समिति या संघ लोक सेवा आयोग जैसी संस्थाएँ चयन करें तो संभवतः गुजरात ही नहीं हर प्रदेश के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में योग्य शिक्षक एवं प्राध्यापक होंगे। गुजरात में आठवें–नौवें दशक के आस–पास तुलनात्मक साहित्य ने जोर पकड़ा लेकिन प्राध्यापकों की उदासीनता के चलते तकरीबन ठप सा हो गया। तकनीकी, प्रबंधन, चिकित्सा एवं अभियांत्रिक शिक्षा का वर्चस्व बढ़ने से भारतीय भाषाओं का दिनों दिन सफाया होता जा रहा है।

सन् 2019 में नयी शिक्षा नीति आयी नहीं कि दक्षिण भारत के प्रांतो से विरोध के स्वर निकलने लगे तथाकथित बुद्धिजीवी एवं राजनीतिज्ञों के इधर–उधर के बयानों को मीडिया ने खूब तूल दिया। हिन्दुस्तानियों पुनर्विचार करो संस्कृत जब एक मात्र भाषा आर्यावर्त की थी तो उसका विरोध धर्म एवं गरीबों के नाम पर महात्मा बुद्ध ने किया। उसके बाद जैन धर्माचार्य ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी तक प्राकृत अपभ्रंश के बहार के समय मुसलमानों का प्रवेश हिन्दुस्तान में हुआ। यानी आर्यावर्त की भाषा धर्म एवं सत्ता के अनुसार बदलती रही। इसीलिए उर्दू, हिन्दी, भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी की अनिवार्यता बढ़ती जा रही है। 2 फरवरी 1835 ई० ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को सम्बोधित करते हुए लार्ड मैकाले ने जो कुछ कहा था, आज सफल होता दिखायी दे रहा है। राष्ट्रीयता के लिए राष्ट्र भाषा अपेक्षित है। विश्व में मात्र 16 देश ऐसे हैं जो अपनी मातृभाषा का उपयोग करते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में चुनावी प्रक्रिया के तहत हिन्दी में भाषणबाजी होगी उसके बाद 15 अगस्त, 14 सितम्बर, 10 जनवरी एवं 26 जनवरी को हिन्दी में भाषण देना होता है। गुजरात के केन्द्रीय कार्यालयों में मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक रिपोर्ट ही हिन्दी में तैयार होती है। हिन्दुस्तान के लोग लघुता ग्रंथि के शिकार होते जा रहे हैं। हालॉकि प्रत्येक प्रदेश में एक संस्कृत विश्वविद्यालय खुलते जा रहे हैं। किसी पर कोई भी भाषा थोपी जाय, इसके पक्ष में मैं नहीं हूँ। लेकिन अपनी अस्मिता एवं पहचान के लिए राष्ट्रभाषा अनिवार्य है। गुजरात के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना तो है परंतु राज्य सरकार की उदासीनता के चलते हिन्दी का पठन–पाठन 1947 से लेकर 2000 ई० तक जैसा था वैसा अब नहीं रहा है। हालॉकि व्यापार एवं विदेश प्रवास दोनों में गुजराती लोग काफी आगे हैं। इसीलिए केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद से मान्यता प्राप्त विद्यालयों में बच्चों को अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम से पढ़ा रहे हैं। सरकारी विद्यालय मध्याहन भोजन तक ही सीमित हो गए हैं।

समग्र भारत में विद्यार्थियों की लघुता ग्रंथि को दूर करने के लिए एक शिक्षा एवं एक माध्यम का होना अनिवार्य है। लेकिन हिन्दुस्तान में पक्ष एवं विपक्ष की पार्टियों के तालमेल न बैठने से कोई भी शिक्षा नीति या कानून से लोकमंगल स्थापित नहीं हो रहा है। प्रादेशिकता की सर्व समावेशी नीति से राष्ट्र समृद्ध होगा। लेकिन केन्द्र सरकार की जितनी नौकरियाँ है उतनी प्रदेश सरकारों की नहीं हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में समस्त लोकसेवा आयोगों, TET, TAT एवं गौण सेवा परीक्षाएँ भी अंग्रेजी एवं हिन्दी में होनी चाहिए या हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषा हो। विश्व के तमाम देश हिन्दी सीख रहे हैं, ऐसी विषम परिस्थिति में गुजरात या अन्य प्रांत हिन्दी का विरोध करके कहीं न कहीं अंग्रेजी का समर्थन कर रहे हैं। हालॉकि गाँधी का त्रिभाषा सिद्धांत अच्छी तरह से लागू हो गया होता तो शायद इस तरह की ऊहापोह की स्थिति न उत्पन्न होती। हालॉकि 2018 में विश्वविद्यालय परिपत्र जारी करके हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन को दोहराया था तत्पश्चात् परिपत्र करके राज्य सरकारों की इच्छा पर छोड़ दिया है। हालॉकि गुजरात के भक्तिकालीन कवियों, लल्लूलाल, दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी, काका साहब कालेलकर के प्रदेय को ध्यान में रखते हुए हिन्दी को पढ़ना चाहिए। ई ट्रांसलेशन के तहत त्रिभाषा के पाठ्यक्रम को पढ़ाना आसान है। हिन्दी को फिल्म उद्योग, दूरदर्शन, आकाशवाणी ने कोने–कोने तक पहुँचा रहे हैं। गुजरात में स्नातक स्तर पर एक विषय मुख्य होने पर विद्यार्थी राजभाषा अधिकारी या अनुवादक भी नहीं बन पाते हैं क्योंकि स्नातक में हिन्दी एवं अंग्रेजी विषय हो या अंग्रेजी माध्यम होने पर भी हिन्दी को विषय के रुप में पढ़ा हो। ऐसी विषम परिस्थिति में गुजरात के बुद्धिजीवियों एवं सरकार का उदासीन रवैय्या काफी जबावदार दिखायी दे रहा है।

कई बार हिन्दी भाषियों की दादागिरी भी लोगों को प्रादेशिक भाषा में पठन–पाठन के लिए मजबूर कर रही है। इसलिए हिन्दी भाषियों को भी अपना रवैय्या बदलना होगा। प्रादेशिकता के चलते अहिन्दी भाषी प्रदेश के लोग चाहे टूटी–फूटी हिन्दी बोलें उनको हँसना नहीं चाहिए। कई बार धर्म, सत्ता तो कई बार प्रादेशिकता की पहचान के लिए राष्ट्रीय भाषा के विकास को अवरूद्ध करके अंग्रेजी को ही वर्चस्व दिया जा रहा है। जो लोग केन्द्र सरकार की नौकरियों के तहत भारत के विविध प्रदेशों में कार्यरत हैं या सेवानिवृत्त हो चुके हैं, वे लोग भी हिन्दी के अभिकर्ता के रुप में सहिष्णु होकर हिन्दी का प्रचार करें। राजभाषा प्रकोष्ठ को मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक प्रतिवेदन भेजने या विश्व हिन्दी सम्मेलन करने से हिन्दी का विशेष विकास नहीं होने वाला है। इसलिए गुजरात सरकार को अपनी मनमानी छोड़कर विद्यार्थियों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए हिन्दी पढ़ाना अपेक्षित है। फिलहाल सी.बी.एस.ई. मान्यता प्राप्त विद्यालयों की संख्या बढ़ने से ऐसा लगता है कि गुजरात सरकार प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को स्ववित्तपोषी करना चाहती है जो भी हो, सरकार को गरीब बच्चों का भी ध्यान रखना होगा वरना, धर्मांतरण के लिए तैयार रहें। यदि राष्ट्रभाषा में शिक्षा नहीं दी गई तो अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ेगा। ऐसी विषम परिस्थिति में सभी भारतीय भाषाओं का तकरीबन सफाया हो जायेगा। इसलिए पठन–पाठन, राजकाज, शोध एवं अन्वेषण की भाषा राष्ट्रभाषा ही होनी चाहिए। विश्व के तमाम देश किन्हीं कारण बस हिन्दी को बढ़ावा दे रहे हैं और विश्व के कोने–कोने में बैठे हुए लोग हिन्दी में लिख रहे हैं। नरेन्द्र मोदी हिन्दी के मारफत प्रधानमंत्री बने, उसी गुजरात से हिन्दी का इस तरह अपमान किसको अच्छा लगेगा? समय एवं परिस्थितियों को समझते हुए विद्यार्थियों के साथ खिलवाड़ न किया जाय। प्रादेशिकता के चलते संविधान की आठवीं अनुसूची में प्रादेशिक भाषाओं की संख्या को न बढ़ाया जाय। अथवा हिन्दी दिवस मनाने से हिन्दी का विरोध किया जाय, यह भी समीचीन नहीं है। बदलते परिवेश के आधार पर हिन्दी ही अंग्रेजी की सामना करेगी। इसलिए तमाम भारतीय रचनाओं को हिन्दी में अनुदित किया जाय और ई. ट्रांसलेशन या अनुवाद के माध्यम से अंग्रेजी या विश्व की अन्य भाषाओं में उपलब्ध कराया जाय। एक तरफ हम वैश्विक हो रहे हैं दूसरी तरफ भाषिक संरचना के मारफत स्थानीय बनते जा रहे हैं या गरीब विद्यार्थियों को प्रादेशिक भाषा एवं अमीर विद्यार्थियों को अंग्रेजी एवं हिन्दी में शिक्षा देकर भारतीय संविधान के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। इस नासूर पर समय से नस्तर नहीं चलाया गया तो भारत एवं इंडिया में दूरी बढ़ते ही भ्रष्टाचार, हत्या, धर्मांतरण, माओवाद, नक्सलवाद एवं आतंकवाद बढ़ेगा। इन से भी लोगों का विकास होने के बजाय अवरूद्ध होगा। इसलिए गुजरात सरकार को हिन्दी के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक करने से विकास, सहिष्णुता एवं बंधुत्व में

इजाफा होगा। कई प्रशासनिक नीति अच्छी न होने पर अनेक दिक्कतें भी आती हैं। गुजरात प्रदेश में हिन्दी थोपी न जाय परन्तु पूर्ववत् स्थिति में रखने से सभी का विकास होगा। हर क्षेत्र एवं तबके में द्वितीय पीढ़ी को बढ़ावा देने से प्रदेश एवं देश का सर्वांगीण विकास होगा। धौलावीरा, रामचंद्र गुणचंद्र, वल्लभीपुर, हेमचंद्राचार्य, लल्लूलाल, स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी से लेकर नरेन्द्र मोदी तक गुजरात के लोगों के प्रदेय को भुलाया नहीं जा सकता। इसलिए सर्वांगीण विकास के लिए हिन्दी को अपनी शिक्षा में शामिल करने से विद्यार्थियों को रोजगार के अवसर मिलेंगे। किसी भी सरकार को विद्यार्थियों के भविष्य के साथ खेलना महँगा पड़ेगा।

देश के स्वतंत्र होने के 76 वर्षों में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी से तमाम समस्याएँ पनपी हैं। उन समस्याओं का समाधान वर्तमान राज्य एवं केन्द्र सरकारों को मिलकर करना होगा। ऐतिहासिक निष्ठुरता को देखते हुए गुजरात सरकार सरकारी विद्यालयों में भी हिन्दी के पठन–पाठन का अनुकूल वातावरण तैयार करे तभी सरदार या लल्लू लाल या दयानंद सरस्वती या गाँधी के बाद दूसरे–तीसरे सरदार या लल्लू लाल या दयानंद सरस्वती या गाँधी या नरेन्द्र मोदी हो सकेंगे। पूर्वोत्तर में हिन्दी के विरोध से वहाँ की स्थितियों से हम सब परिचित हैं। संविधान की मौलिक अवधारणा को साकार करते हुए गरीब एवं अमीर के भेद को मिटाना हमारा कर्तव्य है। भारत में समग्र प्रयोग धर्म, शिक्षा के मारफत अमीर एवं गरीब पर होते हैं। गरीबों को लेकर बौद्ध, जैन धर्मावलम्बी पालि, प्राकृत–अपभ्रंश लेकर आये। इसलिए ऐतिहासिक विहंगावलोकन करते हुए भविष्य के लिए किसी भी नासूर को न छोड़ा जाय। गुजरात प्रदेश का प्रदेय हर क्षेत्र में अक्षुण्ण है और रहेगा। इस प्रकार प्रदेश सरकार हिन्दी को पूर्ववत् स्थान प्रदान करेगी।

ꕥ★ꕥ

गुजरात में हिंदी की परंपरा

डॉ. सुशील जी. धर्माणी*

प्रस्तावना :– *गुजरात पश्चिमोत्तर सुदूर समुद्र तटीय प्रदेश है। आदि काल से ही यह अपनी भौगोलिक परिस्थिति के कारण से महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करता आ रहा है, चाहे सभ्यता–संस्कृति–धर्म–शिक्षा–व्यापार ही क्यों न हो। इसका नाता प्राचीन काल से ही सिन्धु व् सरस्वती नदियों से रहा जहाँ हड़प्पा संस्कृति फली–फूली। महाभारत काल में श्री कृष्णा ने इसे अपनी कर्मभूमि बनाया। शायद यही कारण है की गुजरात में कृष्ण प्रत्येक घर में आराध्य है। इसी के चलते वैष्णव परंपरा तथा ब्रज भाषा का अत्याधिक प्रचार प्रसार हुआ, जिसमे कृष्ण की लीला व् भजन रचे गए थे।*

कृष्ण भक्ति के चलते, गुजरात के कवियों ने सहज रूप से ब्रज को स्वीकार लिया। ब्रज भक्ति के अंतर्गत अवधि के साथ साथ एक संपर्क एवं विश्व भाषा के रूप में प्रचलित हो रही थी। इसके माधुर्य ने साधु– संतो, राजे–महाराजे प्रभावित हुए और यह अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया, यह गौरव का प्रतीक बन गयी। दुर्भाग्य से गुजराती का अवमूल्यन हो रहा था। कालजयी आख्यानक कवि प्रेमानंद को गुजराती की अवहेलना के प्रतिकार में सिर पर पगड़ी नहीं बाँधने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ी थी।

'शुं–शा केरा पैसा चार' अर्थात ब्रज–हिंदी गुजरात समेत पुरे देश में सोलह आने स्वीकृत थी खुद के प्रदेश में गुजराती का मूल्य सिर्फ चार पैसे यानी एक आना ही रह गया था। गुजरात वैश्विक चेतना को समेट कर चल रहा था। इसी वजह से उसे वैश्विक पहचान, मान्यता भी प्राप्त हो रही थी। टंकारा के संत श्री दयानंद सरस्वती ने अपने सम्प्रदाय 'आर्य समाज' के प्रचार प्रसार के लिए 'देश भाषा'– हिंदी का ही प्रयोग किया। गद्य साहित्य के आरंभिक काल में लल्लू लाल तथा दयानन्दजी का योगदान महत्वपूर्ण है।

गुजरात में वैष्णव हिंदी साहित्य प्राप्त होने का समय वह ही है जो हिंदी में है। पंद्रहवी शती में नयर्ष , मयान, भालं, और भीम इन चार वैष्णव कवियों की कृष्ण भक्ति सम्बन्धी स्फूट पद मिलते है। उसी प्रकार से निर्गुण परम्परा के सन्तों ने भी ब्रज–सधुक्कड़ी में रचनाये की है। इनमे वैष्णव एवं सुफियों की प्रेमाभिव्यक्ति का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। इन्होने एक स्वर में बाह्याडम्बर का खंडन किया है। इन्होने हिंदी के पूर्वोत्तर समान ब्रज भाषा में योगदान दिया जैसे– संत कबीर, महामति प्राणनाथ, रवि साहब, निरान, प्रीतम, भाण, मनोहर स्वामी, दादू तथा गुजराती के अखा भगत।

संतों में से कबीर व् मीरा का सम्बन्ध गुजरात के साथ गहरा है। नर्मदा नदी के तट पर कबीर वड (बरगद) का पेड़ है, जो आज एक तीर्थ बन चूका है। कबीर सम्प्रदाय के करोड़ो अनुयायी समस्त गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ प्रान्त में फैले हुए है। मीराबाई ने तो जीवन के अंतिम वर्ष गुजरात में ही बिताये और सांस छोड़ी।

चौदहवी सदी के जैन साहित्य अधिकतर टीका और वचनिक के रूप में है। इस काल में गुजरात के लखपत सिंह मुर्धन्य कवि है तो पंद्रहवी सदी में पृथ्वी चाँद, कृष्णदास, केशवराय, जिन्रंग जैन, ज्ञानानंद इत्यादि ने काव्य रचनायें लिखी। गुजरात में सूफी मत को जैन कवियों के समान राज्याश्रय प्राप्त नहीं हुआ, शायद इसी कारण से सूफी काव्य ज्यादा प्रभावी रहे। शैख़ वहिउद्दीन बांझन (१३४८–१४०६), हजरत कुतबे आलम (१३८८–१४४६), काजी महमूद दरियाई (१४५४–१५११), ख्वाजा महम्मद चिश्ती (१५३६–१६१४), बाबा साहब (१६१८–१६५०), शम्श्वली उल्लाह (१६६८–१७४४) आदि सूफी सन्तों की अवधि में रचनाएँ मिलती है।

गुजराती के आदि कवि नरसिंह महेता ने भी ब्रज में कुछ रचनाएं की थी– जिनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है। उनके नाम में अनेक फूटकर हिंदी रचनाएँ चढ़ा दी गयी है, जैसे– "पधार्या म्हारे कून्कूरा पगले।/डगमग करता मोहनजी पधार्या, /पग भरता डगले।।"

***प्राचार्य, तोलाणी आर्ट्स एण्ड साइंस कॉलेज–आदिपुर–गुजरात।**

महान चंपानेर निवासी– संगीतकार बैजू बावरा गवैये के साथ अच्छे कवि भी थे, जिन्हें गुजरात के बादशाह बहादुर शाह खूब मानते थे। वैसे ही अष्टछाप कवि कृष्णदास चरोतर के पटेल थे। मीराबाई ने जीवन के अंतिम १५ वर्ष गुजरात में रहते हुए कई पदों की रचना की। द्वारिका निवासी मुकुंद गूगली (१६५२) ने हिंदी में 'कबीर चरित्र' लिखा। जूनागढ़ के त्रिकमदास (१७३४–६६) ने 'डाकोर लीला' एवं 'रुकमणि हरण' प्रबंध काव्य के साथ–साथ करीब १६० फूटकर रचनाएं ब्रजभाषा में लिखी।

वैष्णव परंपरा में चंदोद निवासी दयाराम ने ब्रज भाषा में ४१ ग्रन्थ और १२०० स्फूट पद लिखे। आप पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे एवं 'सतसैया' तथा 'रसिक रंजन' आपके सर्वश्रेष्ट ग्रन्थ है।

'कबको हरि हरि रटत हों, कटत न क्यों संताप/हरण बिरद बिसर्यो किधों, डरपे लखि मो पाप।'

इनके अलावा अन्य वैष्णव कवि जो तत्पश्चात आए उनमे उलेखनीय है; शिहोर के हर्षदास (१७६४), मध्य गुजरात के गिरधर (१७८७), जूनागढ़ के आदित्य राव (१७१६) और राजकुमारी जामसुता प्रतापबाला (१८३५)।

गुजरात में स्वामिनारायण सम्प्रदाय का विशाल योगदान है जिनके अनेको संतो–स्वामियों ने भक्ति साहित्य के तरफ कई निति विषयक काव्य लिखे है। इसका श्रेय सहजानंद स्वामी (१७८१–१८२०) जाता है। उनके नेतुत्व में मुक्तानान्दजी, ब्रह्मानन्दजी, प्रेमानंदजी, निषकुलानंदजी, भुमानान्दजी, देवानंदजी तथा मंजुकोशानान्दजी ने अनेको हिंदी रचनाएँ दी। वल्लभाचार्यजी के अष्टछाप कवियों के समान ही यह आठ अहिन्दी कवियों ने उत्तम कविताओं की रचना की। सविशेष– ब्रह्मानन्दजी! आप डूंगरपुर निवासी थे एवं प्रारंभ में– 'श्रीरंग' नाम से लिखते थे। आपकी शिक्षा–दीक्षा भुज की ब्रजशाला में हुई। इनके हिंदी में ग्रन्थ; 'सम्प्रदाय प्रदीप', 'सुमति प्रकाश', 'उपदेश चिंतामणि', 'ब्रजविलास' आदि मधुर संगीतबद्द पद है।

भगवान् स्वामीनारायण छपैया से आए हुए परिव्राजक थे। गुजरात में आपका चैतन्य स्वरुप प्रगट हुआ। आपकी भाषा अवधी थी परन्तु आपने गुजराती भाषा न केवल सीख ली, उसमे महारत प्राप्त की। उनके पावन सानिध्य में उनके शिष्यों ने भी ब्रज–अवधी–गुजराती में पद रचना की। इन संतों ने कविता को भक्ति का माध्यम बनाया। इसीलिए वे केवल भक्ति में झूम रहे थे, कहीं पर भी खुद को कवि की तरह स्थापित करने की लालसा नहीं थी। मुक्तानन्दजी की प्रायः कई रचनाएं लिपिबद्ध (हस्तलिखित) हुई। आज उनकी रचनाएं हमें 'मुक्तानंद काव्यं' ग्रन्थ में संकलित मिलती है। आप सहजानंद स्वामी उर्फ भगवान् स्वामीनारायण से उम्र में बड़े होने के बावजूद उन्हें गुरु के स्थान पर मानते थे।

गढ़डा निवासी प्रेमानंद स्वामी (१७६६–१८४५) उर्फ़ 'प्रेम सखी' की भावाभिव्यक्ती मीरा के समान संगीतमय है। इनके द्वारा लिखे हुए तीन ब्रजभाषा के पद गांधीजी की "आश्रम भजनावली' में संकलित है। इन्होने सात हजार पद रचे।

अखा भगत (१५६१–१६५६) ने विविद छंदों में सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रचे– 'संत प्रिया', 'ब्रह्म लीला', 'अवस्था–निरूपण', एवं 'एक लक्ष रमणी'। इन्हें 'गुजरात का कबीर' माना जाता है क्योंकि आप भी अख्खड़ और स्पष्टभाषी थे। यथा– 'अक्ल कला खेलत नर ज्ञानी,
जैसे ही नाव फिरे दसों दिश, ध्रुव तारे पर रहत निशानी।'

गुजरात के ही अन्य दो महात्मा, 'प्राणनाथ' एवं 'दयानंद सरस्वती' ने अपनी धर्म चेतना चारों ओर फैलाई। गुजराती होने के बावजूद हिंदी में उपदेश दिया और धर्म ग्रंथों की रचना की। प्राणनाथ ने सर्व प्रथम 'खड़ी बोली' के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया–

'...बिना हिसाबे बोलियाँ गिने सकल जहाँ.
सब को सुगम जानके कहूँगी हिन्दुस्तान...'

प्राणनाथ के चौदह ग्रन्थ उपलब्ध है। उनका 'कुलजम स्वरुप' प्रणामी सम्प्रदाय में धर्म ग्रन्थ की तरह पूजन्य माना जाता है। प्रसिद्द गुजराती भजन, 'हरिनो मारग' के रचयिता प्रीतमदास ने सधुक्कड़ी भाषा में अनेको पद और साखियाँ लिखी।–

'नारी को अपराध नहीं, पुरुष पातकी होय,
कहे प्रीतम एक हाथ सू ताली पड़े न कोय..'

कृष्ण भक्त; धीरा भगत– वड़ोदरा प्रान्त, गोठडा गाँव के निवासी थे। आपने ज्ञान मार्ग की कुण्डलिया रची। उन्ही की तरह 'निरांत' प्रमुख ज्ञानमार्गी कवि माने जाते है। आज भी गुजरात के ग्राम प्रदेशों में 'भोजा भगत' के चाबखे (चाबुक) चाव से गाये जाते है। उन्होंने भी हिंदी में भजन, पद, होली, इत्यादि लिखे है। यथा–

'संतों दिया रे अगम पर डेरा,
पीया पियाला जेने प्रेमरस केरा, नाथ कू निरख्य नेरा..'

कबीर के ही समान पाखण्ड खंडन का काम जूनागढ़ निवासी नागर संत मनोहरदास ने किया, यदा–

'भल कलयुग में भांड गवैया परमहंस बन बैठे भैया।
कुत्सित नर कूँ कहत कन्हैया..'

पेटलाद के संत छोटम आध्यात्मिक कवि थे, इन्होने भी गुजराती हिन्दी का संगम किया–

'दुरिजन सज्जन ना बने कीजे कोटि उपाय..
धोवे नित नित दूध से काग हंस ना थाय।'

इन संतों ने गुजरात के गाँव गाँव घूम कर सत्संग के माध्यम से सहज हिंदी द्वारा युग कार्य किया। गुजरात में जैन धर्म प्रभावशाली रहा। दसवी से सत्रहवी शती तक उनकी अपभ्रंश रचनायें मिलती है, आगे चलकर ब्रज और खड़ी बोली में लिखा गया। जिनमें से उलेखनीय हिंदी सेवी कवि है– आनंदघन, ज्ञानानंद, विनय विजय, यशो विजय, और किशनदास। इन पर राजस्थान क्षेत्र का भी समान प्रभाव होने से मारवाड़ी का भी विनियोग दीखता है। विनय विजय का यह पद द्रष्टव्य है–

'जोगी ऐसा होय फारु,
परम पुरुष सूं प्रीत करूँ और सें प्रीत हरु।'

गुजरात की राजधानी पाटन रही, जिसका विलास हेमचंद्राचार्यजी के युग में पराकाष्ठा पर था। १७ वीं शती के यशोविजय सूरी की ब्रज भाषा परिमार्जित है। यथा–

'लोचन करुना अमृत कचौले कुख सोहे अति नीको।
कवि जस विजय कहे यों साहिब, नेम जी त्रिभुवन टीको।।'

गुजरात के सूफ़ी संतों ने 'गूजरी' का प्रयोग करके उत्कृष्ट ज्ञान की सर्जना की। इसका सम्बन्ध हिंदी व् गुजराती के मिक्षण से था। आदिपुरुष शेख अहमद खट्टू (१३३६–१४४६) व् उनके समान युगी बुरहानुद्दीन कुत्बे आलम बुखारी ने इसकी शुरुआत की। अन्य सूफी कवियों के तांता फिर गुजरी में शुरू हो गया, यथा– शाह आलम, शाह अली गामधनी, खूब मुहम्मद चिस्ती, बाबा शाह हुसैनी, ईशा चिश्ती , अमीन इत्यादि। वली के अंतिम गूजरी के सूफी माने जाते है, उसके बाद उर्दू प्रचलन में आई। उनके नाम से गुजरात सरकार ने दृ'वली गुजराती ग़ज़ल पुरस्कार' शुरू किया।

गुजरात के रजवाडो का सम्बन्ध– राजस्थान, मध्यप्रदेश के साथ रहा, इन्ही कारणों से उनकी मातृ भाषा हिंदी रही। राज्याश्रित भाट–चारण दिन्गली के उपरांत ब्रज में प्रशस्ति करते थे। स्वाम राजा महाराजा व् उनके परिवार वाले अच्छे कवि थे। ऐसे माहोल एवं परिवेष के चलते कच्छ के महाराव लखपतजी ने (१७५२–६१) भुज में ब्रजभाषा की पाठशाला प्रारंभ की। यहं दिनों पूरे देश की प्रथम काव्यशाला थी।

इसी की देखा देखि में राजकोट के राजकुमार महेरामणजी, झालावाड के अमरसिंहजी, रणमलजी तथा मानसिंहजी रजा महाराजो एवं राजसी स्त्रियों में काकरेची ठकुरानी, हरिजी रानी, चावड़ी रानी और जामसुता प्रताप बाला ने हिंदी में काव्य रचना की है। राजकुमार महेरामणजी लिखित 'प्रवीण सागर' चौरासी सर्गो का चारणी, ब्रज, और खड़ी बोली का कालजयी रचना मानी जाती है।

चारणों के अतिरिक्त अन्य प्रमुख राज्याश्रित कवि थे; अहमदाबाद के कविश्वर केवलराम, आदित राम, उत्तम राम, दलपत रे बंशीधर, सोमतीर्थ के पूहकर, काशिनिवासी कवि गंजन, झालावाड के औघड़ आदि।

गुजराती साहित्य का भी काल विभाजन किया गया है। प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन युग से वर्गीकृत किया है। आदिपुरुष लल्लूलालजी का नाम हिंदी गध्य साहित्य में बड़े आदर से लिया जाता है।

पिछले सवासौ– डेढ़ सौ वर्षों के साहित्य को 'अर्वाचीन' कहा गया है। नर्मद उसके आदिपुरुष माने जाते है। उनके समकालीन प्रतिस्पर्धी कवि दलपतराम का 'श्वानाख्यान' हिंदी में लिखी रचना है। गोविंदभाई घेलाभाई की करीब तीन दर्जन रचनाये है। इनके आलावा बाला शंकर कंथारिया, दलपतराम के पुत्र कवि नान्हालाल, हीराचंद कानजी प्रमुख है। तुलसी के मानस समकक्ष मूलदास का हिंदी–अवधि में लिखा–'वीरायण' है, तो कच्छ के मेघानी जाने जाते दूलेराय काराणी ने 'गाँधी बावनी' की रचना की।

दयानंद सरस्वती ने वेदों का प्रणयन हिंदी में कर बडी सेवा की जिसे 'सत्यार्थ प्रकाश' में प्रतिष्ठित किया तो महात्मा गाँधी ने हिंदी के प्रचार प्रसार हेतु 'हिन्दुस्तानी' का स्वरुप विकसित किया। अतः हम देखते है कि अनन्य गुजरात के साहित्य सेवियों ने गुजराती के अलावा हिंदी भाषा में अपना अमूल्य योगदान दिया है तथा उसके प्रचार प्रसार में दिन रात जुटे हुए है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान– डॉ. अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रन्थ; १९८५. प्र. हिंदी साहित्य परिषद्– अहमदावाद।
2. गुजरात के संत कवियों में सामाजिक संवादिता– सं. डॉ. गोवर्धन शर्मा; १९९६. प्र. आर्ष, अक्षरधाम सेंटर फॉर एप्लायड रिसर्च इन सोशल हार्मोनी, सेक्टर–२० गांधीनगर।
3. स्वामीनारायण संप्रदाय और मुक्तानान्दजी का साहित्य (शोध ग्रन्थ)– डॉ. अरुणा शुक्ल; १९८५. प्र. अर्चना पब्लिकेशन, २८६, चाणक्यपुरी, सादर मेरठ– २५०००१
4. कच्छी संतों की हिंदी वाणी– सं. कमल मेहता; प्र. चिंता प्रकाशन, पिलानी– राजस्थान ३३३०३१
5. भुज कच्छ की काव्य शाला परंपरा– सं. नारायणसिंह भाटी; प्र. राजस्थानी शोध संस्थान. चौपासनी, जोधपुर।
6. गुजरात के समकालीन हिंदी कवि– सं. डॉ. गोवर्धन शर्मा, प्र. हिंदी अकादमी, गांधीनगर।
7. हिंदी साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान– डॉ. केशुभाई देसाईः प्र. हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग. भुज सम्मलेन ग्रन्थ।

गुजराती रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद और उसकी भूमिका

डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय*

गुजराती रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद और उसकी भूमिका पर कुछ विचार–विमर्श करने से पूर्व 'अनुवाद' शब्द के आशय को समझना आवश्यक है। अतएव सर्वप्रथम अनुवाद शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए गुजराती रचनाओं में खासकर गुजराती कविता के हिन्दी अनुवाद को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करते हुए, अनुवाद की भूमिका की ओर यथाशक्ति संकेत करने का प्रयास करूँगा।

'अनुवाद' शब्द का सीधा अर्थ है 'बाद में बोलना', अनु + वाद = अनुवाद। 'अनु' अर्थात् पीछे या बाद में और 'वाद' अर्थात् बोलना। 'वाद' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'वद्' धातु से हुई है। इसी 'वाद' शब्द में भिन्न–भिन्न उपसर्गों को लगाकर संवाद, विवाद, अपवाद, प्रवाद, प्रतिवाद तथा अनुवाद आदि शब्द निर्मित होते हैं। 'अनुवाद' का प्रारम्भिक अर्थ एक ही बात को दोबारा या फिर से उसी रूप में किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा दोहराना या पुनरावर्तन करना अनुवाद कहलाता है। पीछे या बाद में की जाने वाली क्रिया के लिए और भी शब्द प्रचलित हैं, जैसे– अनुकरण, अनुगमन, अनुवचन, अनुवाद आदि। अनुवाद पहले भले ही एक भाषा में दोहराने, पुनरावर्तन करने या बार–बार बोलने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा हो, किन्तु आज अनुवाद हेतु दो भिन्न–भिन्न भाषाओं का होना आवश्यक माना जाता है और भारत जैसे बहुभाषा–भाषी देश के लिए यह आवश्यक भी है।

अनुवाद की परंपरा बहुत पुरानी है। प्राचीनकाल में आश्रम व्यवस्था में गुरू एक बार विद्यार्थी को सूत्र या मंत्र पढ़कर सुना देते थे और विद्यार्थी उसका बार–बार तबतक पुनरावर्तन करते थे जबतक वह उन्हें याद नहीं हो जाता था। विद्यार्थियों के दुबारा सूत्रोच्चार या मंत्रोच्चार को अनुवाद कहा जाता था, किन्तु आधुनिक युग तक आते–आते अनेकों भाषाओं का विकास हुआ और अब एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में कहने को ही अनुवाद कहते हैं। ग्लोबलाइजेशन के दौर में अनेक भाषाओं की जानकारी रखना आवश्यक है किन्तु सभी के लिए यह संभव नहीं है। हाँ, पहले के लोग कई भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखते थे। उदाहरणार्थ हम यहाँ गुजरात विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. भोलाभाई पटेल का नामोल्लेख करना चाहूँगा जिन्हें लगभग 16 भाषाओं की पूर्णतः जानकारी थी। आज हम एक या दो भाषा से आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। सरकार भी त्रिभाषासूत्र की पक्षधरता करती है अर्थात् देश के प्रत्येक नागरिक को तीन भाषाएँ अवश्य आनी चाहिए। एक अपनी मातृभाषा जैसे गुजराती, दूसरी राष्ट्रभाषा हिन्दी और तीसरी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी।

भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए अनुवाद की नितांत आवश्यकता है। दूसरे प्रांत की संस्कृति, परंपरा, रीति–रिवाज तथा साहित्यिक गतिविधियों को जानने का एक मात्र आधार अनुवाद ही है। किसी भी भाषा को जानने, समझने के लिए उस भाषा के व्याकरण को जानना बहुत जरूरी होता है। जब तक भाषा के व्याकरण को नहीं जाना जायेगा, उसके व्याकरिणक शब्दों का ज्ञान नहीं होगा तब तक उस भाषा (जिस भाषा के बारे में आप जानना चाहते हैं अर्थात् लक्ष्य भाषा) के आशय को भी नहीं जाना जा सकता। व्याकरण के अपने नीति–नियम होते हैं, उसकी अपनी संरचना होती है, उसके अपने शब्द–विन्यास होते हैं जिसे जाने बिना लक्ष्य भाषा की पूर्णतः जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती। अन्य भाषा की जानकारी प्राप्त करने के लिए अनुवाद एक सशक्त माध्यम है जिसके जरिये लक्ष्य भाषा की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

विश्व में आज दुभाषिये की माँग बढ़ रही है। ये दुभाषिये दो व्यक्तियों के वार्तालाप के दौरान एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते हैं। अनुवाद करने के लिए दो भाषाओं की अनिवार्यता पर डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया जी ने बल दिया है। उन्होंने अनुवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''अनुवाद'

***सहायक आचार्य हिन्दी विभाग, कला संकाय, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडौदा–गुजरात, 390002।**

प्राचीन और अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषायी प्रक्रिया है जिसके मूल में एक भाषिक संरचना/अभिव्यक्ति के दूसरी भाषिक संरचना/अभिव्यक्ति में रूपान्तरण होता है। 'अनुवाद' का शाब्दिक अर्थ तो स्पष्ट है : अनु + वद्+ घञ् अर्थात् किसी के कहने के बाद कहना– किसी कथन के पीछे (अनुवर्ती) का कथन, पुनः कथन अथवा पुनरुक्ति। जिस सीमित अर्थ में आज 'अनुवाद' का प्रयोग किया जाता है वह प्राचीन नहीं है। वस्तुतः पहले जो व्याख्या रूप में 'पुनःकथन' की प्रक्रिया थी, वही अनुवाद था, जो प्रायः उसी भाषा में होता था। पर आज तो विचारों अथवा तात्पर्य को भिन्न भाषा में अभिव्यक्त करना या रूपान्तरित करना अनुवाद है।''[1] समय की माँग के अनुसार अनुवाद की अवधारणा में भी बदलाव आया और एक ही भाषा में होने वाला अनुवाद अब दो भिन्न–भिन्न भाषाओं की अनिवार्यता रखने लगा है।

इसलिए ''अनुवाद का अर्थ है भाषान्तरित करना अर्थात् किसी एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में प्रकट करना। यों तो भाव प्रकट करने के कितने उपाय हैं, जैसे संकेत द्वारा, भावभंड्गी के द्वारा अथवा अस्फुट शब्दों के द्वारा, किन्तु इन सबको अनुवाद में नहीं गिनते। यथार्थ अनुवाद उसका नाम है जिसमें प्रस्फुट शब्दों के द्वारा भाव व्यक्त किया गया हो। भाषा क्या है? भाषा मानो भावरूपी शरीर की पोशाक है। जब हम एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते हैं तब मानों भाव का असली परिच्छेद हटाकर उसे अपना पहनावा पहना देते हैं। परन्तु पहनावा ऐसा होना चाहिये जो भाव–रूपी शरीर में ठीक–ठीक बैठ जाय। न उसे इतना तंड्ग होना चाहिए कि भाव के किसी अंड्ग पर अनुचित दबाव पड़े, न इतना ढीला होना चाहिये कि भाव की शक्ल ही बेडौल हो जाय।''[2] यदि अनुवाद के पश्चात् स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में भाव रूपान्तरित नहीं होता तो वह शुद्ध अनुवाद की श्रेणी में नहीं आ सकता। अतः इस बात को अनुवादक को ध्यान में रखना होगा। जिस तरह का आवरण स्रोत भाषा का है लक्ष्य भाषा में भी उसी तरह का होना चाहिए।

अनुवाद का अर्थ एवं परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से विस्तार पूर्वक दी हैं किन्तु हम यहाँ उन परिभाषाओं के विस्तार में नहीं जाना चाहते क्योंकि हमारा लक्ष्य गुजराती हिन्दी साहित्य के संबंध को रेखांकित करना है। साहित्य के संदर्भ में अनुवाद की उपयोगिता को सिद्ध करना है। अनुवाद करने वाले अनुवादक को दोनों भाषाओं– मुख्य भाषा अर्थात् स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का ज्ञान होना नितांत आवश्यक है तभी वह अनुवाद के साथ न्याय कर पाएगा। अनुवाद कभी तो इतना खराब हो जाता है कि अर्थ का अनर्थ हो जाता है और कभी इतना अच्छा हो जाता है कि मूल रचना उसके सामने फीकी पड़ने लगती है। ये दोनों स्थितियाँ अनुवाद के लिए हानिकारक होती हैं। इसलिए अनुवादक को चाहिए कि वह मूल रचना को पढ़ने के पश्चात् उसके भाव को लक्ष्य भाषा में रूपान्तरित करे। अनुवाद के संदर्भ में डॉ. चन्द्रकांत मेहता लिखते हैं कि ''अनुवाद कष्ट साध्य कार्य है। इसके लिए पांडित्य की नहीं 'परकाया प्रवेश' की अशेष तैयारी आवश्यक है। मूल लेखक की भावसृष्टि का यात्री बनकर अनुवादक 'गोताखोर' की सन्निष्ठा धारण करते हुए 'मोती' ढूँढने की कोशिश करता है। जिस कृति या रचना के साथ अनुवादक तादात्म्य प्रस्थापित नहीं करता, उस कृति का अनुवाद भी उतना ही निष्प्राण हो जाता है, जितना सौरभविहीन सुमन। मूल की बराबरी करने की क्षमता अनुवाद में तभी संभव है, जब अनुवादक की स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों की ज्ञानात्मक सज्जता हो। इसके लिए देश–विदेश की संस्कृति की गहरी पहचान हो। अनुवाद शब्दों की दृष्टि से ही नहीं, शैली की दृष्टि से भी अपनी अलग पहचान रखता हो। मूल लेखक के भावों–विचारों को 'सूंघना' भी एक साधना है। मूल लेखक एवं उसकी कृति के प्रति वफादारी अनुवादक की प्रतिज्ञा बननी चाहिए।''[3] अनुवाद एक कठिन साधना की तरह है जिसमें संपूर्ण ध्यान एक ही जगह पर लगाना होता है, बावजूद इसके अनेकों समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। अनुवाद साहित्य की कृतियों का होता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में निरूपित रचनाओं का अनुवाद किया जाता है। उन रचनाओं में निहित विचार अनुदित होकर लक्ष्य भाषा में पहुँच जाते हैं और लक्ष्य भाषा–भाषी उनसे बखूबी परिचित हो जाते हैं।

यहाँ मैं यह बताना चाहता हूँ कि मैंने गद्य व पद्य में गुजराती से हिन्दी और हिन्दी से गुजराती में काफी अनुवाद किया है। गुजराती से हिन्दी में अनुवाद करते समय अनेकों समस्याओं का सामना करना

पड़ा। हम सभी बखूबी यह जानते हैं कि शब्द जिनका प्रयोग कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं या व्यवहार में किया जाता है, वे कैसे निर्मित होते हैं? किसी चीज, वस्तु, स्थान आदि जिसका अस्तित्व है उसका कोई न कोई नाम होता है। मान लीजिए कोई ऐसी वस्तु किसी भाषा में आ गई जिसका अनुवाद करना है किन्तु उस वस्तु या पदार्थ का अस्तित्व उस रूप में लक्ष्य भाषा में नहीं है। तब अनुवादक के सामने विकट समस्या खड़ी हो जाती है कि वह अनुवाद कैसे करे। उदाहरण के लिए यहाँ एक शब्द 'चौकड़ी' ले रहा हूँ, इसके माध्यम से मैं अपनी बात स्पष्ट करना चाहूँगा। गुजरात में 'चौकड़ी' का अर्थ घर से जुड़ी हुई, किन्तु घर के बाहर का एक ऐसा स्थान जहाँ बरतन और कपड़े धोए जाते हैं। गुजरात में उसे 'चौकड़ी' कहते हैं। अब इसका अनुवाद हमें हिन्दी में करना है तो हिन्दीभाषी क्षेत्र में इस तरह मकान की संरचना नहीं होती। इसलिए यह शब्द इस अर्थ में हिन्दी में प्रचलित नहीं है। हिन्दीभाषी क्षेत्र में घर के बाहर कुँए के पास लकड़ी की चौकी या सीमेंट से चौकोरनुमा बनी होती है जहाँ पुरुष स्नान किया करते हैं। अब कुँए के स्थान पर नल हो गए है किन्तु स्थितियाँ व नाम वही हैं। चौकड़ी का हिन्दी में अर्थ देखें तो 'कुलांच भरना', कूदते हुए आगे बढ़ना। महाराणा प्रताप के घोड़े के संदर्भ में इस शब्द को देखिए– 'रणबींच चौकड़ी भर–भर कर चेतक बन गया निराला था, राणा प्रताप के घोड़े से पड़ गया हवा का पाला था।' यहाँ चौकड़ी शब्द का अर्थ गुजराती के अर्थ से बिल्कुल भिन्न है।

अनुवादक के लिए ऐसे समय में बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ता है। मैंने मणीलाल ह. पटेल गुजराती कवि की 40 कविताओं (अन्जान पंछी, स्वप्न में उतरी हुई कविता, दिया जलता नहीं, रात, क्या होगा?, संयोग, रैन–बसेरा, वर्षा रात, प्रथम मिलन का काव्य, पतझड़, कवि प्रेम, ईडरिया गढ़ : आज, जलोपनिषद, पटेल भाई, पटलाणी बाई, बीहण बन का सन्नाटा आदि) का हिन्दी में अनुवाद करके 'पतझड़' नामक हिन्दी अनुदित काव्य संग्रह, हिन्दी साहित्य अकादमी, गाँधीनगर की सहायता से सन् 1999 में दर्पण प्रकाशन लखनऊ, उ.प्र. से प्रकाशित करवाया है। हिन्दी के कवि डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल की कुछ हिन्दी कविता का गुजराती में 'खूनी पुल ऊपर थई ने', 'आरोपनामु', 'आरसीनी चकली', 'खुरसी', 'राजकारणनी सांभर झील' और 'हवे जोवातु नथी' अनुवाद किया है जो 'जीवननो लय' नामक काव्य संग्रह में संग्रहीत है, जिसका सम्पादन डॉ. श्रीराम नागर तथा डॉ. महावीरसिंह चौहान जी ने किया है। यह गुजराती काव्य संग्रह 'पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, गुजरात से सन् 1994 में प्रकाशित हुआ है। इसी तरह प्रो. नामवर सिंह की हिन्दी में पुस्तक 'वाद विवाद संवाद' के अधिकांश लेख गुजराती में अनुवाद करके 'फार्बस' गुजराती पत्रिका, दसमो दायको गुजराती पत्रिका आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित

करवाया है।

गुजराती के प्रसिद्ध आलोचक एवं रचनाकार डॉ. प्रमोदकुमार पटेल का समीक्षक आलेख 'गुजराती आँचलिक उपन्यास–रचना की नई दिशा' का हिन्दी में अनुवाद किया है। गुजराती के सुप्रसिद्ध समीक्षक एवं कवि डॉ. भरत मेहता के आलेख का हिन्दी अनुवाद 'गुजराती दलित उपन्यास : एक सर्वेक्षण (1975–1995) किया है। ये दोनों आलेख 'हिन्दी और गुजराती के ग्रामकेन्दित उपन्यास' नामक पुस्तक में छपे हैं। इस पुस्तक का सम्पादन डॉ. महावीरसिंह चौहान जी ने किया और सरदार पटेल विश्वविद्यालय से सन् 1996 में प्रकाशित हुई है। प्रो. सितांशु यशश्चन्द्र का आलेख गुजराती से हिन्दी में अनुवाद 'उमाशंकर जोशी और एलन गिन्सबर्ग की कविताओं की तुलना' का अनुवाद किया है। डॉ. अजीत ठाकोर का गुजराती में आलेख 'नामवर सिंह और सुरेश जोशी की कहानी संबंधी अवधारणा' है जिसका हिन्दी अनुवाद किया है। ये दोनों आलेख 'तुलनात्मक साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा' नामक पुस्तक जो प्रो. महावीर सिंह चौहान के संपादन में सन् 1996 में सरदार पटेल विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी–गुजराती की आधारभूत क्रियाएँ, हिन्दी–गुजराती की रंजक क्रियाएँ, हिन्दी–गुजराती क्रियापद, तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका आदि तमाम आलेख जो अनुवाद से संबंध रखते हैं लिखा है और वे विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए हैं।

गुजराती कवि त्रिलोकी रेवार की कविता है 'मिटा डालो' जिसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ–

'मिटा डालो'

गाँव के मंदिरों में अस्पृश्यता फैली है,
नाई बाल काटता नहीं
दुकानदार माल देता नहीं
दलितों का खुलेआम बहिष्कार।
सतत भयग्रस्त रात बिताकर जीने वाले ये लोग
टोली द्वारा हत्या के हुए शिकार का किस्सा
मेरी नस–नस को तोड़–फोड़कर अब
फेंक देता है एक डरावनी चीख।
मेरी आँख के सामने जलता है अभी भी
जुल्म ढाने वालों का जेतलपुर।
देत्रोज की जलती मसाल
और जमींदार की दहाड़।
मेरा मृत्युघंट बजायें उससे पहले ही
'मुझे कर दो अंधा
और बदल दो धर्मान्तरण का यह फार्मूला।
इस दीवाल के डरावने चेहरे को
अब तो मिटा डालो।'

कवि, समाज में फैली हुई अस्पृश्यता, छुआछूत की भावना, गरीबी–अमीरी, ऊँच–नीच की भावना जिससे समाज त्रस्त है। उसे कविता के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। अछूतों के प्रति समाज में जो एक डरावना वातावरण है, जमींदारों के द्वारा मजदूरों का शोषण खुलेआम हो रहा है, आज भी दलितों के गाँव जलाने के समाचार मिलते रहते हैं। इसे ही कवि ने अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। यह समस्या गुजरात के कवि के सामने ही नहीं अपितु संपूर्ण देश में व्याप्त है। इसी तरह गुजराती कवि दलपत चौहाण की कविता है 'व्यथा' जिसका हिन्दी अनुवाद देखिए–

'व्यथा

मैं भी हैरान हूँ
इस परकीय संस्कृति में जन्म लेकर,
(सिर से पाँव तक ओढ़कर)
त्रस्त हृदय तू और तुम भी चलो प्रिये।
द्वार द्वार पर बैठाये मंदिरों को
फेंको धरा पर.....
और ....अपने नग्न बच्चों को,
(संकरवर्ण, जिन्हें आचार्य शापित मानते हैं)
बहा दें....गंदे नाले में
उन्हें भी अच्छा नहीं लगेगा अपने जैसा,
यह जीना।
उस पार गाँव की अपनी झोपड़ी
सवर्णों को आग लगाने दें उसमें
वे जरूर जलेंगे।
इस अग्नि ज्वाला को
फैला दें क्षितिज के उस पार

भले ही हम सब राख हो जांए
(शूद्र होने से अच्छा है)
चलें प्रिये,
मैं भी परेशान हूँ इस परकीय संस्कृति को
ओढ़कर।'

इस कविता में भी कवि ने अपने मन की पीड़ा को व्यक्त करने का प्रयास किया है। कविता का अनुवाद करना गद्य के अनुवाद करने से बहुत कठिन है। यदि गद्य में अनुवाद करना हो तो अनुवाद के प्रकारों में से भावानुवाद जो अनुवाद का एक प्रकार है वही उपयुक्त है। कविता का अनुवाद करते समय शब्द, अर्थ और उसके भाव को लक्ष्य भाषा में लाना बहुत मुस्किल होता है। यदि हम शब्द के अर्थ को पकड़ते हैं तो भाव पूर्णरूपेण व्यक्त नहीं हो पाता। यदि अर्थ और भाव को बचा ले जाते हैं तो उसका कवित्व गायब हो जाता है। इसलिए कविता लिखना जितना आसान है कविता का अनुवाद करना उतना ही कठिन है।

गुजराती–हिन्दी साहित्यिक के विकास में अनुवाद की अहम् भूमिका है। भारत जैसे बहुभाषा–भाषी देश के लिए अनुवाद बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। इस विशाल देश में जहाँ सैकडों भाषाएँ हैं और हजारों उनकी उपभाषाएँ हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए सभी भाषाओं का ज्ञान हो पाना असम्भव है। ऐसी स्थिति में अनुवाद उनके लिए रामबाण सदृश बन जाता है। एक भाषा–साहित्य की संस्कृति, परम्परा, समस्याएँ आदि उनकी रचनाओं में अवतरित होती हैं और वही अनुवाद के जरिए दूसरे भाषा–साहित्य में अंकित हो जाती हैं। लक्ष्य भाषा–भाषी अनुवाद के जरिए बिना स्रोत भाषा सीखे स्रोत भाषा की संपूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेता है।

अनुवाद का कार्य बड़े पैमाने पर भारतीय साहित्य अकादमियाँ कर रही हैं। प्रतिष्ठित या बहुचर्चित रचनाओं का व कृतियों का राष्ट्रभाषा में अनुवाद करवा कर संपूर्ण भारत में पहुँचा रही हैं। गुजराती रचनाकार जोसेफ मेकवान का उपन्यास 'आँगडियात' जैसी कृतियों का हिन्दी अनुवाद अकादमियाँ करवाती हैं जिससे वे कृतियाँ संपूर्ण देश के पाठकों तक पहुँच जाती हैं। भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत सभी कृतियों का राष्ट्रभाषा में अनुवाद हो रहा है। एक अंचल का साहित्य देखते ही देखते संपूर्ण देश में पहुँच रहा है।

साहित्य और अनुवाद के संदर्भ में अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया जी ने लिखा है कि ''एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा में रूपांतरित करने की परम्परा बहुत प्राचीन रही है। गीता और बाइबिल के अनुवाद विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में हुए। रामायण तथा महाभारत दोनों ही महाकाव्यों का अनुवाद–सरल से सरल मुक्त अनुवाद, सरल से सरल शैली में पता नहीं कितनी भाषाओं में किया गया। जर्मन कवि गेटे को अभिज्ञान शाकुन्तलम् का अनुवाद पढ़कर नई दृष्टि मिली। प्रकारान्तर से शाकुन्तलम् के माध्यम से संस्कृत का महत्व विश्व को ज्ञात हुआ और कालिदास आज विश्वकवि बन गए हैं। शॉपनहॉवर ने जब उपनिषदों को पढ़ा तो भारतीय मनीषा उनके समक्ष प्रस्तुत हुई। साहित्य का अनुवाद सर्वदा सार्थक होता है। विश्व विश्रुत कृतियाँ एक देश से दूसरे देश में मूल भाषा में अथवा अनुवादित होकर भिन्न भाषा में जाती हैं, तो अपने साथ विचार और संस्कृति भी ले जाती हैं। दूसरी भाषा से विचार आने पर और साहित्य के माध्यम से संस्कृति के उदात्त तत्व आने पर लाभ ही होता है। तब ही तो हिन्दी के प्राण भारतेन्दु ने कहा था–

पै सबविद्या की कहूँ होई जु पै अनुवाद।
निज भाषा महँ तो सबै याको लहै संवाद।

सभी श्रेष्ठ ग्रंथों का बिना किसी भाषिक भेदभाव के अनुवाद करने के लिए उन्होंने आह्वान किया–

अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृत ढेर।
खुले खजाने विनहिं क्यों लूटत लावहु देर।।
सबको सार निकाल के पुस्तक रचहु बनाइ।
छोटी बड़ी अनेक विध विविध विषय की लाइ।।''[4]

गुजरात के सुप्रसिद्ध एवं चर्चित कवि हरीश मंगलम् की 'तो पण' कविता का हिन्दी अनुवाद 'तो भी' देखिए–

तो भी

जन्मते ही
किसी विकट अंधेरे कुँए की
जीवन–सफर–यात्रा में लुढ़क गया हूँ
कीचड़–ऊचड़ और गहरे दलदल में
पैर जकड़ा गये हैं पूरी तरह
इतिहास के हिंसक पन्नों पर
जम गये हैं गुलामी के
रक्त–थक्के
हर क्षण जोड़ता है एक पन्ना...
मंदिर–मस्जिद के मृतप्राय
पत्थरों में से
दूर–सुदूर दृश्यमान होता जीवंत,
हराभरा
वन सौन्दर्य को कुचल कर नष्ट कर दिया है
धर्म–कट्टरवादियों ने
और समय के तीक्ष्ण बहाव में झड़ी हुई
कुँए की दीवालों में
मेरे हाथ टटोलते हैं आधार
आँखों के आगे बस अँधेरा ही अँधेरा
सुबह से शाम तक
घड़ी के लोलक से लटकता मनुष्य
घड़ीभर ही सही किन्तु लेता है सांस कुछ?
जीवन–सफर–यात्रा में लोलक
ठहर गया है, या–
लोलक में जीवन–सफर–यात्रा?
शायद
अँधेरे कुँए में से बाहर निकलूँ तो भी
तो भी.....'

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया है कि कविता का अनुवाद परकाया प्रवेश है। कविता का अनुवाद करना 'लोहे के चने चबाने जैसा है' फिर भी इसकी माँग दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। कविता का अनुवाद करते समय उसके भाव को यदि किसी तरह बचा लेते हैं तो भी उसका कवित्व नहीं बच पाता। उसकी गेयता, लयात्मकता नहीं बच पाती। इसीलिए कहा जाता है कि कविता का अनुवाद उबाले हुए पानी की तरह होता है जिसमें पानी तो होता किन्तु कोई स्वाद नहीं होता। गुजराती के प्रसिद्ध कवि सुरेश जोशी ने बड़ौदा विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा विभाग द्वारा आयोजित अनुवाद शिक्षण शिविर में एक बार कहा था कि ''मैं एक काव्य पंक्ति दे रहा हूँ इसे आप सुधी विद्वान अंग्रेजी में अनुवाद करके दीजिएगा। वह पंक्ति है– 'लवंगनी लाकडिये रामे सीता ने मारीआँ रे लोल।' किन्तु इसका अनुवाद संभव नहीं हो पाया। इसी प्रकार एक पंक्ति है– 'कणीए राधा रमे, पांदडे पांदडे कान्ह रे!' जैसी पंक्तियों के अनुवाद में कविता का कवित्व समाप्त हो जाता है। इसके नाद की कर्णप्रियता नष्ट हो जाती है। भले ही हिन्दी में हम इसे कहें कि– 'कली–कली पर राधा खेलें, पत्ते–पत्ते पर कान्ह रे!' परन्तु जो रस मूल भाषा में है वह लक्ष्य भाषा में नहीं

आ पाता।''[5] काव्यानुवाद में बहुत सारी समस्याएँ आती हैं जिसका सामना अनुवादक को करना पड़ता है। प्रतीक, बिम्ब, अलंकार, छन्द, रूढ़ियाँ, परम्परा आदि का ज्ञान अनुवादक को अवश्य होना चाहिए। प्रत्येक भाषा में अलग–अलग रूढ़ियाँ या परम्पराएँ होती हैं। मुहाबरे और लोकोक्तियाँ भी भिन्न–भिन्न होती हैं। कुछ लोकोक्तियाँ या मुहाबरे ऐसे भी होते हैं जो अपनी लोकप्रियता या ख्याति के चलते दूसरी भाषा में लोकप्रिय हो जाते हैं। यहाँ प्रसंगोचित कुछ गुजराती और हिन्दी मुहाबरों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रहा हूँ–

गुजराती	**हिन्दी**
भादरवानां भिन्डा जेवा।	कुकुरमुत्ता जैसा।
जेवो देश तेवो वेश।	जैसा देश वैसा भेष।
भस्या कूतरा करडे नहिं।	जो भौंकते हैं वे काटते नहीं।
मोत आवे पण आशा मटे नहिं।	जब तक सांस तब तक आस।
हवाई किल्ला बांधवा।	हवाई किले बनाना।
लोखंडना चणा चाववा।	लोहे के चने चबाना।
कूतराने मोते मरवुं।	कुत्ते की मौत मरना। आदि।

इसलिए जब तक लक्ष्य भाषा के मुहाबरे, लोकोक्तियाँ, बिम्ब, प्रतीक आदि का ज्ञान नहीं होगा तब तक स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

इस प्रकार साहित्य और अनुवाद का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है, दोनों एक–दूसरे के सहायक हैं। अनुवाद साहित्यिक कृतियों का किया जाता है, उन्हें स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुदित करके लक्ष्य भाषा–भाषी को बिना स्रोत भाषा का ज्ञानार्जन किए संपूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है। साहित्य का अनुवाद अतिमहत्वपूर्ण होता है। इसमें विश्व के किसी भी देश की स्थिति को यदि बारीकी से अवलोकन करना हो तो उस देश का साहित्य पढ़ना चाहिए। ऐसी स्थिति में मूल भाषा के अभाव में अनुवाद ही एक मात्र आधार होता है जो हमें उस देश की स्थितियों, परिस्थितियों, संस्कृतियों से परिचय कराता है। साहित्य और अनुवाद दोनों का लक्ष्य प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से जहाँ एक ओर साहित्य में निहित सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि भावों को प्रतिपादित करना है, वहीं दूसरी ओर उनमें निहित एकता के सूत्र को ढूँढ़कर वैश्विक एकता, भाईचारे की भावना को भी जन–जन तक पहुँचाता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. अनुवाद कला सिद्धान्त और प्रयोग– डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ. 01 ।
2. हिन्दी रचना चन्द्रोदय, अनुवाद विभाग– आचार्य श्रीरामलोचनशरण, पृ. 01।
3. अनुवाद की शोधनिष्ठ प्रदक्षिणा–डॉ. चन्द्रकांत मेहता, हिन्दी अनुवाद : स्वरूप और संकल्पना–गिरीश सोलंकी, पृ. 03।
4. अनुवाद कला सिद्धान्त और प्रयोग– डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ. 103।
5. पतझड़' काव्य संग्रह, कवि डॉ. मणिलाल ह. पटेल, अनुवाद– डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय, पृ. 14।

रामकथा व्यास परम्परा में गुजरात के संतों का योगदान

डॉ. सरोज गुप्ता*

भारतीय संस्कृति अत्यंत समृद्धशाली एवं गौरवपूर्ण है। ऋषि–मुनियों की तपस्या, त्याग तथा तपोबल का प्रभाव है कि सम्पूर्ण विश्व के हृदयपटल पर हमारी संस्कृति आज भी तीव्रगति के साथ प्रखर रुप से निखर रही है। यहां त्याग और तपस्या है, प्रचण्ड शक्ति के रूप में तपोबल विद्यमान है। प्राचीन, सनातन, आर्य, वैदिक मृत्युंजय संस्कृति इसी तपोबल, ब्रह्मतेज व क्षात्रबल के कारण आज भी अजेय संस्कृति के रूप में स्थापित है। देश में मुस्लिम शासकों तथा आततायियों की अतियों से भारतीय जनजीवन में जब धर्म का प्रवाह अवरुद्ध होने लगा तब सामान्य जनता के हृदय में अतीत गौरव, राष्ट्रप्रेम व उत्साह जगाने के लिए संतों,कथावाचकों ने श्रीराम का आश्रय लिया। हजारों वर्षों के इतिहास की उथल–पुथल एवं राजनैतिक जय–पराजय में भी हिन्दुओं ने कभी हार नहीं मानी, वरन् अपने वैचारिक चिंतनपरक दृष्टिकोण, सनातन जीवनदर्शन, दिव्य दृष्टि, तेजस्विता और प्रखरता द्वारा श्रीराम के आदर्श चरित्र को जीवन में उतारते व ऊर्जस्वित होते रहे।

श्रीराम की कथा का आदिस्रोत वाल्मीकि रामायण है। नारद जी के कथनानुसार ऋषि ने अपने अन्तःचक्षुओं से श्रीराम के जिस रूप का अनुभव किया उसे रामायण में वर्णित कर आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों की अनगिनत चिंतन धाराओं को जन–जन तक प्रवहमान किया। रामायण के साथ गोस्वामी तुलसीदास जी की रामचरितमानस भी विश्व परिदृश्य में भारत के जीवन मूल्य, जीवन दृष्टि, समान जीवन उद्देश्य तथा मूल्य आधारित वैचारिक परम्परा को अग्रसर करने के लिए संतों ने श्रीराम की लोकोत्तर महत्ता को, उनके आचरण को तथा अमृतस्रोतस्विनी वाणी को स्तुत्य बनाया है। अन्धकार में पड़ी मानव जाति को ,दुखशोक–संतप्त जनजीवन को, दुष्टजन–त्रस्त हिन्दू जाति को, उनमें सत्संस्कारों की कभी न बुझने वाली अमोघ दिव्य ज्योति जागृत करने का जो कार्य संतों ने किया वह वरेण्य है। इन्होंने समाज में जाति–पांति की जंजीरों को तोड़कर समरसता का पाठ पढ़ाया है। आस्तिकता, सरसता और लोकहित भावना द्वारा जन–जन का मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे संतों के लिए गोस्वामी तुलसी दास जी ने सही कहा है कि––

संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनं।
धन्यास्ते कृतिनः पिवन्ति सततं श्री रामनामामृतं।।

वे कुशल व श्रेष्ठ पुरुष धन्य हैं जो रामनामामृत का निरन्तर पान करते हैं और कराते हैं।राम नाम संसार रुपी व्याधि का निराकरण करने वाला एक मात्र भेषज है। वास्तव में रामकथा मानवीयता,त्याग एवं कर्तव्यपरायणता का एक ऐसा आदर्श है जिसकी व्यवहारिक शिक्षा बच्चे बच्चे तथा हर प्राणी को मिलना चाहिए। क्योंकि श्रीराम की कथा भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की प्रेरणा का अक्षय स्रोत है और श्रीराम भारत व विश्व के कोने–कोने में विराजमान हैं।

गुजरात में 14वी शती के उत्तरार्द्ध से वर्तमान समय तक रामकथा की परम्परा अबाध रुप से उपलब्ध होती रही है। गुजरात में रामकथा की साहित्यिक परम्परा के साथ वाचिक परंपरा भी रही जो जनसाधारण से लेकर अरावली की कन्दराओं में सदियों से आदिवासी समाज के बीच प्रचलित है। श्री प्रह्लाद दीवान के अनुसार रामकथा के रचनाकारों में सर्वप्रथम राजाराम के पुत्र आशायित भक्त कवि नरसी मेहता के पूर्व से प्रसिद्ध रहे हैं। गुजरात के संतों में श्री नरसी मेहता का आविर्भाव सन् 1371 में हुआ। आपके "रामलीलाना पदो" से महात्मा गांधी अत्यन्त प्रभावित हुए। आपका भजन "वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे"गांधी जी का प्रिय भजन बन गया। 15वीं शती के भालण, उद्धव, विष्णुदास, संतश्री भीम, संत मलूदास, संत अखा, संत मेकण, भक्त गिरधर, स्वामी सहजानंद, स्वामी मुक्तानंद, स्वामी दयानंद, समरसता की गंगा बहाने वाली गंगा बाई,और पानबाई ने भी अपना योगदान दिया।(साक्षी– डॉ. योगेन्द्रप्रताप सिंह, डॉ त्रिभुवन राय– प्रस्तावना) 15वी शती से श्रीराम पर केन्द्रित जैन कवियों की रचनाएं मिलती हैं इसके पश्चात् तो रामकाव्य की पूरी परम्परा ही चल पड़ी। आधुनिक काल के व्यासपरम्परा प्रवचनकारों में अहमदाबाद के निकट सोला में भागवत विद्यापीठ के संस्थापक श्री

***प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय सागर (म प्र) पिनकोड 470001।**

कृष्णशंकर शास्त्री, बड़ौदा के व्यासपरम्परा के प्रतिनिधि श्री रामचन्द्र केशव डोंगरे महाराज,रोहा के श्री पांडुरंग बैजनाथ आठवले, महुआ के श्री मुरारी बापू जी, खेड़ा जिला के दंताली आश्रम के स्वामी श्री सच्चिदानंद जी महाराज ,संत मुरलीधर महाराज,संत शिरोमणि किरीट जी, भक्त संत श्री रमेश भाई ओझा, साध्वी कनकेश्वरी जी व साध्वी ऋचा मिश्रा उल्लेखनीय है।भागवत मार्तण्ड श्री कृष्णशंकर शास्त्री जी के प्रवचनों का संकलन "रामायण नवनीत"के रुप में (सन् 1962) में प्रकाशित है। आप रावण के दस सिरों को दस इन्द्रियों की वासनाओं के संकेत रुप बताते हैं।

रामकथा के गहन अध्येता और व्यासपीठ प्रवचनकार श्री रामचन्द्र केशव डोंगरे महाराज की रामायण–गिरधर रामायण है जिसमें उन्होंने रामकथा पर मौलिक निष्पत्तियां दी हैं। आप मूलतः भक्त संत हैं। आपके प्रवचनों का संकलन "तत्वार्थ रामायण" के रुप में किया गया है। आपके अनुसार भक्ति द्वारा हृदय और मन दोनों को शुद्धता प्राप्त होती है। इससे आत्मज्ञान स्वतःप्रकट होता है। डोंगरे महाराज मानते हैं कि स्वतःस्फुरित ज्ञान स्थिर रहता है। यह अन्तःस्फुरित ज्ञान ही पहुंचे हुए सन्तों का अन्तःप्रज्ञात्मक ज्ञान होता है जिसके माध्यम से मूल सत्य का साक्षात्कार सम्भव होता है। दार्शनिक इसी को सहजानुभूति कहते हैं।(साक्षी –डा योगेन्द्रप्रताप सिंह, डॉ त्रिभुवन राय –लेख– डोंगरे महाराज के राम, 215–16)संत की वाणी में सत्य का सौन्दर्य और सद्भाव के दर्शन होते हैं।इसी क्रम में श्रीमगनलाल हरिभाई व्यासजी गुजरात के बसो नामक ग्राम के निवासी थे। आपका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ। आप प्रवचन देते हुए कहते थे– जैसा अन्न वैसी बुद्धि। जैसा संग वैसी बुद्धि। सत्संग को महत्व देते हुए सम्वत् 2005में श्री मगन भाई स्वर्ग सिधारे।(कल्याण पृष्ठ 615) संत श्रीमोतीलाल जी महाराज जी गुजरात के खेड़ा वाले ब्राह्मण परिवार में संवत् 1941जन्मे थे। श्रीहरिकिशन जी झबेरी लिखते हैं कि महाराज प्रवचन सुनाते हुए कहा करते थे कि इस विश्व में जो बिषय सुख का भान होता है वह वास्तव में सुख ही नहीं है। अपितु लहर की तरह सुख का केवल आभास मात्र है।विषय रुपी हवा के कारण जो लहरें उठती हैं उन्हीं के कारण सच्चे चन्द्र सुख का सम्यक् दर्शन नहीं हो पाता। इस विषय रुपी पवन को रोकने के लिए अतृष्णारुपी ईंट, संतोष रुपी सीमेंट से बनी दृंढ अभ्यास रुपी दीवार की जरूरत है। सदगुरु के उपदेशामृत के आधार –नींव पर दीवार बनाओ, इष्ट के भजन रुपी चूने को पीस कर रखो, अनीर्षाऔर अमोह का पानी झिड़क कर जमीन को तय करो और उसपर काम रहित मसाले और मत्सर रहित प्लास्टर दीवार के ऊपर लगाते जाओ। इसप्रकार अच्छी चहारदीवारी त्यागवृत्ति और सुख दुःख के प्रति समत्व रखकर बनाओ।इस दीवार के बन जाने के बाद विषय रुपी पवन प्रवेश नहीं कर सकेगा और सरोवर का पानी हिलना बंद होकर वह स्थिर हो जायेगा। तब तुम सच्चे सुख चन्द्रमा को सम्यक् प्रकार से देख सकोगे। (कल्याण पृष्ठ 616) इसप्रकार से व्यक्ति को सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा इन संतपुरुषों द्वारा दी जाती रही। डॉ. गोवर्धन शर्मा जी कहते हैं कि कुशल वक्ता अपने श्रोता समुदाय,की अपेक्षा और चाहत को ध्यान में रखकर अपनी बात प्रस्तुत करते हैं ताकि हर श्रोता को अपनापन लगे।दूसरी ओर प्रवचनकार अपनी बात की प्रामाणिकता के लिए अनेक उदाहरण प्राचीन ग्रंथों, इतिहास, लोककथाओं,गाथाओं से एवं अपने अनुभवपरक रोचक प्रसंग सुनाते हैं। इसप्रकार श्रोता समाज में नयी चेतना एवं जागृति आती है वातावरण परिष्कृत होता है। रामकथा निमित्त मात्र है इसके बहाने आदर्श जीवन, सामाजिकता, जीवन की सार्थकता, धर्म अधर्म की बातें बताते जाते हैं। संतों के अनुभव श्रोताओं को अपने जीवन पर घटित घटना जैसी प्रतीत होती।

श्रीराम की दिव्य कथा को मोरारी बापू जी ने समस्त मानव जाति के मंगल की कथा बना दिया। बापू जी ने रामकथा के माध्यम से जन–जन में राम को अपनाने, गोस्वामी तुलसीदास जी की रामचरितमानस को विश्वपटल पर स्थापित करने तथा देश–विदेश में रामकथा रुपी ज्ञान की गंगा बहाने का अद्भुत प्रयास किया है। श्रीरामकृपा का ही सुफल है जो रामकथा रसामृत का सुफल हमसबको दूरदर्शन से ही सही सहज प्राप्त हो रहा है। संत मोरारी बापू ने व्यासपीठ से वैदिक काल से लेकर आजतक वैदिक ग्रन्थों के सारतत्व, उपनिषदों के ऋषियों की वाणी एवं भारतीय दर्शन की आधारशिला को जन–मानस के समक्ष रखकर धर्म ,कर्म, ज्ञान और भक्ति में ऐसा सामंजस्य स्थापित किया कि मुरारी बापू स्वयं राममय हो गये हैं और उनकी वाणी मंत्र बन गयी। बापू जी ने गुजरात के अपने गृहनगर तलगाजरडा से सन् 1960 से श्रीराम की कथा का श्रीगणेश कर रामायण व रामचरितमानस के प्रायः सभी पात्रों पर केन्द्रित तथा महान व्यक्तित्वों को आधार बनाकर (यथा– मानस–केवट, मानस–गांधी) हजार से अधिक विषयों पर आज भी सांगीतिक प्रस्तुति के साथ स्थान,काल व परिस्थिति अनुसार नये नये आयाम निर्मित कर रहे हैं। श्रीराम की कथा दसहजार वर्ष प्राचीन है पर मोरारी बापू वर्तमान संदर्भों में

रामकथा को प्रासंगिक बताकर लोगों को श्रेष्ठ जीवन जीना सिखा रहे हैं। ईश्वर के चैतन्य स्वरुप की अनुभूति, सभी प्राणियों में "ईश्वर अंश जीव अविनाशी " का भाव जागृत करने तथा सभी प्राणियों के अन्दर ब्रह्म विराजमान है, ईश्वर कर्मों का अधिष्ठाता है, साक्षी चेतनस्वरुप है। अन्यान्य जानने योग्य बातों को अनन्त उदाहरणों के माध्यम से अत्यंत सरल, बोधगम्य भाषा शैली में जनता जनार्दन के समक्ष रखकर सत्य, प्रेम करुणा की त्रिवेणी से अपनी व्यासपीठ सिद्ध कर रहे हैं। ऐसे महामानव अवतारी पुरूष ही होते हैं। वे लोग धन्य हैं जिन्होंने मोरारी बापू की रामकथा प्रत्यक्ष सुनी है। बापू के शिष्य श्रीरमेशभाई ओझा गुजरात के सौराष्ट्र जिले के देवका नामक गांव में 31अगस्त सन् 1957 में जन्मे, पारिवारिक संस्कारों के प्रभाव से पिता ,चाचा श्रीजीवनराज ओझा एवं दादी की भागवती चेतना को आपने आगे बढ़ाया। तथा तेरह वर्ष की अवस्था में भागवत पुराण पर पहली व्यासकथा का शुभारंभ किया। धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन, मनन सतत् सक्रिय देश–विदेश में निरन्तर व्यासपरम्परा का निर्वहन बिना किसी अवरोध के आप कर रहे हैं। श्रीमद्भागवत पुराण, गीता, रामायण, ज्ञान कथा और लोक–मंगलकारी रामचरितमानस के प्रवचन में विशेष अधिकार रखने वालों में श्री किरीट जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपका जन्म 21 जुलाई सन् 1962को पोरबंदर में हुआ था। आपने आत्मज्ञान हेतु सात वर्ष की अवस्था में बल्लभ कुल के गोस्वामी श्री गोविन्दराय जी महाराज से दीक्षा प्राप्त की। मृदुभाषी, अगाध ज्ञान सम्पन्न संत किरीट जी देश–विदेश में भक्ति की ऐसी लहर प्रवाहित कर रहे हैं कि गुजरात धन्य हो गया।

आध्यात्मिक जगत में विशेष पहचान बनाने वाले गुजरात के ही संत श्री मुरलीधर जी व्यासपीठ से रामकथा के प्रवचन अपनी प्रभावशाली और भावुकता से ओतप्रोत कथाशैली से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर रहे हैं।कल्लोल गांव जिला मेहसाणा में सन् 1970में साधारण परिवार में जन्मे तथा परम वैष्णव संत श्री जमनादास से दीक्षित होकर समाज के लिए प्रेरक, युवाओं के लिए मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

आधुनिक भारत की मीरा के नाम से सुविख्यात ,मानसमर्मज्ञा साध्वी कनकेश्वरी देवी गुजरात के मोरबी के तपोनिष्ठ संत श्रीशंभु पंचाग्नि अखाड़े के प्रमुख परमपूज्य केशवानंद बाबा की दीक्षित शिष्या हैं। आप अपने संचित पुण्यों के प्रताप से श्रीरामचरितमानस एवं श्रीमद्भागवत पुराण व गीता की अमृतरुपी रसधारा प्रवाहित कर रही हैं। छोटी उम्र से ही वाग्देवी की कृपा एवं आध्यात्मिक रुझान के कारण देश विदेश में ख्याति प्राप्त हैं। करुणा की साक्षात् प्रतिमूर्ति मां कनकेश्वरी जी की कथाएं ,प्रवचन देश–विदेश में हो रहे हैं। इसी क्रम में गुजरात की साध्वी ऋचा मिश्रा का नाम भी कथा वाचकों में प्रसिद्ध है। आप श्रेष्ठ भजन गायिका हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी की रामचरितमानस की सांगीतिक अभिव्यक्ति का आपका निराला अंदाज श्रोताओं को भावविभोर व मंत्रमुग्ध कर देता है। गुजरात श्रीकृष्ण की राजधानी रही उन्होंने अपने जीवन के एक सौ बीस साल में सौ वर्ष द्वारिकापुरी में बिताए। गुजरात पर कृष्ण भक्ति का प्रभाव अधिक है यह सुनिश्चित है परन्तु रामकथा व्यासपरम्परा के मूर्धन्य संतों के योगदान को देखते हुए कहा जा सकता है कि रामकथा गुजरात के लोकजीवन में,समाज व संस्कृति में इतनी गहराई से विद्यमान है कि इस विषय पर गहन शोध की आवश्यकता है।

रामकथा व्यासपरम्परा में गुजरात के संतों के योगदान उनकी शक्ति सामर्थ्य, दूरदृष्टि तथा लोककल्याण के भाव को महसूस किया जा सकता है। संतों के नाम बहुत हैं, पर सुविधा की दृष्टि से कुछ का ही विवेचन किया गया है। भारत देश के इतिहास में संतों के प्रति श्रृद्धा, भक्ति व पूज्यनीय भाव देश–विदेश में ज्ञात है परन्तु कुछ वर्षों से संत की महिमा व उनके कथनी–करनी के अन्तर से श्रृद्धा में कमी आई है। गुजरात के लब्ध प्रतिष्ठ संतों में व्यासपीठ को कलंकित करने वाले आसाराम बापू आज जेल की सलाखों में बंद हैं। श्रद्धेय संत मोरारी बापू ने रामकथा के माध्यम से राष्ट्रीयता की जो अलख जगायी है वह स्तुत्य है। अधिकांश संत गोस्वामी तुलसीदास जी की रामचरितमानस पर ही अपना प्रवचन देते हैं उनका तुलसीमय होना वरेण्य है। तुलसीदास जी के शब्दों में– श्रीराम की कथा कल्पवृक्ष के समान है, जितना महत्त्व श्रवण का है उतना ही रामनाम जप का भी है।

नाम राम को कल्पतरु,कलि कल्याण निवासु।
जो सुमिरत भयो भाग में, तुलसी तुलसीदास।।

ॐ★ॐ

हिन्दी-साहित्य के विकास में गुजरात की भूमिका

डॉ. अमित कुमार ओझा*

'हिन्दी – साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान' यह एक गम्भीर विचारणीय प्रश्न है भारतीय संविधान में गणराज्य के एक स्वतंत्र प्रान्त के रूप में गुजरात को मान्यता सन् 1960 में मिली। पुरातात्विक भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार विश्व में सबसे पहले लिपि के विकास की पहल गुजरात के धौलावीरा से हुई। शारदा, कुटिल, चित्र, संकेत, खरोष्ठी, ब्राम्ही, देवनागरी लिपि के विभिन्न कदम प्राणी को मनुष्य बनाने की ओर अग्रसर परा, अपरा, पश्यन्ती और बैखरी के माध्यम से कर रहे थे। भारत में देवनागरी का प्रारम्भिक रूप वैदिक, लौकिक, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट के माध्यम से हिन्दी तक आया।

प्राचीन समय से ही गुजरात भारतवर्ष का पश्चिमी प्रदेश व समुद्र तट पर बसा होने का कारण आदि काल से देश को दिशा दिखाता रहा है। सिन्धु–सरस्वती या हड़प्पा संस्कृति के पश्चात् महाभारत काल में स्वयं श्री कृष्ण ने इसे अपनी कर्मभूमि बनाकर गौरवान्वित किया। कृष्ण गुजरात के घर–घर में छाये रहे हैं। वैष्णव परंपरा के कारण गुजरात के कवियों ने ब्रज में स्वतंत्र रूप से काव्य साधना की है। गुजरात में निज भाषा का गौरव कम ही रहा है। यह भूमि वैश्विक चेतना को समेट कर चलती रही है। शायद इसी वजह से इसे वैश्विक पहचान, मान्यता भी प्राप्त होती रही है। गुजराती दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी भी अपने हिंदी ग्रंथों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करना पसंद करते हैं। और भी हिंदी गद्य साहित्य में लल्लूलाल और दयानंद का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है।

हिंदी साहित्य की प्रतिष्ठा के पूर्व अपभ्रंश के तीन रुप थे नागर, उपनागर और ब्राजक उसकी साहित्य के रुप में प्रतिष्ठा रही और संस्कृत के बाद प्रावृत्तों की और अपभ्रंश की प्रतिष्ठा में गुजरात की विशेष भूमिका रही। आचार्य हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण में जो छन्द उद्धत है– भल्ला हुआ जो मारिया जो कन्त – यह खड़ी बोली का सर्वमान्य और सर्वप्रथम प्रयुक्त छन्द है। जहां कि खड़ीबोली को यहां गुजरात में देखने का अवसर मिला हेमचन्द ने व्याकरण लिखा और बहुत सारी रचनाएं उनकी रहीं और एक लंबी परम्परा जैन साहित्य की विकसित हुई गुजरात में। जैनों की यह मान्यता रही कि जनभाषा में अपने विचारों को व्यक्त करें। जैसे–जैसे प्राकृतें जन–साधारण से दूर हटीं, तो उन्होने अपभ्रंश में रचनाएं कीं और अपभ्रंश के बाद हिंदी में रचनाएं कीं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही है कि गुजरात प्रदेश हमेशा से हिन्दी के प्रति उदार रहा है और हिंदी भाषा और साहित्य को जानने की प्रबल अभिलाषा रही है। राम–भक्ति और कृष्ण–भक्ति परंपरा ने गुजरात में भी हिन्दी को समझने का प्रश्रय प्रदान किया। गुजरात में वैष्णव हिंदी–साहित्य प्राप्त होने का समय वही है, जो हिन्दी में है। पन्द्रहवीं शती में नयर्षि, मयंण और भीम– ये चार वैष्णव कवि हुए जिनकी कृष्ण भक्ति की स्फुट पद रचनाएं मिलती हैं। कबीर और मीरा का गुजरात के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। नर्मदा तट पर कबीर बड़ है जो स्वयं एक तीर्थ बन चुका है। कबीर–सम्प्रदाय के करोड़ों अनुयायी गुजरात सौराष्ट्र व कच्छ में फैले हुये हैं। मीरा ने तो गुजरात में ही जीवन के अन्तिम वर्ष व्यतीत किये थे।

गुजरात के भक्ति के सम्प्रदायों का हिन्दी के विकास में बहुत महती भूमिका रही है। चौदहवीं सदी में जैन साहित्य प्राप्त होता है, पन्द्रहवीं सदी में पृथ्वीचंद और उनके बाद कृष्णदास, केशवराम, जिनरंग जैन, ज्ञानानंद इत्यादि कई कवि मिलते हैं। गुजराती भाषा के आदि कवि माने जाने वाले नरसिंह मेहता ने ब्रज में भी कुछ रचनाएं की थी। गुजरात के कई संत–कवियों ने गुजराती के साथ हिन्दी में पूरे अधिकार के साथ सृजन–साधना की है। प्रसिद्ध गुजराती भजन 'हरि नो मारग' कवि प्रीतमदास ने सधुक्कड़ी भाषा में पद और साखियां लिखी हैं। गुजरात में जैन धर्म प्रभावशाली रहा है। दसवीं से सत्रहवीं शती तक उनकी अपभ्रंश

***असिस्टेंट प्रोफेसर, मंगला देवी स्मारक डिग्री कालेज, मसिका, नैनी, प्रयागराज।**

रचनाएं मिलती हैं। तत्पश्चात ब्रज और खड़ी बोली में। आनन्दघन, ज्ञानानन्द, विजय, यथोविजय और किशनदास विशेष उल्लेखनीय हिन्दी सेवी साधु कवि हैं।

गुजरात के भक्ति संप्रदायों में स्वामी सहजानंद के प्रभावशाली नेतृत्व में प्रारम्भ से ही श्रेष्ठ काव्य रचनाएं मिलती हैं। उनके सम्प्रदाय में मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानंद, निष्कुलानंद, भूमानन्द, देवानन्द और मंजुकोशानन्द की हिन्दी रचनाएं हिंन्दी पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। बल्लभाचार्य के अष्टछाप कवियों की तरह भगवान के ये आठ हिन्दीभाषी कवि भी काव्य प्रतिभा के धनी थे। इन आठ कवियों में मुक्तानंद, ब्रघानंद और प्रेमानंद की त्रिपुटी प्रखर है। ब्रह्मनन्द सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। डूंगुरपुर के ये लाडू बारोट यूवावस्था में श्री रंग नाम लिखते रहे। ब्रह्मनंद तो उत्तरावस्था में हुये। तीनों नाम से उनकी कविता मिलती है। उनकी शिक्षा दीक्षा भुज की ब्रजभाषा पाठशाला में हुई थी। हिन्दी में उनके ग्रंथ है– 'सम्प्रदाय प्रदीप', 'सुमित प्रकाश', 'उपदेश चिन्तामणि', 'ब्रजविलास' आदि।

प्रणामी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव भी गुजरात में ही हुआ। स्वामी सहजानन्द उत्तर भारत से आकर गुजरात में स्वामीनारायण सम्प्रदाय के संस्थापक व सर्वावतारी प्रकट ईश्वर की तरह पूजे गये और गुजरात के एक प्रमुख धार्मिक संगठन के रुप में सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुआ, ठीक उसी तरह गुजरात से निकले हुये दो महात्मा–महामति प्राणनाथ और दयानन्द सरस्वती गुजरात से दूर–सुदूर अपनी धर्मचेतना प्रसारित करने में सफल हुये। दोनो ने स्वयं गुजराती होने के बावजूद हिन्दी में ही उपदेश भी दिया और धर्मग्रंथों की रचना भी की।

हिन्दी का सांस्कृतिक एकता और संवर्द्धन के मद्देनजर एवं प्रादेशिक स्तर पर भी गुजरात का अतुलनीय योगदान रहा है। आजादी के पहले हमारे अहिन्दी और हिन्दी भाषी पुरखे भारतीय सोच और भारतीय दिल रखते थे। वे लेन–देन, आदान–प्रदान वाली व्यापारिक मानसिकता और अलगाववादी क्षेत्रपरक भाविक विशिष्टता के जोड़–घटाने, लाभ–हानि से ऊपर उठकर राष्ट्रीय–सांस्कृतिक एकता के परिप्रेक्ष्य में स्वाभावतः सोचते थे। वे भाषायी सांप्रदायिकता और पृथकतावादी भाषायी क्षेत्रीयता की संकीर्ण सोच से दूर अन्तर्देशीय मेल–जोल, भाईचारे के धरातल पर सोचते थे और इसमें प्रेमसेवा और गौरव का अनुभव करते थे। सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्य भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रहा है उनमें मेल जोल और परस्पर आदान–प्रदान भी खूब हुआ है, लेकिन उनमें एकतरफा संकीर्ण कृपादृष्टि का लेश नहीं है और न तो अपने आदान प्रदान की ऐसी आत्मसजग आत्मश्लाघा है कि हिन्दी आफत की मारी भिखारी है, उसे ही भाषायी चन्दे और ज्ञान की जरुरत है।

हिन्दी भाषा और साहित्य गुजराती भाषा एवं साहित्य को हम इस प्ररिप्रेक्ष्य मे समझने का प्रयास करते हैं कि काशी के कबीर भृगुकच्छ (भरुच) गुजरात में आते हैं और 100 साल के बाद नरसी मेहता और अखा के हृदय में अपनी जगह बना लेते हैं। अहमदाबाद के अखा गुजरात का धागा गोकुल और काशी से जोड़ देते हैं। दयाराम गुजरात को नाथद्वारा से मिलवाते हैं और राजस्थान की मीरा बाई बृन्दावन को द्वारका से मिला देती हैं। जामनगर के प्राणनाथ गुजरात का तार पन्ना मध्यप्रदेश के बुन्देला शासक छत्रसाल से मिला देते हैं। बल्लभाचार्य उनके पुत्र विद्धतनाथ, गोपीनाथ ब्रज को, अयोध्या क्षेत्र के स्वामी सहजानन्द हिन्दी क्षेत्र को गुजरात, सौराष्ट्र से मिलवाते हैं। और अहमदाबाद के दादूदयाल अपना पांव राजस्थान में जमाते हैं।

पाटण पर अलाउद्दीन खिलजी की विजय (सन् 1297) दिल्ली पर तैमूर लंग का आक्रमण और कत्लेआम (सन् 1398) के चलते दिल्ली के आस पास के सूफी अहमदाबाद, प्रभास पट्टण, मांगरोल, गोधरा, सूरत में अपना डेरा जमाते हैं और सन् 1573 में अकबर द्वारा गुजरात विजय के बाद वे गुजरी को दकन में रोप देते हैं। वली गुजराती, वली दकनी और वली देहलवी एक ही शायर की रचनाशीलता की मिशाल है। धार्मिक–सांस्कृतिक, समाजसुधार, राजनीतिक, रोजी रोटी के कारण कृष्णदास, दलपतिराम, वंशीधर, गंजन, प्रहकर, बनारसीदास जैन, लल्लूलाल, दलपतराम, स्वामी दयानन्द सरस्वती, गोविन्द गिल्लाभाई, आनंदशंकर ध्रुव, महात्मा गांधी आदि गुजरात के हिन्दी भाषी क्षेत्र के बीच सेतु का कार्य करते हैं। यही कारण है कि गुजरात और हिन्दी का धार्मिक–सांस्कृतिक–साहित्यिक सूत्र कमोवेश एक है।

आधुनिक काल में गुजराती साहित्य में दलपतराम (1820–1898) ब्रजभाषा में कविता करते थे। दलपतराम आरम्भ में परम्परावादी थे। बाद में सामाजिक जीवन से इनका प्रेम बढ़ता गया। समाज सुधार, देशप्रेम, नैतिक मूल्य के तत्वों से समझौता किये बिना नीति, धर्म तथा अन्य विषयों पर इन्होने लिखे। भारतेन्दु की तरह नाना विषयों के बावजूद सामाजिक सारोकार से बंधे हुये देश–प्रेम ही इनी केन्द्रियता रही। नर्मद दूसरे आधुनिक कवि हुये जिन्होने मध्यकालीन रुढ़ियों से कविता को मुक्त कर के नये–नये विषयों की ओर मोड़ दिया। गुजराती साहित्य में नर्मद के नाम से नर्मद युग है, जैसे हिन्दी में भारतेन्दु और द्विवेदी युग है। नर्मद युग के बाद गुजराती– साहित्य में पंडित युग आया। इसे गुजराती साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है जो 1885 से सन् 1920 तक चला।

गुजराती भाषा के साहित्य में भी स्वाधीनता आंदोलन के इस प्रथम दौर के काल को नवजागरण से ही जोड़कर देखा जाना चाहिये। गुजराती साहित्य में हिंदी से पहले आधुनिकता का भी प्रवेश हुआ और नवजागरण का भी। पंडित युग के पहले आधुनिकता बोध से संपन्न साहित्यकार गोवर्द्धनयम त्रिपाठी थे। दूसरे–तीसरे और अनेक साहित्यकार जैसे मणिलाल नाथू भाई द्विवेदी, रमणभाई नीलकण्ठ, नरसिंहराव, भोलानाथ द्विवेदी, आनंद शंकर ध्रुव, मणिशंकर रतन जी भह, नानालाल, बलवन्त राय ठाकेर आदि। राष्ट्रीय जागरण का ताजा उल्लेखित साहित्य के गांधी के साहित्य और चिंतन में है। गुजरात की धरती पर अवतरित हुये गांधी के योगदान का हिन्दी साहित्य पर अद्वितीय प्रभाव पड़ा।

गुजरात बराबर ही हिन्दी साहित्य और भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाने में अग्रणी रहा। भगवान कृष्ण का काल लें या शंकराचार्य का। सनातन भारत को एक करने के प्रयास का कालखण्ड गुजरात अग्रणी रहा है। महात्मा गांधी की मातृभाषा गुजराती थी। लेकिन उन्होने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया और उन्हानें अपने अधिकांश भाषण हिन्दी में दिये । वे हमेंशा कहते थे– ''स्वदेश भिमान को स्थिर रखने के लिये हमें हिन्द सीखनी चाहिये।'' गांधी जी के विपुल साहित्य को उनकी मृत्यु के बाद भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने सम्पूर्ण गांधी वाड़मय नाम से छापा है। गांधी जी जितने बड़े देशभक्त थे उतने ही बड़े हिन्दी प्रेमी भी थे। हिन्दी भाषा के पक्ष में, हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिये गांधी जी ने बहुत श्रम किया था। महात्मा गांधी का राष्ट्रप्रेम प्रेमचन्द्र से भिन्न नहीं है।

हिंदी में स्वाधीनता– आंदोलन के दौर में गांधी जी की राष्ट्रीयता गांधी जी को नैतिक उंचाई, गांधी की अहिंसा, गांधी जी की राजनीतिक दार्शनिकता, गांधी की सादगी, गांधी का सदाचार और उनके संघर्ष की शक्ति का असर हिन्दी साहित्य में, साहित्य के प्रायः सभी अनुशासनों में प्रत्यक्ष है। गांधी जी का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, हिन्दी साहित्य में गांधी का व्यक्तित्व उनके विचारधारा, उनकी अहिंसा के प्रयोग के कारण तो मुखर है ही, ह्रदय परिवर्तन की अलक्षित शक्ति के कारण और भी अधिक हे। हिन्दी–साहित्य को दार्शनिक हैसियत मिली है। वास्तव में महात्मा गांधी का व्यक्तित्व इतना विराट था कि उनका पूरा साहित्य ही गांधी दर्शन बन गया।

हिन्दी साहित्य में भक्ति काल 'सुवर्ण युग' से अभिहित है जिसका रसपान भारतीय जनमानस ने मग्न होकर किया था। गुजरात के संतो ने, कवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा हिंदी साहित्य को श्रीवृद्धि करने का विनम्र प्रयास किया। डॉ. अम्बाशंकर नागर लिखते हैं– ''क्या विषय, क्या भाषा और क्या कथन की भंगिमा, सभी दृष्टियों का संत साहित्य भारतीय संत साहित्य की एक अभिन्न कड़ी और राष्ट्र की अमूल्य संपदा है।''[1] स्वामीनारायण सम्प्रदाय के कवियो ंकी कृष्ण की अलौकिक क्रीड़ा का चित्रण किया है–

जीमत हरि माखन रोटी लिये,
कर भजन करीके करुना निधि, बार–बार जलपान पीये। जी।। टेक ।।
रुची रुची ग्रास आश में लेवल, चखन चातुरी हरख हीये।
मता पिता मन मोद बढ़ावत, गयुं रोचन तन खीर कीये।। 'जी।।टेक।।2–श्री देवानन्द स्वामी

श्री देवानंद स्वामी ने ब्रज के सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित कई बातें अपने काव्यों में की है। इससे ब्रज प्रदेश और उनकी जनभाषा हिन्दी को वर्णित करने की कोशिश की है। गुजरात के संतो की हिंदी

साहित्य को देन, ले0डा0 रामकुमार वर्मा, 'प्राग्वचन' – डॉ0 अम्बाशंकर नाग, पृ0 7 और श्री देवानन्द काव्य, पद 1086, पृ0 405।

गुजरात का भारत ही नहीं, अपितु विश्व के देशों में महत्वपूर्ण योगदान है। ''दक्षिण अफ्रीका में बसे बहुसंख्यक भारतीय गुलामों को मूलभूत नागरिक अधिकार दिलाने की लड़ाई लड़ते हुये गांधी जी कई बार जेल गये। उनमें आत्मचेतना जाग्रत करने के साथ–साथ हिंदी भाषा को विकसित किया।''[3] हिन्दी साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान साहित्य की सम्पन्नता और उसके निरन्तर उन्नयन का एकमात्र कारण हिन्दी की अपनी उदारता और सबको समाने की जो प्रवृत्ति है।

वर्तमान समय में गुजरात के लोग हिंदी साहित्य की सभी विधाओं मे गुजरात के लोग लिख रहे हैं। नाटक, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, निबंध, काव्य, कविता, गजल आदि लिखे जा रहे हैं। प्रो0 भगवान दास जैन (अहमदाबाद) के कई गजल संग्रह इधर प्रकाशित हुये हैं। जैसे – 'जिंदा है आईना', 'कटघरे में मैं हूं', 'देख नजारे नई सदी के'। प्रो0 जैन 'आधुनिक हिंदी–साहित्यः गुजरात के सह सम्पादक भी हैं। इन्होनें साहित्यिक, आध्यात्मिक, चिकित्सा विषयक ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद भी किया है।

महात्मा गांधी और स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी के प्रचार प्रसार के लिये जितना योगदान दिया वह अविस्मरणीय है। इन्होनें राष्ट्रीय एकता, अखण्डता के लिये हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रुप में अपनाने पर बल दिया। वस्तुतः राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से हिंदी को सर्वाधिक उपयुक्त मानते हुये इसे राष्ट्रभाषा के रुप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास जो हिन्दी भाषियों ने किया, उतना तो शायद हिन्दी भाषियों ने भी नहीं किया।

1. विश्व के महान इतिहास पुरुष, डॉ0 गंगा प्रसाद शर्मा

महात्मा गांधी ने हिंदी की महत्ता को प्रतिपादित करते हुये का था – ''राष्ट्रभाषा हिन्दी ही बन सकती है क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी अन्य भाषा को नहीं।''[4]

2. राष्ट्रभाषा संदेश, 15 सितम्बर 2009।

अतः निष्कर्ष रुप में हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य का गुजराती साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। सम्भवतः अहिन्दी भाषी प्रदेशों में गुजरात इकलौता राज्य है जहां हिन्दी के प्रचार–प्रसार को सर्वाधिक मान्यता मिली। आज इक्कीसवीं शती में हिन्दी का प्रचार–प्रसार अनेक माध्यमों से हो रहा है। इसमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति 'वर्धा' का नाम विशेष रुप से सामने आता है और महात्मा गांधी और दयानन्द सरस्वती के द्वारा किये गये हिन्दी के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता।

सन्दर्भ–सूची :–

1. गुजरात के संतो की हिंदी साहित्य को देन, ले0डा0 रामकुमार वर्मा, 'प्राग्वचन' – डॉ0 अम्बाशंकर नाग, पृ0 7।
2. श्री देवानन्द काव्य, पद 1086, पृ0 405।
3. विश्व के महान इतिहास पुरुष, डॉ0 गंगा प्रसाद शर्मा।
4. राष्ट्रभाषा संदेश, 15 सितम्बर 2009।

त्रिलोचन की कविता में लोक-जीवन और प्रकृति

डॉ. राजेश श्रीवास*

त्रिलोचन की कविताओं में प्रेम और प्रकृति– प्रमुख विषय हैं। इनका प्रेम भावुकता मात्र नहीं है, वह या तो साहचर्य और श्रम से संबंधित है या फिर गृहस्थ–प्रेम का रंग लिए हुए है। प्रकृति इनकी कविताओं का सबल पक्ष है। प्रकृति संबंधी कविताओं में सामाजिक चेतना का स्वर भी पूर्ण रूप से उभरा है। ग्रामीण जीवन के विविध पक्ष, वहाँ के विविध रंग असमस्याएँ इनकी कविताओं में देखने को मिलती है। इस संबंध में डॉ. शिवप्रसाद सिंह कहते है–''शास्त्री को लोकजीवन से उत्पन्न स्नेहगंधी मानस मिला है। वे निराला की तरह इस मानस में बोह लेते रहे है और रह–रहकर गर्दन उठाकर लम्बी साँसे खींचते रहे हैं। गँवई–गाँव की डगर, धान पोखर बातचीत, पुराने लोगों के बेशकीमती अनुभव से प्रसूत उक्तियाँ घरेलू दुख दर्द की अबूझ समझ और खाँटी धरती की कास उजास में फूटते मुहावरों और शब्दों की गमक उनकी अपनी बेशकीमती धरोहर हैं। वे चिल्ले जाड़े में कुहरे में लिपटे गँवई वातावरण में 'अतबरिया' को देखकर लाचारी की मार का राग अलापें या भिखारियों की अकिंचनता पर तरस खाएँ लगेगा कि, यह सारा कुछ आत्मवेदना का इजहार है।''[1] त्रिलोचन अपनी कविता के विषय में स्वयं स्पष्टीकरण देते हैं। उनकी कविता दिल की धड़कन है और वे उसी काव्य परंपरा में अपने को खड़ा करने की कोशिश करते है जो परंपरा वेद के मंत्रदृष्टा ऋषियों से शुरू होकर वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास से होती हुई, रवीन्द्र तक आती है। काव्य रस की वही धारा त्रिलोचन की कविता में प्रवाहित होती है जिसे रसज्ञ तो ग्रहण कर सकते है अजीर्णग्रस्त नहीं– जो रसज्ञ हैं, इसे उन्हीं के लिए लिखा है,/जो अजीर्णग्रस्त हैं, कहेंगे इसमें क्या है।

त्रिलोचन छायावाद की पगडंडियों में चलकर जनवादी कविता के दायरें में पहुँचे हैं और नागार्जन तथा केदार के साथ प्रगतिशील जनवादी कविता की वृहत्त्रयी का निर्माण करते है। युवा समीक्षक सत्यप्रकाश मिश्र ने त्रिलोचन को ठेठ देशी कवि कहा है और सही कहा है। त्रिलोचन प्रकृति से ग्रामीण मानस के हैं इसीलिए उनकी रचना का रंग–रेशा ग्रामीण बुनावट को सूचित करता है। उनकी कल्पना, उनकी भाषा का मुहावरा, रचना के भीतर की उनकी सोच सब कुछ प्रकृत्या बड़ी सहज और आडम्बरहीन है। अपने मानवीय तथा सामाजिक सरोंकारों में त्रिलोचन की सर्जना अतिशय सम्पन्न सर्जना है। 'धरती' संग्रह में अधिकांश रचनाएँ प्रकृति से जुड़ी हुई है। वास्तविकता यह है कि यदि प्रकृति के प्रति कवि ने ममता न दिखाई होती और अधिकांश कविताओं में प्रकृति के मोहक और विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत न किए होते, तो यह संग्रह रूखा, निर्जीव और स्पंदनहीन हो जाता किन्तु कवि प्रकृति की अनिर्वचनीय संदरता और आभा पर पूरी तरह मुग्ध हैं। उदा. के लिए यह अंश देखिए– ''सघन पीली/ऊर्मियों से/बोर/हरियाली/सलोनी/झूमती सरसों/प्रकंपित वात से/अपरूप सुन्दर।/धूप सुन्दर/ धूप में जग रूप सुन्दर ।''[2] संग्रह की कुछ कविताओं में प्रगतिशील चेतना का स्वर भी है। कवि की मान्यता यह रही है कि पूँजीवाद ने सभी के महत्व को नष्ट कर दिया है। जीवन, जन, समाज और कला सभी नष्ट कर दिये हैं। ऐसी स्थिति में पूँजीवाद को मिटाये बिना किसी भी प्रकार से हमारा जीवन स्वस्थ नही हो सकता है। इस भाव की प्रस्तुति कवि की इन पंक्तियों में देखिए– ''पूँजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सबका/जीवन का, जन का, समाज का, कला का/बिना पूँजीवाद को मिटाये किसी तरह भी/यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता।''

त्रिलोचन की वे रचनाएँ जो एक व्यक्ति के रूप में उनके मन के निजी सुख–दुख उभारती है, अपने आप में निजी नही बन पाई हैं, वहाँ भी कवि एक सामाजिक व्यक्तित्व लेकर किसी का संग–साथ चाहता हुआ सामने आया है।

त्रिलोचन शास्त्री विचारधाराओं में जीवन की तलाश नहीं करते बल्कि आम आदमी के बीच रहकर उनसे संवाद करते हुए उनकी समस्याओं कठिनाइयों और संघर्षो को समीप से जाँचते–परखते हुए यथासंभव उनसे साक्षीदारी करते हुए जीवन का साक्षात्कार करते है। शास्त्री जी ध्वनिग्राहक कवि है। समाज में उठने वाली सूक्ष्म

***विभागाध्यक्ष, हिन्दी सेठ फूलचंद अग्रवाल स्मृति महाविद्यालय, नवापारा (राजिम) रायपुर (छ.ग.)**

ध्वनियों को अपनी सूक्ष्मग्रही चेतना से वे ग्रहण कर लेते हैं, वे जहाँ जैसे जिस रूप में समाज को देखते है उसी रूप में उसे व्यक्त करते है। ''वे एक कसी हुई वीणा की तरह है कि कोई एक तार कहीं से छू दे तो देर तक झंकार, गूँज–अनुगूँज सुने। त्रिलोचन में ज्ञान सिर्फ 'ज्ञान–राशि' के रूप में ही नहीं है, 'वाक्राशि' के रूप में भी है। इसमें विलक्षण स्मरण की भूमिका भी है और कहन के रस का आत्मभोग भी।''[3] समाज की लड़ाई के नयी आशाओं और अभिलाषाओं को नये चित्रों और नयी भाषा में संजोने का संकल्प लेकर त्रिलोचन हमारे सामने आते है। दीन–दुखियों और गरीबों की पीड़ा से त्रिलोचन की आत्मा कराहती रहती है। मुक्ति की कामना लेकर संघर्षशील जनता की पैरों की आहट के साथ त्रिलोचन का दिल धड़कता है। जब जनता के पैरों में काँटे–चुभते हैं तो त्रिलोचन का हृदय विदीर्ण हो उठता है। किसी भी देश में जब मानवता को मुक्ति मिलती है तो त्रिलोचन का दिल कली की तरह खिल उठता है। निम्नलिखित कविता में इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है– ''अपनी मुक्ति– कामना लेकर लड़ने वाली /जनता के पैंरों की आवाजों में मेरा /हृदय धड़कता है। पग में गड़ जाने वाली /नोंके काँटों की, कोमल चमड़े का घेरा/मेरा फाड़ दिया करती हैं। जहाँ अँधेरा /सदियों का हैं, वहाँ जो न घट जाए वही कम।''[4]

अपनी व्यापक काव्य–दृष्टि और काव्य–विवेक के साथ त्रिलोचन जीवन और प्रकृति में प्रवेश करते है और वहाँ से नयी प्रेरणा एवं नया रंग नया भावबोध लेकर काव्य रचना में प्रवृत्त होते है। वे कभी सूरज की किरणों की सारंगी लेकर ऐसा स्वर छेड़ते हैं कि चिड़ियाँ उनके साथ गाने लगती हैं। रंग–बिरंगी तितलियाँ नर्तन करने लगती हैं। सारा विश्व गीत के तरंगों के कम्पन से तरंगित हो उठता हैं। जाने–अनजाने सब प्राणप्रिय हो जाते हैं। जब प्रकृति के साथ कवि गहरी आत्मीयता स्थापित करता है तभी प्रकृति का सौन्दर्य और प्रकृति का रहस्य उसकी चेतना में उद्घाटित होता है। कवि जब अपनी कविता का राग छेड़ता है, वह राग मात्र विद्वेष, ईर्ष्या एवं संघर्ष का ही नहीं होता हैं बल्कि उसमें उल्लास और ऐश्वर्य की सम्पन्नता भी होती है उसके काव्य संगीत पर लतिकायें फूल चढ़ाती है, पेड़ हिल–हिलकर भावों का संकेत करते हैं और पवन मधुमास के स्वागत का तौर तरीका बतलाता है। प्राकृतिक चित्रण का अनोखा तरीका त्रिलोचन में दृष्टिगत होता है। जहाँ मनुष्य की श्रेष्ठता के गुर तो है ही प्रकृति की जीवन्त एवं प्रेरक छवि भी हैं। त्रिलोचन जी का प्रकृति चित्रण कितना नवीन और कितना प्रभावोत्पावक है –

''कल अस्ताचलगामी रवि–कर की सारंगी
मैंने यों ही ले ली, धुन में लगा बजाने
संग संग संवादी स्वर में अपने गाने
चिड़ियों ने गाए, पत्तों ने रंग बिरंगी
नृत्यकला दिखलाई, सारा विश्व तरंगी
बना तरंगों के कम्पन से, अनपहचाने
बंधु और आत्मीय बन गए, जाने–माने।''[5]

यह लोकजीवन या कहें कि भारतीय किसान का जीवन त्रिलोचन की कविता में रचा बसा है। वे इसी जीवन को अपना मानते हैं और गर्व के साथ इसका बयान करते हैं– ''तुमको अपना कहूँ किन्तु कहने का साहस /मेरे मन में नहीं बचा हैं मेरे गंदे/कपड़ों से तुमको नफरत है। तो फिर वंदे।/बड़े बनों तुम, मुझको अपनी दुनिया में रस/मिलता है, तुम गाड़ी–घोड़ो का सुख लूटों,''[6]

यही त्रिलोचन की अपनी दुनिया है– भारतीय जन की असली दुनिया जिसके मानसिक बनावट का बहुत अच्छा चित्रण उन्होंने अपने एक सानेट में किया है–

''उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला–नहीं जानता
कैसे होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है। कब सूखा है
उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता
सकता है। वह उदासीन बिल्कुल अपने से,
अपने समाज से हैं, दुनिया को अपने से
अलग नहीं मानता, उसे कुछ भी नहीं पता

दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँची, अब समाज में
वे विचार रह गये नहीं हैं, जिन को ढोता
चला जा रहा है वह अपने आँसू बोता
विफल मनोरथ होने पर अथवा अकाज में।
धरम कमाता है वह तुलसीकृत रामायण
सुन, पढ़कर, जपता है नारायण नारायण।''[7]

त्रिलोचन क्रांति, विद्रोह, क्षोभ, आक्रोश या उत्तेजना के कवि नहीं है। वे मूलतः राग के कवि हैं इस लोक के सौन्दर्य में उनका गहरा लगाव है। प्रकृति सौन्दर्य के साथ ही नारी प्रेम की विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ भी उनकी कविता में काफी मिलेंगी। नारी सौन्दर्य, मिलनोत्कंठा और मिलन के अनेक चित्र त्रिलोचन की कविता में मिलेंगे जिनमें कुछ तो बहुत ही सांकेतिक और कलात्मक हैं। पर त्रिलोचन की प्रेम कविताओं में प्रेम के स्मृति चित्र ही ज्यादा हैं। संयोग के क्षण जो बीत चुके हैं बड़ी सहज तटस्थता के साथ आते है। वियोग की, अलग रहने की मजबूरी का बयान उनकी कविता में कुछ–कुछ वैसे ही लगता जैसे पूर्वांचल के लोकगीतों में, जहाँ प्रेमी जीविकोपार्जन की मजबूरी में कलकत्ता चला जाता है और प्रेमिका पत्नी अपने 'विदेशिया' को 'बटोहिया' से संदेश भेजती है। उन लोकगीतों और त्रिलोचन की कविता में इतनी ही समानता है कि प्रेम की मजबूरी दोनों में कहीं एक है। अन्यथा लोकगीतों में जो गरमाहट और भावुकता है वह त्रिलोचन की अभिव्यक्तियों में नहीं हैं। उनमें एक संयम और प्रौढ़ तटस्थता है। त्रिलोचन ने अपने एक सानेट में इस मनः स्थिति का बहुत सुंदर चित्रण किया है–

रात अंधेरे में यों ही कुछ सोच रहा था,
सहसा सुना, ''इधर भी हो कवि, कृपा तुम्हारी।''
पूछा, ''कौन''।''प्रेम''। उत्तर था। मुझ पर भारी
मौन छा गया। आखिर ज्यों त्यों यही कहा था।
तुमको मैं कब भूला। धारा संग बहा था।
शक्ति तुम्हीं से मिली दशाएँ कितनी प्यारी
अब भी मन में बसी हुई हैं, कुछ लाचारी
थी, पहचान न पाया। तुमको सहा बहा था।[8]

अपने चारों ओर के नैराश्यपूर्ण, विषम वातावरण में भी त्रिलोचन हताश या अकर्मण्य नहीं होते। आस्था और विश्वास इस कवि की पूँजी है। त्रिलोचन का आशावादी मन भी लोक–मन का ही प्रतिरूप है। लोक की आशा कभी नहीं टूटती। प्रकृति और जीवन के भयानक झंझावातों को झेलते हुए भी वह जिन्दा रहती है। अपनी आशा और आस्था के बल पर ही लोक कभी नहीं मरता। बल्कि वह सबकी प्रेरणा का स्त्रोत होता है। त्रिलोचन की प्रेरणा का स्त्रोत भी वहीं है। अपनी अनेक कविताओं में वे दुःख पर सुख, अंधकार पर प्रकाश और आँसू पर हास के विजय का विश्वास व्यक्त करते हैं। इस अखंड विश्वास को ही वह अपनी जीवन–यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते है –

दुनियादार ने कहा,''तुमने क्या पाया है''।
मैं ठहरा, फिर बोला, ''क्या हम तुम्हें बताएँ
और पास आ जाओं, देखों, जिधर दिखाएँ।
उधर जिधर तुमने अपना कुटीर छाया है
उसके भीतर बाहर जो असीम आया है
यह भूमंडल और खमंडल और दिशाएँ
जिसकी दिव्य ज्योति से भर जाएँ, सज जाएँ
वह अखंड विश्वास सहज ही अपनाया है।'[9]

त्रिलोचन के अधिकांश आत्मपरक प्रसंग उनके अभावग्रस्त, विपन्न, उपेक्षित और संघर्षपूर्ण जिन्दगी के ही चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस अभावगस्त जिन्दगी की कड़वी यादें त्रिलोचन की कविता में पर्याप्त मिलेंगी– नाते रिश्ते के भी लोग बचाकर जाते/मिला खा लिया, नहीं निराहरों ही पर था/दिन काटना। किसी प्रकार से लाज बचाते थे/बाबा। ससुराल के सुजन एक आ पड़े,[10]

त्रिलोचन प्रकृति के अलग–अलग परिणतियों, अलग–अलग रूपों की सूक्ष्मता से अंकित करते हैं लेकिन उससे अधिक उनकी निगाह उस पथ पर होती है। जहाँ मानव यात्रा के पद–चिन्ह अंकित हैं। वे मिट्टी पर छपे हुए पदचिन्हों के मर्म को पढ़ना चाहते हैं। कम ही लोगों ने इन चित्रों को देखने का यत्न किया हैं। साँसों की व्याकुलता कम ही लोगों ने जानी हैं। त्रिलोचन एक–एक रेखा में जीवन की गति को पहचानते हैं। त्रिलोचन ने गाँव की अनपढ़ लड़कियों और सामान्य जन को नायकत्व प्रदान किया। वे चम्पा, नगई, महरा आदि की मनोभावना एवं जीवन पद्धति का प्रामाणिक चित्रण अपनी रचना में करते हैं। चम्पाा छोटी और नटखट लड़की है उसे कवि जब पढ़ने के लिए प्रेरित करता है तो वह जो जवाब देती है उसमें तमाम गाँवों की स्त्रियों की मनोव्यथा रूपायित हो उठती हैं जिनके पति उन्हें छोड़कर अर्थाजन करने के लिए परदेश चले जाते हैं। अनपढ़ होने के कारण वे स्वयं चिट्ठी–पत्री लिख कर उनके पास भेज नहीं सकती। चम्पा का कथन कितना रोचक एवं कितना मार्मिक है –

'चम्पा बोली : तुम कितने झूठे हो, देखा
हाय राम, तुम पढ़–लिखकर इतने झूठे हो
मैं तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूँगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे।'[11]

निष्कर्षत : कह सकते है कि त्रिलोचन प्रगतिशील काव्यधारा के समर्थ कवि होने के साथ–साथ जनचेतना की अभिव्यक्ति देने वाली समर्थ शिल्पी सर्जक भी हैं। उन्होंने भले ही छायावाद से यात्रा प्रारंभ की हो, किन्तु वे समय के साथ अपनी मानसिकता को परिवर्तित परिस्थितियों के संदर्भ में समीक्षित करते हुए आगे बढ़ते रहे हैं। इस प्रकार त्रिलोचन ने लगभग चार दशकों की कविता–यात्रा तय की है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अपनी इस लम्बी रचनात्मक यात्रा में ये निरन्तर समकालीन और आधुनिक रहे हैं। समग्रतः इनकी कविताओं के संबंध में कहा जा सकता है कि इन्होंने अपनी रचनाओं में प्रेम, प्रकृति, ग्रामीण–समाज, किसान व मजदूर नागरिक–जीवन, वर्ग–विषमता और वर्ग–संघर्ष , राजनीति का खोखलापन आदि को विषम बनाया है तथा कहीं सरलता और सहजता से तथा कहीं व्यंग्य की तीखी मार से विषम परिस्थितियों पर चोट की है। इनकी अधिकांश कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि ये सचमुच जनपद के कवि हैं। अपने से पूर्ववर्ती कवियों में ये तुलसी से सर्वाधिक प्रभावित हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. विश्वम्भर 'मानव' व रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि–लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–प्रथमसंशोधित संस्करण 2008 पृ.– 215–216।
2. डॉ. हरिचरण शर्मा, आधुनिक कवि– रचनात्मक वैशिष्ट्य, प्रकाशन मलिक एडं कम्पनी जयपुर, संस्करण 2014 पृ. – 75।
3. प्रभाकर, श्रोत्रिय, कवि परम्परा– तुलसी से त्रिलोचन, लोक भारती प्रकाशन नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2009 पृ. – 249।
4. विश्वम्भर 'मानव' व रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि–लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–प्रथम संशोधित संस्करण 2008 पृ. – 217।
5. वहीं, पृ. – 218–219।
6. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिंदी कविता, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण पृ. – 75।
7. वही, पृ. – 75।
8. वहीं, पृ. – 78।
9. वही, पृ. – 79।
10. वहीं, पृ. – 71।
11. विश्वम्भर 'मानव' व रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि–लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–प्रथम संशोधित संस्करण 2008, पृ. – 221।

महर्षि वाल्मीकि के दस्यु प्रकरण : एक विवेचन

डॉ. आर्यकुमार हर्षवर्धन*

प्रारूप :– रामायण महाकाव्य के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि के जीवन–चरित को वर्णन करते हुए कई लेखक बताते हैं कि रामायण लिखने से पहले वे एक दस्यु थे। लोक प्रचलित कथानक को ही आधार मानकर कहानी गढ़ी गई है न कि तथ्यात्मक संदर्भ के बल पर। क्योंकि रामायण महाकाव्य में स्वयं वाल्मीकि अपनी स्वीकारोक्ति में बताते हैं कि वे प्रचेता ऋषि के सुपुत्र हैं। अगर वे पहले दस्यु थे और मुनियों के उपदेश से राम–नाम जाप करते हुए अलौकिक काव्य प्रतिभा प्राप्त की तो 'रामायण' में उसे जरूर उल्लेख करते। परंतु "रामायण" और परवर्ती "महाभारत" में भी इस कथा की लेशमात्र सूचना नहीं है। इस संबंध में तथ्यात्मक और तर्कसंगत विश्लेषण इस आलेख का मुख्य प्रतिपाद्य है ।

बीज शब्द :– आद्य प्रणेता, अनुशासन पर्व, ब्रह्माङ्ग स्थिति, पापाचार, मरा–मरा, सप्तऋषि, रामचरितमानस, अर्वाचिन ग्रंथ,दस्यु रत्नाकर, चेतना का उद्‌भास,तमसा नदी,क्रौंच पक्षी,महाकाव्यकार,अध्यात्म पुरुष

रामायण के आद्य प्रणेता महर्षि वाल्मीकि पहले एक दस्यु थे – यह निभ्रान्त मिथ्यापवाद है। क्योंकि मूल वाल्मीकि रामायण में इस कथा पट का कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। रामायणोपरांत अनेकादि ग्रंथों में इस प्रकरण का उल्लेख मिलता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में सर्वप्रथम इस कथा का आभास मिलता है कि किसी विवाद के कारण मुनियों ने वाल्मिकी को ब्रह्माङ्ग कहा और वे तब से पापी हो गए। वाल्मीकि ने शिव की शरण ली और उन्होंने पाप मुक्त करते हुए कहा : "तेरा यश श्रेष्ठ होगा" (अध्याय 18)

इस कथा के आधार पर वाल्मीकि के 'ब्रह्माङ्ग स्थिति' को दस्यु रूप दे दिया गया है। यह अनुमान योग्य है। किंतु वाल्मीकि को स्पष्टतः कवि के रूप में महाभारत के द्रोण पर्व (118,48) और शांति पर्व (200, 4) में स्वीकार किया गया है। एतद् भिन्न शांति पर्व (57, 40) में किसी भार्गव कवि का नामोल्लेख भी मिलता है लेकिन महाभारतोपरांत 'स्कंद पुराण' में महर्षि वाल्मीकि पहले दस्यु होने की कथा का विकसित रूप प्राप्त होता है।

'स्कंद पुराण' के चार खंड – वैष्णव (अध्याय : 21), अवंती (अध्याय : 24), नागर (अध्याय : 124) और प्रभास (अध्याय : 298) में यह वर्णन मिलता है कि वाल्मीकि पहले परिवार प्रतिपोषण हेतु दस्युगिरी करते थे। उनका मूल नाम वैष्णव खंड में नहीं है। अवंती खंड में अग्नि शर्मा, नगर खंड में लोह संघ और प्रभास खंड में वैशाख का उल्लेख है। उसके बाद की कहानी प्रायतः समान है कि एक दिन सभी सप्तऋषियों को दस्यु मार डालना चाहता था किंतु ऋषियों ने शांत भाव से उनसे यह पूछा : "क्या तुम जिस परिवार के लिए पापाचार में लिप्त हो उस पाप–फल के भागीदार वो होंगे? पूछ कर आओ तो?" परिवार वालों के इनकार करने पर ऋषियों के पास लौट कर अपने किए पाप कर्मों पर वह पश्चाताप करता है। फिर ऋषियों के परामर्शानुसार वह ध्यान तथा मंत्र जप करने में तल्लीन हो जाता है। बहुत वर्षों के बाद सप्त ऋषि जब उस रास्ते से लौटते हैं तो देखते हैं कि वाल्मिक से समावृत वह दस्यु ध्यानस्थ होकर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। उसका नाम वाल्मीकि रखकर सप्तऋषियों ने उसको रामायण लिखने का परामर्श दिया।

प्रस्तुत कथा का वर्तमान प्रचलित रूप हमें 'अध्यात्म रामायण' के अयोध्या कांड (सर्ग 6, श्लोक 42 दृ 88) में प्राप्त होता है। अयोध्या से निर्वासित होकर राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट में अपना निवास स्थान निश्चित करने के लिए वहां स्थित महर्षि वाल्मीकि के पास परामर्श मांगने के लिए पहुंचे। वाल्मीकि राम को देखते ही गदगद हो उठे। विनम्र–स्तुति प्रार्थना की और राम नाम की महिमा दर्शाते हुए इस प्रकार

* **प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, खीष्ट महाविद्यालय, कटक, ओड़िशा, भारत।**

निजी कथा सुनाई– "जन्मतः वे ब्राह्मण थे। लेकिन किरातों के साथ रहने के कारण वे शूद्र आचरण करने लगे। एक शूद्रा से शादी हो जाने के बाद अनेक संतति के जनक भी बन गए। इतने विराट परिवार के भरण–पोषण हेतु कुसंग से वे सदा हाथ में धनुष बाण धारण करते हुए चोरी भी करने लगे। एक दिन सात मुनिजन उस रास्ते से होकर कहीं जा रहे थे तो वस्त्रादि छीनने के लिए मैंने घोर जंगल में उन्हें रोकते हुए कहा : "सब कुछ मेरे हवाले कर दो, वरना मैं तुम्हें मार डालूंगा।" उत्तर में उन्होंने कहा कि "जिन परिवार जनों के लिए तुम प्रत्यह पाप कमा रहे हो उस अधर्म के भागीदार क्या वह लोग होंगे, पूछ कर आओ।" जब परिवार वालों ने स्पष्टतः कहा : "यह पाप तो तुम ही को लगेगा, हम केवल धन के ही भोगने वाले हैं," तो उन्हें वैराग्य आ गया और मुनियों की शरण ले ली। उन्होंने चिंतन मनन के बाद परामर्श दिया कि तुम इतने पापाचारी हो कि राम जैसा पवित्र नाम भी ठीक से बोलने में असमर्थ हो। इसलिए तुम एकाग्रचित्त होकर निरंतर "मरा–मरा" का जप करते रहो। बहुत दिन हुए एक स्थान पर ध्यान करने के कारण उनके ऊपर वाल्मिक ने घर बना डाला। एक सहस्त्र युग बीतने पर ऋषि उस मार्ग से लौटे और कहा : "हे मुनिवर, आज से तुम वाल्मिक बने। वाल्मिक से निकलने के कारण यह तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ।"

इस कथा की पुष्टि तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में भी की गई है–

जान आदि कवि नाम प्रतापू। भयह सुद्ध करि उलटा जापू।।(बाल कांड,दोहा 19: 5)

उलटा नामु जपत जगु जाना। वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।।(अयोध्या कांड, दोहा 194 : 8)

'अध्यात्म रामायण' में वर्णित महर्षि वाल्मीकि का पहले दस्यु होना और फिर तपस्वी बनने की कथाओं का विस्तार हम अनेकानेक अर्वाचिन ग्रंथों और पुराणों में पाते हैं। तत्व संग्रह रामायण (अयोध्या कांड, अध्याय 22– 23), आनंद रामायण (राज्य कांड, अध्याय 14), कृतिवासीय रामायण, तोरवे रामायण आदि में राम नाम के महात्म्य पर विशेष बल देते हुए दस्यु प्रसंग की व्याख्या की गई है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि मूल वाल्मीकि रामायण में दस्यु रत्नाकर बाद में मरा–मरा जपते हुए महर्षि बनना और रामायण जैसे अमर ग्रंथ लिखने के तथ्य का लेश मात्र भी संकेत नहीं है।

वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि दो जगहों पर अपना जन्म परिचय देते हैं। उत्तर कांड के वर्णनानुसार अयोध्या लौटने पर राम अश्वमेध यज्ञानुष्ठान करते हैं, जिसमें महर्षि वाल्मीकि भी लव– कुश और सीता सहित पधारते हैं।(वा.रा. 7:93:1) महर्षि वाल्मीकि के साथ यज्ञशाला में सीता भी उपस्थित होती हैं। राम को जब पता चलता है तो उन्होंने विचार कर कहा "यदि सीता का चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरह का पाप नहीं है तो वे महामुनि की अनुमति लें, यहां आकर जन समुदाय में अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।" (वा.रा. 7:95:4) महात्मा वाल्मीकि जी राम का हार्दिक अभिप्राय समझकर बोले "ऐसा ही होगा।"

दूसरे दिन नाना देशों से पधारे हुए ज्ञाननिष्ठ, कर्मनिष्ठ और योगनिष्ठ लोग सभा में विराजमान थे। वहां महर्षि वाल्मीकि सीता की शुद्धता का समर्थन करते हुए बोले : "हे रघुनंदन ! मैं प्रचेता का दसवां पुत्र हूं। मेरे मुंह से कभी झूठ बात निकली हो इसकी मुझे याद नहीं है। मैं सत्य कहता हूं यह दोनों (कुश और लव) आपके ही पुत्र हैं।" (वा.रा. 7:96:19)

अपना परिचय प्रदान करते हुए महर्षि फिर बोले : "मैंने कई हजार वर्षों तक भारी तपस्या की है। यदि मिथिलेश कुमारी सीता में कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्या का फल ना मिले। मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा भी पहले कभी कोई पाप नहीं किया है। यदि मिथलेश कुमारी सीता निष्पाप हों, तभी मुझे अपने उस पापशून्य पुण्यकर्म का फल प्राप्त हो। रघुनंदन ! मैंने अपने पांचों इंद्रियों और मन– बुद्धि द्वारा सीता की शुद्धता का भलीभांति निश्चय करके ही इसे अपने संरक्षण में लिया था। यह मुझे जंगल में एक झरने के पास मिली थी।" (वा.रा. 7:96:20–22)

उत्तरकांड में ही एक और जगह महर्षि वाल्मीकि प्रचेता के पुत्र हैं, इस कथा का उल्लेख मिलता है। (वा.रा. 7:93:17) यहां स्मरण योग्य है कि प्रचेता ब्रह्मा का पुत्र है और मनुस्मृति में वर्णन मिलता है कि– अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम। पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश।। मरीचिमत्र्यंगिरसी पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च।। (मनुस्मृति 1.24.35)

अर्थात्, मैंने (ब्रह्मा ने) प्रजा सृजन की इच्छा से घोर तप द्वारा प्रारंभ में प्रजाओं के पति 10 महर्षियों को उत्पन्न किया। वे महर्षि मरिचि, अत्रि,अंगिरा, पुलस्त्य,पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद हैं।

जैसा कि वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि स्वयं कहते हैं कि वे प्रचेता के दसवें पुत्र हैं। इससे यह स्वतः प्रमाणित हो जाता है। क्योंकि किसी भी कवि का संपूर्ण परिचय या तो उसके स्वतः के साहित्य में अथवा उस पर रचित साहित्य में ही प्राप्त हो सकता है और जहां तक वाल्मीकि के दस्यु होने की कहानी है, यह बालकांड के प्रसंगों से ही निराधार हो जाता है जहां महर्षि विश्व का सर्वप्रथम श्लोक उच्चारण करते हैं। बालकांड के अनुसार वाल्मिकी तमसा नदी के किनारे एक आश्रम में रहते थे। उनके मन में एक आदर्श मानव के चरित्र को लिपिबद्ध करने की इच्छा जागृत हुई। नारद के परामर्शानुसार उन्होंने अयोध्या के तत्कालीन शासक महाराजा राम को अपना चरित नायक बनाने का संकल्प किया। इसी समय एक अभावित घटना घटी।

मुनि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर भ्रमण करते हुए देखते हैं कि पास ही एक क्रौंच पक्षी युगल मन के सुख से कूजन करते हुए विचर रहे थे। ऐसे समय पर एक निषाद ने आकर पक्षी का वध कर दिया, पक्षी रक्ताक्त देह से मिट्टी पर झटपटाने लगा, उस पक्षी की दूरावस्था देखकर दूसरा पक्षी सहचर के विच्छेद से करूण स्वर में रुदन करने लगा। इस आकस्मिक दृश्य का अवलोकन करते ही धर्मात्मा वाल्मीकि के हृदय में करूणा का संचार हुआ, तत्क्षणात् उन्होंने अधर्म–कर्म युक्त निषाद को कहा :–

मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमःशाशवती समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीःकाममोहितम् ।।

अर्थात, "रे निषाद, तू कभी भी प्रतिष्ठा को ना पा सकेगा क्योंकि तूने काम मोहित क्रौंच द्वय में से एक का वध किया है।" इस प्रकार पक्षी के शोक में करूणाद्र हृदय वाल्मीकि के कंठ से श्लोक छंद का आविर्भाव हुआ एवं ब्रह्मा के निर्देश क्रम पर उन्होंने शोक पीड़ित हृदय से उपर्युक्त श्लोक के छंद में ही रामायण काव्य की रचना की।

यहां द्रष्टव्य है कि एक दस्यु, जो बात बात पर मारने की बात करता हो, क्या वो एक सामान्य पक्षी के विच्छेद से करूणाद्र तथा विचलित होकर श्राप तक दे सकता है? समग्र रामायण में जिस विद्वता तथा चेतना का उद्भास हुआ है वह जन्मों के संस्कारगत भावभूमि पर ही खड़ा हो सकता है,किसी दस्यु–चिंता से उद्भूत प्रक्रिया से नहीं।

समग्र स्वतः और परतः प्रमाण के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रामायण व्यतिरेक परवर्ती शास्त्रों, पुराणों में जिस महर्षि वाल्मीकि की चर्चा है वह आदि कवि वाल्मीकि से भिन्न नहीं हैं। यह सर्वसामान्य है कि वाल्मीकि रामायण की घटनाओं के समकालीन थे जैसा कि रामायण में वर्णन है कि वाल्मीकि दशरथ के सखा थे, उनके आश्रम में सीता के पुत्र उत्पन्न हुए और उनके शिष्य बन गए तथा राम के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर वाल्मीकि ने सीता के सतीत्व का साक्ष्य साक्षी दिया। हो सकता है कि परवर्ती काल में वाल्मिकी नाम की व्युत्पति करते हुए यह प्रसिद्ध हो गया होगा कि तपस्या करते समय उनका समग्र शरीर 'वाल्मिक' से समावृत हो गया।

यह भी हो सकता है कि 'ब्रह्माह्न' शाप को दस्यु रूप में रूपांतरित कर दिया गया हो और राम नाम के महात्म्य तथा व्याप्ति हेतु राम नाम गुणगान से एक दस्यु भी महर्षि वाल्मीकि बन सकता है यह दर्शाया गया हो। क्योंकि ऐसे देखा जाए तो दस्यु– कथनादि में राम नाम का जप करने आदि का उल्लेख नहीं है। सच तो यह है कि महर्षि वाल्मीकि प्रथम राम कथाकार एवं प्रथम महाकाव्यकार थे। उनका जीवन–आदर्श एक प्रतिष्ठित ऋषि तथा अध्यात्म पुरुष जैसा था। उनके पवित्र व्यक्तित्व के पूर्व दस्यु प्रकरण को जोड़ने की प्रक्रिया जितनी अर्वाचिन है उतनी अनुचित भी है।

संदर्भ–सूची :–

1. अग्रवाल, हंसराज, संस्कृत साहित्य का इतिहास. दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1983.

2. अग्रवाल, रामेश्वर दयालु, कम्बरामायण और रामचरितमानस,मेरठ : कल्पना प्रकाशन, 1973.
3. अज्ञेय, कवि दृष्टि, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1983,
4. अध्यात्म रामायण, गोरखपुरः गीता प्रेस, 1968.
5. गुप्त, माता प्रसाद, तुलसी दास, प्रयागः हिन्दी परिषद, 1953.
6. गुप्त, सुरेशचन्द्र, तुलसी का काव्यादर्श, दिल्ली : साहित्य सहकार, 1976.
7. गुप्त, शांतिस्वरूप तथा श्रीनिवास मिश्र, वाल्मीकि रामायण में राज्य, समाज एवं अर्थव्यवस्था. अलीगढ़ : भारत प्रकाशन मंदिर, 1976.
8. गुप्ता, शबनम.वाल्मीकि रामायण का समाजशास्त्रीय अध्ययन. नई दिल्लीः क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 1998.
9. चौबे, व्रजबिहारी, महर्षि वाल्मीकि,पंजाबःविश्व हिंदू परिषद, 1982.
10. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानस. गोरखपुर : गीताप्रेस, 1979.
11. त्रिपाठी, राधावल्लभ,आदिकवि वाल्मीकि,सागरः संस्कृत परिषद, 1981.
12. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, 1956.
13. दीक्षित, राजपति तुलसीदास और उनका युग. वनारस ज्ञान मंडल, 1952 साहित्य मण्डल, 1987.
14. प्रसाद, अग्रवाल, महावीर, वाल्मीकि रामायण में रस विमर्श, वाराणासीःभारतीय विद्या प्रकाशन, 1992.
15. रामायणकालीन संस्कृति, नई दिल्लीः सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 1987.
16. वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम व द्वितीय भाग), गोरखपुर : गीताप्रेस,1999.
17. वेबर, (अनु. कन्दैयालाल पोद्दार) संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग 1, नवलगढ़ः श्रीराम विलास पोद्दार स्मारक ग्रंथमाला समिति, 1938.
18. भक्ति का विकास, वाराणसीः चौखम्बा विद्याभवन, 1998,
19. शर्मा, जगदीश, बाल्मीकि रामायण और रामचरितमानसः सौन्दर्य विधान का तुलनात्मक अध्ययन, गुलाबपुराः भारतीय शोध संस्थान,1969.
20. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, गोस्वामी तुलसीदास वाराणसीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1996.
21. ाुक्ल, पण्डित ब्रह्मानन्द (सं) उत्तररामचरितः भवभूति, मेरठः साहित्य भंडार, 1975.
22. शुक्ला, श्रद्धा,वाल्मीकि रामायण तथा उत्तर रामचरित का तुलनात्मक विवेचन, दिल्लीः नाग प्रकाशक, 1995।
23. शंकरानन्द, स्वामी, मानस के प्रतीक,कानपुरः सेंट्राल चिन्मय मिशन ट्रष्ट,1994।
24. सरस्वती, स्वामी विद्यानन्द,रामायण–भ्रन्तियां और समाधान, दिल्ली : आर्य प्रकाशन मंडल, 2002।
25. हरि, वियोग, हमारी परम्परा, नई दिल्लीः सस्ता साहित्य मण्डल, 1967.
26. हरिश्चन्द्र, विश्वज्योति, रामायणांक (अप्रैल–मई, 1971)

केदारनाथ सिंह की कविताओं में जनपदीय-चेतना

उमेश कुमार पर्वत*

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को तुलसी अपनी विराट समन्वय चेष्टा के कारण भाते हैं। तुलसी ने अपने युग, अपने समय और परिस्थितियों के बीच धार्मिक क्षेत्र के विविध पंथों और पारिवारिक जीवन के हर स्तर और सम्बन्धों का समन्वय अपने काव्य में किया है। तुलसी के युग की प्राथमिकताएँ और प्रासंगिकताएँ अलग थीं तथा कवि केदार के समय काल की अलग। तुलसी ने अपने समय के अनुरूप धर्म और समाज का समन्वय किया तो कवि केदारनाथ ने अपने समय के अनुसार अपने विराट कवि व्यक्तित्व में गाँव और शहर को समेट लिया है। कवि ने अपना जीवन साधारण भोले भोजपुरी अंचल की गंवई मिट्टी से प्रारंभ किया तथा जवानी की ढलान तक वे उसी मिट्टी और उसके लोगों के बीच रहे। तत्पश्चात् बनारस और वहाँ से सीधे दिल्ली जैसे महानगर में जा पहुँचे। लेकिन कवि की घ्राण शक्ति अभी अपनी मिट्टी की सोंधी सुगंध नहीं भूली, उनकी श्रव्य शक्ति भोजपुरी लोकगीतों को नहीं भूली और न ही उनकी आँखें अपने उन गंवई नजारों को भूलीं जिनमें सुरती रगड़ते और पान खाते अपने लोगों की छवि थी। कवि अपने पूरे जीवन अपनी ग्रामीण जड़, अपनी पहचान और स्मृति को भुला नहीं पाया। केदारनाथ जी की प्रत्येक कविता और उनकी हर पंक्ति में एक तड़प विद्यमान है, एक बेचैनी है, जो कि उनके अपने गाँव के लिए है।

केदार जी ने साहित्य अकादमी पुरस्कार अर्पण के दौरान कहा था कि, ''नगर केन्द्रित आधुनिक सृजनशीलता और ग्रामोन्मुख जातीय चेतना के बीच जब–तब मैंने एक खास किस्म के तनाव का अनुभव किया है, यह तनाव हमारे दैनिक सामाजिक जीवन की ऐसी जानी पहचानी वास्तविकता है, जिसकी ओर अलग से हमारा ध्यान कम ही जाता है। मेरे लिए यह अनुभव एक एस्थेटिक बोध भी है और एक गहरे अर्थ में मेरी नैतिक चेतना का एक अविच्छिन्न हिस्सा भी। अपने रचना कर्म में मेरी यह कोशिश होती है कि उसमें अनुभव के इन दोनों स्तरों की अंतःक्रिया किसी हद तक समाहित हो सके। यह किस हद तक संभव हो पाती है, यह बताना मेरे लिए कठिन है, पर वह मेरी रचना क्रिया का एक जरूरी हिस्सा है, इसे मैं भूलना नहीं चाहता।''[1]

केदार जी के ये विचार उनकी कविताओं पर पूर्णरूपेण लागू होते हैं। केदार जी की कविता किसी पलड़े में जाकर नहीं ठहरती है, चाहे हो गंवई पलड़ा हो या शहरी बल्कि आधुनिक मानवीय सभ्यता के ग्राम और शहर नामक दो छोरों के बीच एक संतुलन साधती हुई तथा एक अदृश्य सूत से दोनों को बांधती हुई इन दोनों छोरों के ठीक मध्य में आकर चुपके से बैठ जाती है। यह पूरी प्रक्रिया कवि और पाठक के ध्यानाकर्षण से इतर बड़े सहज रूप में घटित होती है। केदार जी ग्राम और शहर को जोड़ने के क्रम में अपनी कविताओं इस बात को लेकर कोई हो–हल्ला नहीं नहीं मचाते हैं, किसी प्रकार का ढिंढोरा भी नहीं पीटते और न ही वे किसी एक के खण्डन और दूसरे के मंडन के पचड़े में पड़ते हैं–

''छूँ लूँ किसी को?
लिपट जाऊँ किसी से?
मिलूँ
पर किस तरह मिलूँ
कि बस मैं ही मिलूँ
और दिल्ली न आए बीच में।''[2]

इसे लोक और आलोक का द्वन्द्व कहा जा सकता है तथा इस द्वन्द्व में एक ओर गंवई भारतीयता है तो दूसरी ओर शहरी सभ्य भारतीयता, पर केदार जी की इससे जो बड़ी विशेषता निकलकर हमारे सामने

* शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005।

आती है वह यह है कि यह द्वन्द्व महज द्वन्द्व तक ही सीमित रह जाता है, कभी भी इसमें टकराहट की स्थिति उत्पन्न नहीं होने पाती है।

एक पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति की समस्त जैविक, जन्मजात, विन्यास उद्वेग, रूझान, क्षुधाएँ, मूल प्रवृत्तियाँ तथा अर्जित विन्यासों और प्रवृत्तियों का समूह है।''[3] केदार जी के कवि व्यक्तित्व को यदि हम इस परिभाषा के आलोक में रखें तो उनके अर्जित विन्यासों में उनके कवि व्यक्तित्व पर उनके माता–पिता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। केदार जी के पिता डोमा सिंह एक स्वतन्त्रता सेनानी थे तथा उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में हिस्सा लिया था। केदार जीने अपनी पिता की उस क्रांतिमयी विरासत को अर्जित किया था तथा समस्त आधुनिक चेतनाओं के उपरांत भी वे अपने पिता की उस विरासत को संभालकर रखते हैं–

''मुझे दिये जाओ
मैं रक्खूँगा
गिरने न दूँगा
पिता
वह आदिम व्यथा
जोकि तुमको मिली थी
एक सोने की जलती पिटारी में बंद।''[4]

केदार जी की माता श्रीमती लालझरी सिंह थीं। बाद के दिनों में वे बेटे केदार के साथ दिल्ली में रहने लगी थीं। केदार जी अपनी माँ से बहुत प्रेम करते थे। माँ की निरंतर कर्मशीलता उन्हें प्रभावित करती है और प्रेरणा भी देती है। केदार जी की कविताओं में माँ अपनी पूरी गरिमा के साथ मौजूद है। दिल्ली में रहते हुए भी, एक पूर्ण नगरीय परिवेश के बीच में भी, यह बात रेखांकित करने के योग्य है कि वे अपनी भारतीय गाँवों की लगातार मेहनत और दायित्वों का निर्वाह करने वाली अपनी माँ को कविता का विषय बनाते हैं, वे उसके संघर्षों को रेखांकित करते हैं–

''जब वह बहुत ज्यादा थक जाती है
तो उठा लेती है सुई और तागा
मैंने देखा है कि जब सब सो जाते हैं
तो सुई चलाने वाले उसके हाथ
देर रात तक
समय को धीरे–धीरे सिलते हैं।''[5]

''खुले कछार, मक्का के खेत और दूर–दूर तक फैली पगडण्डियों की छाप आज भी मेरे मन पर उतनी ही स्पष्ट है, जितनी उस दिन थी, जब मैं पहली बार देहात के ठेठ वातावरण से शहर के घुमैले और क्रमशः खण्डित आकाश के नीचे आया।''[6] इस प्रकार केदार जी की कविताएँ अपने इर्द–गिर्द के परिवेश से इस कदर जुड़ी हुई हैं कि उनसे अलग करके उन पर विचार करना न सिर्फ आधा–अधूरा अपितु असंभव भी होगा। उनका पारिवारिक संदर्भ, उनसे जुड़े लोग, उनके जीवन की घटनाएँ उनके सम्पर्क, बाहरी परिवेश में परिवर्तन, उनके साहित्यिक कर्म क्षेत्र से बहुत गहरे तक जुड़ा हुआ है। निजी संदर्भों को सार्वजनिक में बदल देने का अद्‌भुत कौशल केदार जी को प्राप्त है।

लेकिन सबसे दिलचस्प बात यह है कि केदार जी का निजी संदर्भ, जैसा पहले कहा जा चुका है कि किसी एक पलड़े की ओर नहीं होता है। उसमें यदि शहर होता है तो गाँव भी, पुष्प है तो वाटिका भी, नर है तो नारी भी। केदार जी की व्यापकता में सामंजस्य है, समन्वय है। उनकी व्यापकता किसी ढर्रे पर नहीं चली है, बल्कि उसमें एक अद्‌भुत संतुलन और समन्वय है। न तो केदार जी अन्य कवियों की तरह स्वयं पर कविताएँ लिखते रहे और न ही किसी विशेष पर। केदार जी का स्व इतना व्यापक है कि उसकी परिधि में गाँव–जवार, कस्बे, महानगर, छोटे–बडे लोग, पारम्परिक व युगीन आदर्श, पशु–पक्षी, प्राकृतिक

आनंद व विपदाएँ, भू–खण्ड, कोई टीला, कोई पुल, कोई अधबनी इमारत अर्थात् सब कुछ आ जाता है तथा उनका निजी संदर्भ बन जाता है। केदार जी की निजता का फैलाव ही उनकी कविता का फैलाव है।

केदार जी का पहला काव्य संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' सन् 1960 में प्रकाशित हुआ था। इस काव्य संग्रह की बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें एक आधुनिक भावबोध की झलक थी। भाषायी स्तर पर भी इस काव्य संग्रह में कवि ने अनूठे प्रयोग किए थे।

20 वर्ष के लंबे अंतराल के पश्चात् 1980 में केदार जी का दूसरा काव्य संग्रह 'जमीन पक रही है' आया और इस लंबे विराम के बाद कवि अपने इस नवीन काव्य संग्रह में एक नई भाषा, नया बोध, नए तेवर और नवीन दृष्टिकोण के साथ उपस्थित होता है। स्वयं केदार जी इस अंतराल के बारे में लिखते हैं, ''उस दौर में प्रतिरोधमूलक प्रवृत्ति हिन्दी कविता की मुख्य धारा बन चुकी थी.....मेरे लिए यह आत्ममंथन का भी दौर था कि बिना 'लाउड' हुए या मुखरबयानबाजी से बचते हुए प्रतिरोधमूलक कविता कैसे लिखी जाए। प्रतिपक्ष का यह स्वर मेरे अंदर मौजूद तो था पर इसे वांछित रूपाकार ग्रहण करने में थोड़ा समय लगा।''[7] अर्थात् केदार जी का कवि कर्म इस अंतराल में भी यथावत चल ही रहा था पर वे एक नयी भाषा–शैली और भावबोध के संधान में थे तथा अपने इस काव्य संग्रह में वे एक नए तेवर और अंदाज में नजर आए। इन सब नवीनता, चमत्कृत शैली, नवीन भाषा–बोध के बावजूद कवि का जुड़ाव अपने लोक जीवन से बना ही रहता है। इस संग्रह की कविताओं में केदार जी के उसी पुराने गंवई ठाठ की यथार्थता की तस्वीर एक नई भाषा में प्रकट होती हुई दिखाई देती है–

''वह रोटी में नमक की तरह प्रवेश करता है,
ताखे पर रखी हुई रात की रोटी
उसके आने की खुशी में जरा–सा उछलती है
और एक भूखे आदमी की नींद में गिर पड़ती है।''[8]

'जमीन पक रही है' के पश्चात् लगभग 41 कविताओं के संग्रह के रूप में 1983 में केदार जी का अगला काव्य संग्रह ''यहाँ से देखो'' प्रकाशित होकर आता है। इस काव्य संग्रह के माध्यम से और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि कवि के जेहन में लोक, लोकजन, लोक संस्कृति और लोकतन्त्र से जुड़े सवाल कितनी गहराई के साथ अनुस्यूत हैं। इस संग्रह में कहीं न कहीं लोक और आधुनिकता के बीच द्वन्द्व भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इस काव्य संग्रह के नाम से ही परिलक्षित होता है कि यह यथार्थ को देखने के एक नवीन दृष्टिकोण की ओर आने का आग्रह है। 'ऊँचाई' कविता में केदार जी का नवीन दृष्टिकोण स्पष्ट है–

''मैं वहाँ पहुँचा
और डर गया
मेरे शहर के लोगों
यह कितना भयानक है
कि शहर की सारी सीढ़ियाँ मिलकर
जिस महान ऊँचाई तक जाती हैं
वहाँ कोई नहीं रहता।''[9]

'अकाल में सारस' केदार जी का चौथा काव्य संग्रह है, जो 1988 में प्रकाशित होता है। साथ ही इस संग्रह पर केदार जी को सन् 1989 में प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त होता है। 'आकल में सारस' की कविताएँ एक अलग मानसिकता के साथ उपस्थित होती हैं, यहाँ लोक और नगरीय जीवन के द्वन्द्व का एक भिन्न चित्रण केदार जी ने किया है। अरुण कमल इस संग्रह के विषय में लिखते हैं– ''मोटे तौर पर इस संग्रह के तीन प्रतिनिधि तत्त्व हैं– पहला गाँव के जीवन का नए ढंग से चित्रण। यह संयोग नहीं कि यह संग्रह त्रिलोचन को समर्पित है। दूसरा जीवन और मृत्यु को लेकर इस संग्रह में अनेक कविताएँ हैं। यह केदारनाथ सिंह के कवि व्यक्तित्व का भी नया पक्ष है। जीवन और मृत्यु पर इतनी सारी कविताएँ, इतने कोणों से, इतनी शिद्दत से लिखी हुई इस संग्रह में संकलित हैं। तीसरे इस संग्रह में काफी बड़ी

संख्या में ऐसी कविताएँ हैं, जो एक कवि के अंदरूनी संघर्षों की दास्तान हैं। पहली कविता 'मातृभाषा' से लेकर अंतिम कविता 'प्रिय पाठक तक'।''[10]

सन् 1995 में केदार जी अगला काव्य संग्रह 'उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ' प्रकाशित होता है। इस काव्य संग्रह में कवि का महानगरीय जीवन से मोहभंग होता हुआ दिखाई देता है तथा वह गाँवों की ओर लौटना चाहता है उसे कबीर याद आते हैं, लोक के 'भिखारी ठाकुर' याद आते हैं, कुदाल, नदियाँ, कुँए और ठंड से ठिठुरती गौरेया उसके मानस पटल पर चलने लगते हैं। यहाँ कविता में लोक संस्कृति और आधुनिकता के बीच द्वन्द्व और मुखर हो जाता है, कवि बेचैन हो उठता है–

''लेकिन पलंग के नीचे कुदाल?
मैं ठठाकर हँस पड़ा इस अदभुत बिंब पर
अंत में कुदाल के सामने रूककर
मैंने कुछ देर सोचा कुदाल के बारे में
सोचते हुआ गया उसे कंधे पर रखकर
किसी अदृश्य अदालत में खड़ा हूँ मैं
पृथ्वी पर कुदाल होने की गवाही में
पर सवाल अब भी वहीं था
वहीं जहाँ उसे रखकर चला गया था माली
मेरे लिए सदी का सबसे कठिन सवाल
कि क्या हो अब इस कुदाल का?''[11]

अपूर्वानंद लिखते हैं कि, ''ये कविताएँ उस संवेदनात्मक दृष्टि के विकास की कोशिश है, जो उस गुम हुए लड़के को देख सके, जो किसी गुमनाम शहर में मार दिए जाने के बाद, हर दरवाजे को खटखटा चुकने के बाद अपने ही घर के दरवाजे पर खड़ा है पर जिसे माँ–पिता, भाई–बहन पुलिस–पड़ोसी कोई देख नहीं पाता है।''[12] 'बाघ' केदारनाथ जी की लंबी कविता है। किताब के रूप में इसका प्रकाशन सन् 1998 में हुआ। इस कविता में कवि ने बाघ को भिन्न प्रतीकों में रखकर अपने समय की विडम्बनाओं का चित्रण किया है। 'तालस्ताय और साइकिल' काव्य संग्रह का प्रकाशन सन् 2005 में हुआ। इस काव्य संग्रह की कविताओं में कवि और लोक का सम्बन्ध और मजबूत होता हुआ दिखाई देता है। इस काव्य संग्रह में कवि ने अपने विदेश यात्राओं के प्रभाव से विदेशी पृष्ठभूमि की भी कविताएँ लिखी हैं। 'सृष्टि पर पहरा' सन् 2014 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताओं में कवि की दृष्टि और भी तेज हुई है। कवि ने लोक से जुड़ाव को और प्रगाढ़ स्वरूप प्रदान करते हुए इस काव्य संग्रह में अपनी लोक भाषा भोजपुरी पर एक कविता लिखी है–

''हिन्दी मेरा देश है
भोजपुरी मेरा घर
घर से निकलता हूँ
तो चला जाता हूँ देश में
देश में छुट्टी मिलती है
तो लौट आता हूँ घर।''[13]

'मतदान केन्द्र पर झपकी' सन् 2018 में प्रकशित केदार नाथ जी का आखिरी काव्य संग्रह है, जिसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन के माध्यम से उनकी मृत्यु के पश्चात् हुआ।

इस प्रकार विविध संग्रहों और उनमें संकलित विविध प्रकार की कविताओं के होते हुए भी केदार जी भाषिक स्तर पर लोक की पुरानी लय पर ही चलते हैं तथा उसमें चलते हुए वे आधुनिक बदलावों की सूक्ष्म पड़ताल करते हैं।

केदार जी ने एक पत्र के जबाव में परमानंद श्रीवास्तव को लिखा था– ''कुछ दिन–कम से कम 15–20 दिन हवा पानी बदलने के लिए गाँव रहना चाहता हूँ। मुझे लगता है और अब गहराई से लगने लगा है कि गाँव के साथ यह जो मेरा लगातार आने–जाने का जो अटूट रिश्ता है वही मेरे भीतर के कवि को जिलाए हुए है। सिर्फ मेरे ही भीतर के कवि को नहीं हम सबके भीतर के रचनाकार को कहीं न कहीं जो आज भी उस करइठ मिट्टी से जुड़े हैं।''[14] यह वाक्य किसी संकुचित ग्राममोह को नहीं दिखाता है और न ही गंवईपन के अभिमान को बल्कि इसमें भारतीय सहृदयता के संग–संग कहीं न कहीं एक वैश्विक मर्म का भी जुड़ाव हमें शामिल हुआ दिख सकता है।

केदार जी की कविताएँ सहज होती हैं। उनमें भाषा, बोध, शिल्प अर्थात् किसी भी स्तर की क्लिष्टता नहीं होती है। सहजता में बेचैन कर देने वाली गंभीरता केदार जी के कविताओं की विशेषता है। कवि अपने पाठक के साथ में बोलते–बतियाते हुए यथार्थ को अलग तरीके से देखने वाले एक अलग लोक में ले जाता है तथा उस यथार्थ का चेहरा पाठकों को पहले न देखा हुआ और डरावना लगने लगता है। श्रीप्रकाश शुक्ल कहते हैं ''केदार नाथ सिंह की कविता एक बोरसी की आग की तरह धीरे–धीरे बढ़ती और फिर धधकती है। यह उसके आस–पास की बतकही मालूम पड़ती है, जो ऊपर से बिना प्रयास के साधारण मालूम पड़ती है, किन्तु नीचे सच्चा जीवन धधक रहा होता है।''[15] केदार जी की कविताएँ कोई बड़बोलापन नहीं हैं बल्कि बोलने और बतियाने का एक गंवई ठाठ है, उसमें इतनी सहजता है कि वह किसी भी अखर तो बिल्कुल नहीं सकती। कवि के पाँव अपनी मिट्टी में इतने धंसे हुए हैं कि पाठक को कविताएँ पढ़ते वक्त उस मिट्टी की सोंधी सुगंध आ ही जाती है। केदार की भी हर कविता का ऊर्जा स्रोत उनका गाँव है। जिस प्रकार छायावादी कवि पुरानी रूढ़ियों का प्रतिरोध करने के लिए प्रकृति की शरण में जाकर उससे ऊर्जा लेते हैं और फिर आकर निराला की भांति विद्रोह करते हैं, उसी प्रकार केदार जी गाँव से प्रतिरोध की ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

कुछ विद्वानों ने केदार जी की इस प्रवृत्ति के 'नास्टेल्जिया' कहा है, लेकिन परमानंद श्रीवास्तव उनके नास्टेल्जिया को यूटोपिया कहते है। वे कहते हैं, ''हिन्दी के समकालीन काव्य परिदृश्य में केदारनाथ सिंह जैसे कवि जोकि बार–बार गाँव की ओर जाकर कविता का नया मुहावरा, कविता के लिए नई ऊर्जा प्राप्त करना चाहते हैं, वह संहार और विनाश की ताकतों के विरूद्ध एक स्पष्ट साहसिक और काव्यात्मक निर्णय है। यह नास्टेल्जिया नहीं है– यह सकारात्मक यूटोपिया है, जिसे प्रतिरोध चेतना का समशील कहा जा सकता है।''[16]

सन्दर्भ–सूची :–

1. कविता की नयी संवेदना, भासमणि त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 2020, पृ0–148
2. मिट्टी की रोशनी, सं–अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2007, पृ0–125
3. Morton, Prince, "The Unconscious" 2nd ed,1924, p.532
4. अभी बिल्कुल अभी, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र0सं0–1960, पृ0–28
5. यहां से देखो, केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984, पृ0–63
6. वक्तव्य, केदारनाथ सिंह, तीसरा सप्तक–सं0–अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, द्वि0सं0–1961, पृ0–195
7. मेरे साक्षात्कार, केदारनाथ सिंह, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ0–42
8. जमीन पक रही है, केदारनाथ सिंह, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 1980, पृ0–7
9. यहाँ से देखो, केदारनाथ सिंह, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ0–58
10. कविता और समय, अरुण कमल, वाणी प्रकाशन, सं0–2002, पृ0–110
11. उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण–1999, पृ0–17,18
12. खूंखार तुकों के विरूद्ध कवि का युद्ध, अपूर्वानन्द, मिट्टी की रोशनी, सं–अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2007, पृ0–119
13. सृष्टि पर पहरा, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, 2014, पृ0–90
14. कवि केदारनाथ सिंह, सं0–भारत यायावर, राजा खुशगाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,संस्करण–2004,पृ0–31
15. वही, पृ0–122
16. परमानंद श्रीवास्तव, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', सं0–मृणाल पाण्डेय, 26 फरवरी, 1989, नई दिल्ली

स्वतंत्रता सेनानी एवं शहीद कवि फौजी मेहर सिंह के लोककाव्य में राष्ट्रीयता के स्वर

राजेश कुमार*
डॉ. के. डी. शर्मा**

शोध सार :– युद्ध और संगीत, तलवार और कलम इन को एक दूसरे के विपरीत माना जाता है, परंतु फौजी मेहर सिंह इन दोनों विपरीत विधाओं के धनी थे। फौजी मेहर सिंह के समय (1918–1944) भारत अंग्रेजों का गुलाम था। अंग्रेज भारतीयों पर अनेक प्रकार के अत्याचार एवं उनका शोषण करते थे। फौजी मेहरसिंह ने अपने सांग एवं रागनियों के माध्यम से भारतीय जनता में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार एवं प्रसार किया। उन्होंने उस समय जो भारतीय समाज जाति, धर्म एवं भाषा के आधार पर बँटा हुआ था, उसको हमारी दुर्दशा का जिम्मेदार बताया। वे मानते थे कि इस विभाजन के कारण ही अंग्रेज हमारे देश के ऊपर हुकूमत कर रहे हैं। इसके अलावा वह स्वयं भी आजाद हिंद फौज के सैनिक थे तो आजाद हिंद फौज के सैनिकों को उन्होंने देश के ऊपर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने जनसाधारण को भी अंग्रेजों की नीतियों और अंग्रेजों को देश से भगाने के लिए आह्वान किया।

कुंजी–शब्द : राष्ट्रीयता,सांग–रागनी,अंग्रेजों की गुलामी,स्वतंत्रता,सांप्रदायिकता।

राष्ट्रीयता शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

राष्ट्रीयता शब्द राष्ट्र शब्द से बना है। राष्ट्र शब्द का प्रयोग भारत में प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों में राष्ट्र शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। राष्ट्र शब्द का अर्थ है–रासन्ते चारू शब्दं कुवैत जनः प्रदेशे विशेषे तद राष्ट्रम् –अर्थात जिस प्रदेश विशेष में लोग विशिष्ट भाषा में विचार विनिमय करते हैं,वह राष्ट्र है। मानक हिंदी कोश के अनुसार– राष्ट्र का अर्थ है'देश' किसी निश्चित या विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग,जिनकी एक भाषा,एक से रीति रिवाज तथा एक विचारधारा होती है राष्ट्र कहलाते हैं।[1] विश्व शब्द कोश के अनुसार–"वह जन समुदाय जो एक ही देश में बसता हो अथवा एक ही राज्य शासन के अंतर्गत एकताबद्ध हो राष्ट्र की संख्या से अभीहित किया जा सकता है।

राष्ट्र किस प्रकार बना यह एक विचारणीय प्रश्न है। पुरापाषाण काल से ही मानव असभ्य था। उसकी आवश्यकताएं केवल भोजन एवं आवास तक सीमित थी। लेकिन धीरे–धीरे सभ्यता के विकास के साथ उसकी जरूरतें बढ़ती गई। इसने उसे समूह में रहने के लिए प्रेरित किया। फिर बाद में वह समूह की भावना से परिवार,गाँव,नगर राज्य और अंतरराष्ट्रीय भावनाओं में बढ़ती चली गई।राष्ट्र शब्द में जब भावनाएँ जुड़ जाती हैं तो वह राष्ट्रीयता कहलाता है। इसमें भावों की प्रधानता रहती है। जब व्यक्ति स्वार्थ की भावना को छोड़कर परमार्थ की भावना की तरफ अग्रसर होता है तभी राष्ट्रीयता की भावना का उदय होता है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार– "राष्ट्रीयता का आरंभ अठारहवीं शताब्दी के अंत में सामान्यता जनता और व्यक्तिगत जीवन की भावनाओं के परिवर्तन के कारण हुआ। यह ऐतिहासिक एवं निश्चित तथ्य है।[2]

अनेक विद्वानों के अनुसार राष्ट्रीयता नामक राजनीतिक चेतना का विकास फ्रेंच क्रांति के कारण हुआ है। राष्ट्रीयता को विद्वानों ने भिन्न भिन्न अर्थों में परिभाषित किया है। रेम्जेम्योर के अनुसार–"राष्ट्रीयता के अंतर्गत जाति की एकता, सांस्कृतिक एकता,शासन की एकता,आर्थिक एकता,राजनीतिक एकता तथा अन्य

***शोधार्थी, इतिहास विभाग, एन.आर.ई.सी. कॉलेज, खुर्जा (बुलंदशहर)।**
****प्राचार्य, एन.आर.ई.सी. कॉलेज, खुर्जा (बुलंदशहर)।**

महापुरुषों की जीवन गाथा व विजय गीतों की मान्यता आदि तत्व समाहित है।"[3] हेराल्ड लास्की भी राष्ट्रीयता को भावनात्मक भावना मानते हैं–"जिसके द्वारा उन सभी में एक विशिष्ट एकता उत्पन्न हो जाती है जो अपने को अन्य मानवों से भिन्न मानते हो। यह एकता इतिहास,विजय,विजय अथवा परंपराओं को समानता का परिणाम होती है जिसकी प्राप्ति श्रेष्ठ प्रयत्नों के फलस्वरूप हुई।"[4]

भारतीय विद्वानों ने भी राष्ट्रीयता को परिभाषित किया है। डॉ राधाकृष्णन का विचार है कि–"राष्ट्रीयता राष्ट्र का अर्थ तो यह है कि हम अपने आत्मसम्मान तथा ईमानदारी की यथाशक्ति रक्षा करें और समस्याओं को सुलझाने में अपने व्यक्तिगत ढंग को बनाए रखें।"[5] देशबंधु चितरंजन दास अपने भाषण में कहते हैं कि–"राष्ट्रीयता वह क्रिया है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने को व्यक्त करता है तथा अपने को खोज लेता है। राष्ट्रीयता का यथार्थ सार यह है कि प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपना विकास करना आवश्यक है,जिसमें मनुष्य अपना विकास भी कर सके,अपने को व्यक्त कर सके तथा आत्मानुभव कर सके।

इस प्रकार राष्ट्रीयता की परिभाषाओं को देखने के उपरांत हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय एकता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसमें जाति की एकता,भाषा की एकता,साहित्य व संस्कृति की एकता आती है। अतः इसे कुछ सीमित शब्दों में हम परिभाषित नहीं कर सकते। जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़कर अपने राष्ट्र या अपने देश के लिए कुछ करने के लिए तैयार होता है और उस पर मर मिटने के लिए तैयार होता है,वही राष्ट्रीयता का जन्म होता है। वस्तुतःराष्ट्रीयता की भावना मानव शरीर में पाई जाने वाली एक विशेष चेतना है। राष्ट्रीयता का उदय फ्रांस की राज्य क्रांति के बाद में माना जाता है। उसके बाद यह एक प्रबल शक्ति के रूप में पूरे विश्व में फैल गई।भारतीय राष्ट्रीयता दूसरे देशों के राष्ट्रवाद से एवं राष्ट्रीयता से अलग प्रकार का है। भारतीय राष्ट्रीयता में अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा और प्रेम का भाव है। भारत में समय–समय पर अनेक विदेशी संस्कृतियाँ यहाँ पर आती रही और इसी संगम में मिलकर एकता के रूप में चलती रहीं, जैसे प्राचीन काल में शक, पहलव,पार्थियन,कुषाण तथा मध्यकाल में मुस्लिम एवं मुगल आदि। भारतीय राष्ट्रीयता अनेकता में एकता का बोध करवाती है।

फौजी मेहर सिंह के लोककाव्य में राष्ट्रीयता की भावना :– फौजी मेहर सिंह के समय में भारत अंग्रेजों का गुलाम था। अंग्रेज भारतीयों पर अनेक प्रकार से अत्याचार एवं उनका शोषण करते थे। अंग्रेज भारतीय किसानों,मजदूरों,कारीगरों एवं व्यापारियों सभी का शोषण करके पूरा धन लूट करके इंग्लैंड में ले जाते थे। भारतीय जनमानस अंग्रेजी शोषण और अत्याचार से तंग आकर उनसे मुक्ति पाने का प्रयास कर रहा था। उस समय भारत का स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में चल रहा था,दूसरी तरफ क्रांतिकारी भी अपने प्रयास में लगे हुए थे। नेताजी सुभाष चंद्र बोस आजाद हिंद फौज के माध्यम से भारत को मुक्त कराने का प्रयास कर रहे थे। फौजी मेहर सिंह भी नेताजी के साथ आजाद हिंद फौज में भारत की मुक्ति के लिए लड़ रहे थे। फौजी मेहर सिंह में राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी हुईथी। फौजी मेहर सिंह आजाद हिंद फौज में भी रागनियों के माध्यम से जवानों को देश पर मर मिटने के लिए प्रेरित करते थे। इस बारे में बताते हुए फौजी मेहर सिंह के साथी एवं स्वतंत्रता सेनानी परमानंद जी कहते हैं कि – ''मैं और भाई मेहर सिंह दोनों इकट्ठे गाते थे। भाई मेहर सिंह रागिनी गाते थे और मैं भजन गाता था। नेताजी सुभाष चंद्र बोस भी हम दोनों से भजन और रागनी सुनते थे। हम दोनों जवानों का मनोरंजन एवं उनको देश पर मर मिटने का हौसला देते थे।"[6]

फौजी मेहर सिंह के किस्सा 'सुभाष चंद्र बोस' एवं असंख्य मुक्तक रागनियों में राष्ट्रीयता की भावना की झलक दिखाई देती है। उस समय भारत जाति–पाति,धर्म,वर्ग के संघर्ष में उलझा हुआ था और भारतीय समाज कई टुकड़ों में बँटा हुआ था। फौजी मेहर सिंह जाति–पाति,छुआछूत को ही भारत की इस दुर्दशा के लिए जिम्मेदार मानते थे। वे मानते थे की हम आपस में लड़ते रहे और अंग्रेजो ने हमारे देश के ऊपर अधिकार कर लिया। वे कहते हैं कि–

ये के मांग आजादी कै पागल हिंदुस्तानी,
बेईमानां और गैर हिंद नै या छुआछात डूबोगी।[7]

फौजी मेहर सिंह मानते थे कि सभी व्यक्ति एक ही हाड–माँस और खून से बने हुए हैं। सभी एक समान है। जब भगवान ने हमें बनाते समय कोई भेदभाव नहीं किया है तो हम आपस में भेदभाव क्यों रखें? इस बारे में उन्होंने किस्सा सुभाष चंद्र बोस चंद्र बोस की एक रागनी में कहा है–

लाख चौरासी जिया जुन जिनका ब्रह्म एक बतलाया,
दीन ईमान बराबर सबका धर्म एक बतलाया।
खून पसीना हाड मास यो चर्म एक बतलाया,
सदाचार और जीव रक्षा कर्म एक बतलाया।[8]

उन्होंने किस्सा सुभाष चंद्र बोस की एक अन्य रागनी में बताया है कि जब सभी जाति–पाति को छोड़कर आजाद हिन्द फौज में इकट्ठे हो गए और सब मरने मिटने के लिए तैयार हो गए। इस बारे में कहते हैं–

भारत की आजादी खातिर मीटिंग और पंचायत हुई,
छुआछूत खत्म करके सब एक सारी जात हुई।
सिंगापुर की फौज आर्मी बंगाली के साथ हुई,
हिंद की खातिर कटण मरण नै सबनै हाथ उठाऐ।।
बाहमण हीर गुजर हरिजन म्हा शामिल जाट हो गए,
सब ने मिलकै जय हिंद बोली आजादी के ठाठ होंगे
नेताजी के कथ कै चरित्र मेहर सिंह ने गाऐ।।[9]

इसी समय भारत में धर्म के आधार पर भी विभाजन हो रखा था। हिंदू– मुस्लिम सांप्रदायिकता जोरों पर थी। अंग्रेज अपने फायदे के लिए इसे और ज्यादा हवा दे रहे थे। फौजी मेहर सिंह हिंदू– मुस्लिम एकता के जोरदार हिमायती थे। उनके कई साथी भी मुसलमान थे। वे किस्सा वीर हकीकत राय में कहते हैं कि हम सभी आपस में भाई–भाई हैं। हमारेआपस में फूट अच्छी नहीं है। आपस में झगड़े और फसाद करना यह भी ठीक नहीं है। वह मानते हैं कि मुसलमानों को फातिमा अच्छी लगती है तो हिंदुओं की आराध्य भवानी है,मुसलमानों का मक्का पवित्र है तो हिंदुओं का काशी पवित्र शहर है। उन्होंने कहा है–

भाई भाई हम सारे फूट खंडाना ठीक नहीं।
झगड़े और टंटे बाजी फसाद करना ठीक नहीं।।
तम नै फातिमा प्यारी हमनै प्यारी भवानी से,
थारा मक्का पाक सै, पवित्र सै काशी म्हारा।
दोनों ठोक बराबर सै बता मुंशी जी क्यूं छोह मै आरया।।[10]

वे मानते थे कि धर्म–संप्रदाय,जात–पात आदि हमने अपने स्वार्थ सुख के लिए बनाए हैं। इन्हें ईश्वर ने नहीं बनाया है। धर्म का निर्माण मनुष्य के लिए ही हुआ है। हमारे आपसी लड़ाई–झगडे की वजह से ही हमारे देश को इन बुरे हालातों का सामना करना पड़ रहा है। इसीलिए हमें मिल–जुल कर रहना चाहिए।

फौजी मेहर सिंह ने भारत माता की गुलामी का चित्रण बड़े मार्मिक एवं सटीक ढंग से किया है। भारत माता गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी हुई लज्जित है। उसकी संतान बिना किसी चिंता के सोई हुई है। सारा संसार उसे ताने मारता है। फौजी मेहर सिंह कहते हैं–

सुण–सुण ताने भारत मां की नाड़ तलै नै होगी।
चढ़ा शर्म लिहाज आज मैं कोन्या बोलण जोगी।।
इस गैर मुल्क की बोली के मेरै छींटे से लागै
सबतै पाछे बैठे रहेगे जो बोलणियां थे आगै
बिना अक्ल के उंट उभाणे कांटयां कै म्हा भागै
यो हिंदुस्तानी नींद का दुखिया और मुल्क सब जागैं
बेराना कद आंख खुलेगी या भोली जनता सोगी।[11]

फौजी मेहर सिंह ने अपनी रागनियों के माध्यम से देश वासियों को प्रेरित किया है कि हमें देश की आजादी के लिए संघर्ष करना चाहिए। हमें अपने देश के उपर प्राणों को न्यौछावर करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। हमारा सिर भले ही कट जाए, लेकिन देश को हमेशा उपर रखना चाहिए। कवि देश के लिए आत्मबलिदान की प्रेरणा देते हुए कहते हैं–

सिर फोडू और फूडवा लूंगा दुश्मन गल्यां भिड़कै
रैफल तोप गोली कै आगे खडा हो ज्यागाँ अडकै
चाहे बेशक तेज्यानचलीजानाशीश समझता धङ पै।[12]

कवि कहते है कि मांगने से हमें आजादी नहीं मिलेगी।इसके लिए हमें सभी सुख–सुविधा छोड़कर संघर्ष करना पडेगा–

यो भारत पड़ा सोव सै तनै जागणा होगा
मात–पिता और कुटुम्ब कबिला घर बार त्यागणा होगा।
प्यारा हिंदुस्तान छोड़कै बाहर भागणा होगा
तेरे बिना इस खून की होली खेल फागण होगा।
मांगें त ना राज मिलै तनै करणी पड़े लड़ाई।।[13]

निष्कर्ष :– हम देखते हैं कि लोककवि फौजी मेहर सिंह ने आजाद हिन्द फौज में रहकर आजादी कि लड़ाई लड़ी थी तथा वे उसी लड़ाई में शहीद भी हो गए थे। उन्होंने अपने लोककाव्य के माध्यम से अंग्रेजों के अन्याय का बखूबी वर्णन किया है। उन्होंने नेताजी सुभाष चंद्र बोस और अन्य देशभक्तों के बलिदान का भी वर्णन किया है। उन्होंने देश के नौजवानो को देश के ऊपर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए भी प्रेरित किया है। आज भी मेहर सिंह की रागनियों के माध्यम से युवा पीढ़ी प्रेरणा प्राप्त करती है। फौज मे भी इनकी रागनियो को बड़े चाव से सुना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि फौजी मेहर सिंह के लोक काव्य ने जनमानस मे राष्ट्रीय चेतना का भरपूर प्रचार–प्रसार किया है।

संदर्भ–सूची :–

1. रामचंद्र वर्मा,मानक हिंदीकोश, खण्ड–4, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965, पृ. 505।
2. Bell Andrew, Encyclopedia of Britannia, Vol- 16, Edinburgh, UK, 1810, P-140.
3. रेम्जेम्योर, नेशनलिज्म एंड इंटरनेशनलिज्म, कांस्टेबल कंपनी लि., यूरोप, 1917, पृ. 30।
4. Laski, Heralance, J- A- Grammar of Politics, Routledge, UK, 2018, P- 219.
5. डॉ. सुनील कुमार पाठक, छवि और छाप : राष्ट्रीयता के आलोक में भेजपुरी कविता का पाठ, ग्रंथ अकादमी, दिल्ली, 2015, पृ. 31।
6. व्यक्तिगत वार्ता–स्वतंत्रता सेनानी श्री परमानन्द जी, स्थान फजलपुरबादली, दिनांक 07.07.2019।
7. डॉ. रणबीर सिंह दहिया (संपादक), शहीद कवि फौजी मेहर सिंह रागनी संग्रह, शहीद मेहर सिंह स्मारक समिति बरोना,द्वि.सं–2010 पृ. 95।
8. वही, पृ. 95–96।
9. वही, पृ. 108–109।
10. डॉ. संतराम देशवाल(संपादक), सन्नी दहिया (लेखक), शहीद कवि फौजी मेहर सिंह ग्रंथावली,वाग्देवी प्रकाशन,सोनीपत, 2020,पृष्ठ 434–435।
11. वही, पृ. 472।
12. वही, पृ. 558।
13. वही, पृ. 474।

रीतिकालीन काव्य में स्त्री-विषयक दृष्टि

शुभम सिंह*

हिंदी साहित्य में रीतिकाल का विरोध सामान्यतः दो कारणों से किया जाता रहा है। पहला, रीतिकालीन साहित्य का सृजन सामंतों की रूचि के अनुसार किया गया था और दूसरा इसे वर्ण्यविषय की दृष्टि से घोर श्रृंगारिक माना जाता है। रीतिकाल का आरंभ से ही संक्रमित काल के रूप में मूल्यांकन होता रहा है। कुछ निश्चित प्रतिमानों के आधार पर सम्पूर्ण काल को मूल्यांकित करने का प्रयास किया जाता रहा है। यहाँ तक कि रीतिकाल के बाद आधुनिक काल में भी यदि कोई लेखक रीतिकालीन श्रृंगारिकता और काव्य–योजना से प्रभावित होकर साहित्य सृजन करता था तो उस लेखक के काव्य–मूल्यांकन के समय उसे रीतिकालीन खाँचे में संदर्भित कर दिया जाता था। यानि कि साहित्य की नकारात्मक प्रवृत्तियों को रीतिकाव्य से जोड़ने का प्रयास किया जाता रहा है। ऐसे में रीतिकाव्य के नये सिरे से मूल्यांकन की आवश्यकता है। जिससे उसकी अन्यान्य प्रवृत्तियाँ हमारे समक्ष उपस्थित हो सकें।

रीतिकाल को लेकर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं जिसमें वे इस बात पर बल देते हैं कि किसी साहित्य का मूल्यांकन उसमें निहित साहित्यिक मूल्यों के साथ–साथ उसकी रचनात्मक परिस्थिति के अनुसार करना चाहिए। वे कहते हैं, "हिंदी की मध्यकालीन श्रृंगारिक रचना की पर्याप्त कुत्सा की गयी है। अवस्था, परिस्थिति आदि के कारण रचना में भेद होता है, इस नियम की भी छूट उसे नहीं दी गयी और उसकी निंदा की गयी है। काव्य–परम्परा को भी छूट मिलती है। पर उसे किसी प्रकार की छूट नहीं दी गयी और उसकी निंदा की गयी। हिंदी की समस्त रचना पर यदि साहित्यिक दृष्टि से विचार किया जाये तो हिंदी का श्रृंगारकाल ही उसका अनारोपित काव्यकाल दिखता है। उसमें जितने अधिक उत्कृष्ट कवि हुए उतने किसी युग में नहीं। उस युग की रचना भी परिणाम में बहुत है। यदि उसका सारा वाङ्मय प्रकाशित किया जाये तो युगों में प्रकाशित हो सकेगा। श्रृंगार की एक से एक उत्कृष्ट उक्तियाँ उसमें प्रभूत परिमाण में हैं, इतनी अधिक हैं कि संस्कृति साहित्य अत्यंत समृद्ध होने पर भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। इस युग की श्रृंगारी अभिव्यक्ति में अनुवदन संस्कृत के अनुधावन पर नहीं है। उसमें मौलिक अभिव्यक्ति बहुत अधिक है। अभिव्यक्ति का विषय आधार एक ही होने के कारण उक्तियाँ अवश्य मिलती जुलती हो गयी हैं। पर यह कहना ठीक नहीं है श्रृंगारकाल में केवल पिष्टपेषण ही हुआ है। उसने संस्कृत को भी प्रभावित किया है।"[1]

हिंदी साहित्य के दीर्घकालीन इतिहास में रीतिकालीन साहित्य का सृजन विशुद्ध साहित्यिक प्रयोजन से हुआ है। यह साहित्य में एक ऐसा युग था जिसके अंतर्गत हिंदी काव्य राजाओं एवं सामंतों की विलासी मनोवृत्ति को उत्तेजित एवं तृप्त करने का साधन बन गयी थी और कवि इस मादक सामग्री को उपलब्ध कराने वाला माध्यम। रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी और राज्याश्रित थे। इसलिए उनकी दृष्टि सामान्यतः दरबार तक सीमित थी। रीतिकाल आर्थिक दृष्टिकोण से समृद्धि एवं विलासिता का काल था। राजाओं ने अपने दरबार में ऐसे कवियों को स्थान दे रखा था जो उनके यशोगान करने के साथ–साथ उनका मनोरंजन भी करते थे। इसीलिए उनकी कविताओं में राजमहलों के भोग्य एवं विलासी जीवन का आकर्षक चित्रण देखने को मिलता है। रीतिकाल के कवियों ने राजाओं के प्रशस्तिगान हेतु जिस उत्तेजक सामग्री का प्रयोग किया वह उन्हें प्राचीन काव्य ग्रंथों 'कामसूत्र', 'चंद्रलोक', और 'कुवलयानंद' से प्राप्त हुई। इसके द्वारा उन्होंने कामकला के विभिन्न रूपों, नायिका भेद, रस, अलंकार सम्बन्धी अनेक श्रृंगारी परक रचनाओं का सृजन किया। विलासी राजाओं के लिए परोसी गयी यह सामग्री उनके भोग्यवादी जीवन के आनंद का साधन बनती गयी और नारी उनके लिए भोग की सामग्री। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से हम देखते हैं कि जहाँ इस युग के कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य–ग्रन्थों का निर्माण किया, वहीं उन काव्य ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने शास्त्रीय कविता के पहचान को भी स्थापित किया।

***शोधार्थी (हिंदी) हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, काँगड़ा (हि. प्र.), 176215**

वर्ण्यविषय की दृष्टि से रीतिकाल का प्रमुख विषय श्रृंगार रहा है। और इसके केंद्र में नारी–यौवन, नारी–देह का सौंदर्य, मादकता और नखशिख वर्णन, उत्तेजनकारी कामना आदि की प्रवृत्ति दिखाई देती है। एक तरफ जहाँ रीतिकाव्य में हर ओर स्त्री का ही गुणगान और उसकी ही चर्चा है वहीं दूसरी तरफ स्त्री–अस्मिता का एक तरह से लोप है। स्त्री अपनी दुःख, पीड़ा, हर्ष–विषाद और अपने मर्म की गाथा स्वयं नहीं कहती है। या अब तक स्त्री–लेखन के दृष्टिकोण से उन लेखिकाओं की चर्चा नहीं हुई है, जिसमें अपने जीवन की कथा और इच्छाओं की अभिव्यक्ति हुई हो! पूर्ववती लेखन में कई स्त्री– रचनाकारों का प्रतिनिधित्त्व है, परन्तु रीतिकाल में इसकी उपस्थिति एक तरह से नगण्य है। यह अनुपस्थिति ही स्त्री–पुरुष असमानता को उत्पन्न करती है।

रीतिकालीन में नारी सौंदर्य का पुरुषवादी नजरिया रहा है। स्त्री सौंदर्य के जो भी प्रतिमान तैयार किये गये। उसमें पुरुष अभिरुचि एवं उसकी पसंद का मापदंड तैयार हुआ। यदि हम रीतिकालीन कवियों द्वारा वर्णित स्त्री सौंदर्य को अतीत से जोड़कर देखें तो पाते हैं कि पूर्व में कालिदास, जयदेव, विद्यापति आदि ने स्त्री–सौन्दर्य, उसके मन, उसकी कामना आदि का चित्रण किया था। जिसमें स्त्री कामेच्छा, उसकी मनोकामना, रूचि आदि को सजीव रूप में अनेक उपमाओं के द्वारा चित्रित किया गया है। परन्तु रीतिकालीन श्रृंगार वर्णन जड़ शास्त्रीय पिष्टपेषण अधिक है। इसमें श्रृंगार के गंभीर रूप के स्थान पर कामुकता की वृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। इसे एक प्रसंग के माध्यम से देखा जा सकता है। जिसमें पद्माकर कहते हैं–

'मूँदे तहाँ एक अलबेलो के अनोखे दृग
सु दृग मिचावनै के ख्यालनि हितै हितै।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी कों
औचक अचूक मुख चूमत चितै चितै।'[2]

रीतिकाल को प्रायः तीन प्रमुख आयामों में बाँटकर देखा जाता है। जिसमें रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त शाखा का नाम आता है। अधिकतर रीतिबद्ध कवियों ने अपने आश्रयदाता के अधीन रहकर कविता लिखी है। मतिराम, देव, पद्माकर आदि कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के ऐन्द्रिय सुख के लिए ऐसी सामग्री का सृजन किया जिसमें उनकी आसक्ति और उत्तेजना की पूर्ति थी। जहाँ स्त्री के जन्म और अस्तित्त्व का अंतिम प्रयोजन पुरुष केन्द्रित समाज के लिए आनंद का सृजन करना था। यह आनंद पुरुष केन्द्रित था और इस केन्द्रिकता का चरम उद्देश्य भोग, विलास और शुद्ध ऐन्द्रियता था। ऐसी अवधारणाओं ने स्त्री–जीवन को सारहीन मान लिया। देव इस सन्दर्भ में लिखते हैं–

'काम अंधकारी जगत, लखै न रूप कुरूप।
हाथ लिए डोलत फिरै, कामिनी छरी अनूप।
तातैं कामिनी एक ही, कहन सुनन को भेद।
राचौं पागै प्रेमरस, मेटैं मन के खेद।'[3]

श्रृंगार एवं भोग–विलास से पूर्ण रीतिकालीन वातावरण में स्त्रियाँ पूर्ण रूप से स्वंतंत्र नहीं थीं। उन पर अनेक प्रकार से सामाजिक अंकुश थे। इस श्रृंगार एवं मनोरंजन परक परिवेश में स्त्री पराधीनता का अनुभव करती थी। तुलसीदास इस सन्दर्भ में कहते भी हैं, 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।' ऐसे में एक पराधीन स्त्री के जीवन में सुख की कल्पना कहाँ हो सकती है? स्त्री अपनी रूचि के अनुरूप निर्णय लेने के पूर्णतः स्वतंत्र न थी। एक ऐसा युग जिसमें लड़कियों को माता–पिता को बिना सूचित किये घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। यदि वह बिना अनुमति के घर से बाहर निकलती थी तो उससे कई तरह के सवाल किये जाते थे–

बोलति न काहे ए री पूछे बिन बोलौं कहा
पूछति हौं कहा भई स्वेद अधिकाई है।
कहै पद्माकर सु मारग के गये आये
साँची कछु मोसों आजु कहाँ गयी आयी है।

उपर्युक्त सन्दर्भों में यह रीतिकाल का एक पक्ष रहा है जिसे घोर श्रृंगारिक, उत्तेजना, मनोरंजन, भोग, विलास, वासना, नखशिख वर्णन आदि सन्दर्भों में व्याख्यित करके साहित्य एवं समाज में उसके नकारात्मक प्रभाव को दिखाया गया है। रीतिकालीन स्त्री पक्ष को लेकर अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो रीतिकालीन नारी दृष्टि को विस्तार प्रदान करते हैं।

जब हम रीतिसिद्ध शाखा के कवि बिहारी की बात करते हैं तो बिहारी अनेक स्थानों पर प्रेम, सौन्दर्य एवं नीति सम्बन्धी अनेक पदों के द्वारा स्त्री–जीवन को अधिकार, स्वतंत्रता एवं शक्ति का आभास कराते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बिहारी को रीतिकाल का 'प्रतिनिधि' कवि न मान उन्हें 'लोकप्रिय' कवि मानते हैं। वे इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "बिहारी की सतसई किसी रीति–मनोवृत्ति की उपज नहीं है। यह एक विशाल परम्परा के लगभग अंतिम छोर पर पड़ती है और अपनी परम्परा को संभवतः अंतिम बिंदु तक ले जाती है।"[4]

किसी पाठ के बहुआयामी स्तरों को उजागर करने के लिए आवश्यक है कि उसमें निहित साहित्यिक पाठ के साथ–साथ उसके साहित्येर पाठ को भी प्रस्तुत किया जाये। यह साहित्यिक पाठ को एकांगी, प्रभाववादी एवं सीमित होने से बचाता है। ऐसे में बिहारी सतसई को सिर्फ काव्य–सौंदर्य की दृष्टि से न मूल्यांकित करके उसमें उपस्थित श्रृंगार के साथ–साथ प्रेम और सौंदर्य को भी उजागर करने की आवश्यकता है। बिहारी प्रेम एवं सौन्दर्य की कविता का सृजन कर न केवल अपने उत्तरदायित्त्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह करते हैं। बल्कि स्त्री–कामना, विलासिता के प्रति जो पुरुषों में व्यभिचार बढ़ रहा था उस आसक्ति को भी तोड़ने का कार्य करते हैं–

नहीं परागु, नहीं मधुर मधु, नहीं बिकासु इहिं काल।
अली कली ही सों बंध्यौ, आगै कौन हवाल।[5]

एक अन्य दोहे में बिहारी प्रेमी जोड़े के हास–परिहास का चित्रण करते हैं। जिसमें प्रेमी युगल की आपसी तालमेल को अनेक आंगिक संकेतों के माध्यम से सात्त्विक प्रेम को महत्त्व दिया गया है। यह संभवतः आज के परिवेश में स्त्री–पुरुष के प्रेममय जीवन के लिए एक उदाहरण भी है। बिहारी लिखते हैं–

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात।[6]

एक अन्य दोहे में विरहिणी नायिका को जब अपने प्रियतम की याद आती है तब–तब वह अपनी सुध–बुध भूल जाती है। जिससे अपने प्रिय की याद में उसे नींद नहीं आती है और उसका ह्रदय अपने प्रिय की याद में व्याकुल रहता है। यह प्रेम की सहज स्वाभाविक क्रिया है।

जब–जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाहिं।
आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाँहि।[7]

आज के भयावह वातावरण में जहाँ हमारे जीवन से प्रेम के लिए जगह कम होती जा रही है, ऐसे परिस्थिति में बिहारी द्वारा व्याख्यित प्रेम के महत्त्व को न केवल समझने की आवश्यकता है बल्कि उसके अधिक से अधिक विस्तार की जरूरत है।

किसी भी युग का साहित्य सृजन अपने कालगत परिवेश और समाज के घात–संघात अथवा सामंजस्य की प्रक्रिया में विकसित होता है। केवल सामंजस्य स्थापन की प्रवृत्ति साहित्य को स्थिर एवं निष्प्रभावी बना देती है। जहाँ रीतिबद्ध कवियों ने स्त्री को महत्त्वाकांक्षा के रूप में प्रदर्शित किया है। और सामान्यतः श्रृंगार वर्णन के हर पक्ष को काम वासना, विलासिता और प्रदर्शनप्रियता से जोड़कर प्रस्तुत किया हैं वहीं इसके उलट रीतिमुक्त कवियों की श्रृंगारिकता, प्रेम–चित्रण वैयक्तिक अनुभूति पर आधारित होने के कारण निश्छल एवं उदात्त है। उसमें जड़ श्रृंगारिकता के स्थान पर स्वछन्द प्रेमानुभूति का वेगयुक्त प्रवाह है। इन कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति में अनुभूति की प्रमाणिकता, आत्मपरकता एवं ईमानदारी के साथ एक दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण की भावना है। जो स्त्री–पुरुष दोनों के मन को आकर्षित करता है। रीतिमुक्त कवियों के यहाँ नारी सौंदर्य का प्रतिरूप तो है परन्तु वह भोग की वस्तु नहीं है। उनके लिए प्रेम उपभोग की वस्तु न होकर एक दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण की भावना है। जो अपनी प्रगाढ़ता, तन्मयता एवं उदात्तता में मन का परिष्कार कर निर्मल एवं पवित्र बन जाता है। घनानंद इस प्रेम के पथ को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं–

अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ, झिझकें कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, इति एक ते दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।[8]

घनानंद के प्रेम की यह विशेषता है कि जहाँ रीतिकाल के अन्य कवियों ने प्रेम के बारे में परम्परा से प्राप्त ज्ञान के आधार पर अनुकरण किया है, वहीं उनका प्रेम स्वानुभूति था। घनानंद के काव्य को सामान्यतः सुजान के प्रेम

के आधार पर मूल्यांकित किया जाता है, परन्तु एक पद में घनानन्द आज के स्त्री परिवेश या इससे भी आगे चरितार्थ करते हुए दिखाई देते हैं– 'जगत में जोति एक कीरति की होति है पै, राधिका तो कीरति के कुल का प्रकास है।' यह पंक्ति आधुनिक काल में भी देखने को नहीं मिलती है जहाँ पुत्री को कुल के प्रकाश के रूप में चित्रित किया गया हो।

प्रिय के सुंदर रूप को देखकर नायक के ह्रदय में किस प्रकार का उद्वेलन और उसके मन की क्या दशा होती है? इस पर घनानन्द लिखते हैं–

रावरे रूप की रीति अनूप नयौ नयौ लागत ज्यों ज्यों निहारिये।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखि, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।[9]

बोधा इस प्रेम के पथ को अत्यंत कठिन मानते हैं और इसे तलवार पर चलने के समान मानते हैं–

'यह प्रेम को पंथ कराल महा, तलवार की धारि पै धावनो है।'[10]

बोधा एक अन्य पद में नीति की बात करते हुए कहते हैं कि लोक के भीतर प्रेम को लेकर जो भय है। ऐसे में किसी से निस्वार्थ प्रेम के पाश्चात्य उसका प्रेम आपको प्राप्त ही होगा! इसकी निश्चितता कोई नहीं दे सकता है।

'लोक की भीति डेरात जो मीत तौ प्रीति के पैंड़े परै जनि कोऊ।'[11]

इस प्रकार की स्वार्थरहित युक्तियों ने स्त्री–पुरुष को न केवल स्वतंत्रता दी है अपितु रीतिकालीन सामंती परिवेश को तोड़ने का भी काम किया है।

यदि रीतिकाल की श्रृंगार–चेतना का समग्र रूप से मूल्यांकन किया जाये तो रीतिबद्ध काव्य अपनी समूची ऐश्वर्यमयी चमत्कारयुक्त सृजनात्मकता के उपरांत भी सामंती परिवेश का गौरवशाली चित्रण करने के कारण साहित्य इतिहास में उस सम्मान एवं आदर्श का अधिकारी नहीं हो पाया जो उसी युग में रीतिमुक्त काव्य को प्राप्त हुआ।

वस्तुतः जिस अश्लीलता एवं श्रृंगारिकता के द्वारा रीतिकालीन साहित्य को कठघरे में खड़ा कर मूल्यांकन किया जाता रहा है। वह किसी भी साहित्य के मूल्यांकन का एकांगी पक्ष होता है। रीतिकालीन काव्य को किसी एकरेखीय पद्धति के आधार पर मूल्यांकित करके उसका सरलीकरण किया जा सकता है परन्तु किसी काल की मूल्यांकन–पद्धति चक्रीय होती है, एकरेखीय नहीं। यह सत्य है कि रीतिकालीन दरबारी संस्कृति ने साहित्य एवं समाज के विस्तार को रोकने का काम किया है। परन्तु इसके बाद भी जन–जीवन की जिजीविषा को लेकर उसमें अनेक प्रसंग देखने को मिलता है। इस संदर्भ में भागीरथ मिश्र लिखते हैं, "रीतिकाव्य में व्यापक जीवन दर्शन का आभाव है ही उसमें संदेह नहीं। रीतिकाव्य यौवन मादक का विलासपूर्ण काव्य है। फिर भी उसमें ऐसी उक्तियाँ मिलती हैं जो जीवन अनुभव और आदर्श बताती हैं। अतः आधुनिक दृष्टि से प्रगति की प्रेरणा न होते हुए भी इसमें जीवनोपयोगी तत्त्वों का अभाव नहीं हैं।"[12] रीतिकाल को आधुनिक दृष्टिकोण से समझने की आवश्यकता है। जिससे इस काल के प्रति एक नवीन दृष्टि विकसित की जा सके। रीतिकाल आधुनिक स्त्री–स्वातंत्र्य के विमर्शों के लिए महत्त्वपूर्ण अध्ययन सामाग्री सिद्ध हो सकता है, बशर्ते इसका निरपेक्ष, पूर्वधारणारहित, गैर–पारंपरिक व सजग विश्लेषण किया जाये।

सन्दर्भ सूची :–

1. (सं.) मुकेश गर्ग, स्त्री की नजर में रीतिकाल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2020, पृष्ठ–53
2. ब्रजरत्नदास, पद्माकर की काव्य–साधना, साहित्य सेवा सदन, काशी, संस्करण–1934, पृष्ठ–201
3. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, संस्करण–1953, पृष्ठ–162
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य उद्भव एवं विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2018, पृष्ठ–176
5. डॉ. रामदेव शुक्ल, सामंती परिवेश का यथार्थ और बिहारी का काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण– 2011, पृष्ठ–150
6. वही, पृष्ठ–148
7. वही, पृष्ठ–159
8. (सं.) जगदीश गुप्त, रीतिकाव्य–संग्रह, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहबाद, संस्करण–1961, पृष्ठ–349
9. वही, पृष्ठ–345
10. वही, पृष्ठ–367
11. वही, पृष्ठ–367
12. सुधीर पचौरी, रीतिकाल सेक्सुअलिटी का समारोह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ–39

भोजपुरी लोकगीतों में करुणा का स्वर और स्त्री

अश्वनी कुमार सिंह*

सृष्टि के आरंभ से मनुष्य का जीवन इतना अधिक जटिल नहीं था जितना आज है। उस दौर में स्त्री और पुरूष दोनों का महत्व समान था। मानव जीवन के आरम्भिक वर्षों में जब मनुष्य व्यवस्थित होकर रहने लगा तब मातृसत्ता की प्रधानता थी। पुत्र की पहचान माँ के नाम से होती थी। कुल मिलाकर यदि यह कहा जाए कि स्त्री की स्थिति आज से बेहतर थी तो कुछ गलत नही होगा। ''अनेकशः यह उल्लेख मिलता है कि आरम्भिक समय में स्त्रियों की स्थिति ज्यादा बेहतर थी। वे वैदिक ऋचाओं की निर्मात्री, शास्त्रार्थ करती, आखेट करती, युद्ध करती, स्वयंवर, बहुविवाह, नियोग आदि के आजादी को जीती थी।''[1] समय परिवर्तनशील है और इस परिवर्तन का असर हमें नारी जाति पर सर्वाधिक दिखायी पड़ता है, उसमें भी उसकी स्वतंत्रता पर फलतः कालांतर में उसकी स्वतंत्रता का हनन किया जाने लगा। गार्गी, अपाला सदृश स्त्रियाँ विद्वानों के साथ समर्थ ढंग से शास्त्रार्थ कर रहीं थी तब उन्हें इस बात का भय दिखाकर चुप करा दिया गया कि उनका सिर धड़ से अलग कर लिया जाएगा।

सभ्य समाज में स्त्री की जो दारूण दशा है उससे भी खराब स्थिति लोक में नारी की ही है; लोक की नारी वास्तव में बेचारी है। वह 'आँचल में दूध और आँखो में पानी' लिए होती है। भारतीय समाज की परम्परागत रूढ़ियों एवं मान्यताओं के कारण नारी की घोर उपेक्षा होती रही है। आधुनिक युग में भी लड़की पराया धन मानी जाती है, पिता के सम्पत्ति में उसका कोई हिस्सा नहीं होता। विवाह के समय दहेज में कमी होने के कारण ससुराल में अनेक तरह की प्रताड़नाओं को झेलना पड़ता है। भोजपुरी के कई लोकगीतों में हमें यह दृश्य देखने को मिलता है कि एक लड़की जो इतने नाज से पली–बढ़ी है ससुराल में जाते ही उसे पग–पग पर अग्नि–परीक्षा देनी पड़ती है।

''के रे दे ले गेहूँवा के रे दे ले चँगेलिया।
कवन कइरिनिया हो रामा भेजले जँतसरिया।।
सासु दे ली गोहुँवा हो रामा ननद चँगेलिया।
गोतिनी कइरितिया हो रामा भेजेली जँतसरिया।।
जँतवों न चलइ हो रामा, मरकी न डोलाइ।
जँतवा के धइले हो रामा रोइला जँतसरिया।।''[2]

बहु को दुःख देने में उसकी सास का साथ ननद देती है। यह कैसी विडम्बना है कि जिस स्त्री ने मिलकर आजादी की लडाई लड़ी हो, वे ही एक दूसरे को कष्ट दे रही है। यदि किसी स्त्री का पति आजीविका की खोज में परदेश चला जाता है, तो वधू को सास, और ननदों की बोली–विषाड़ी सुनने को मिलती रहती है। इतना ही नही सास यह भी कहती है कि उसका पति तो चला गया वह किसकी कमाई खायेगी –

''हरि मोरे गइले बिदेसवा सकल दुखवा देई गइले हो राम।
सासु ननदिया बिरही बोलेली केकर कमाई खइबू हो राम।
धई लिहली गोड़िनी के भेसिया, त पतई बहारे लगनी हो राम।।''[3]

किसी भी समाज की दशा का यदि ठीक–ठीक चित्र देखना हो तो सबसे पहले स्त्रियों की दशा देखी जानी चाहिए। छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, अवधी, मेवाती, से यदि भोजपुरी की तुलना करें तो संदर्भित क्षेत्र की स्त्री का जीवन करीब–करीब दासता के करीब है। यहाँ की स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है, वह पिता, पति और पुत्र की आजन्म निःशुल्क चाकर है। उसकी गुलामी का कोई अंत नही। घर–परिवार की इज्जत, मान–मर्यादा, की एक मात्र रक्षक है। पुत्र की गतिविधियां जो गर्व का विषय समझी जाती हैं वही कार्य यदि पुत्री कर डाले तो घर के पुरूषों के मुख पर कालिख पुत जाती है। भोजपुरी में स्त्रियों की गीतों में अपनी पराधीनता के खिलाफ

***शोध छात्र, हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंट म.प्र.।**

कोई प्रतिकार प्रायः नही मिलता। सीता या राधा की बात करते हुए वे राम और कृष्ण के प्रति नाराजगी भले प्रकट कर ले लेकिन उन्हें अपनी उपेक्षित दशा का कोई एहसास नहीं होता है। वे हर स्थिति में खुश दिखने का बढ़िया अभिनय करती है। भोजपुरी में स्त्रियों के गीतों में भी किसी स्त्री की इच्छा की अभिव्यक्ति नहीं मिल सकती। भोजपुरी की स्त्री सोच भी नहीं सकती कि प्रणय निवेदन महिला की ओर से भी किया जा सकता है–

''माया के मारे रे आय गयों तोरे टोला आ
या ढकची में भात राधों
या जोड़ी बनायले में सेंत, मेत
या चाउर के भात राधौं या उरदा के दार
अहड़ बहड़ तो झंय होवे मही लगाऊं पार''[4]

भोजपुरी की स्त्री यदि इस तरह का कोई गीत गा दे 'ऑनर किलिंग' की नौबत आ जाएगी। राजा–रजवाड़े के लम्बे समय तक प्रभाव के कारण बुन्देलखंड की स्थिति भी इससे कोई बहुत अलग नहीं है। बघेली में किसी गीत में यह कहा जाना स्त्री की किंचित बेहतर सामाजिक स्थिति का उदाहरण दिखाई पड़ता है। एक और उदाहरण देखिए एक युवती घर लौटने के बाद अपनी माँ से शिकायत कर रही है–

कहाँ कहौ माया सरम कै बतियाँ
कहत लजन मरि जांव
अवध से आए दुइ ठे बेटउना
अमसे खेलत विचकार
बाहन की मोरी चूरी ओंइ फोरिन
तोरिन गरे कै हार।''[5]

इल्जाम भी लगाया तो किस पर? भगवान से सीधे सरेआम भोजपुरी की स्त्री यूं जोरा–जोरी नहीं कर सकती। उपरोक्त गीत में 'अवध से आए दुई ठे बेटउना' अगल–बगल गॉव में रहने वाला कोई छैला जैसा युवक है। यहाँ भगवान कहां है? यह कहने कि सहजता है वह किसी धर्मभीरू महिला समाज की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है। लड़ीका, मनसेधु, खेत–खलिहान, गाय–भैस घर–द्वार आदि के लिए दिन भर राम से विनती करती बुदबुदाती कोई स्त्री उन्हीं से पिचकार खेलने के बारे में सोच भी कैसे सकती है। यह किसी राजा साहब द्वारा निम्न वर्ग की किसी युवती से छेड़–छाड़ का प्रसंग भी नहीं है। उच्चवर्णियों के यहाँ यकीनन बेड़िया और सख्त है, गनीमत वही पर जहाँ रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में 'स्वाभाविकता' बची हुई है। अगर इसे सचमुच स्वाभाविक अभिव्यक्ति मान लिया जाए तो क्या भोजपुरी इलाके की स्त्री की हीनता का बोझ और भारी नहीं हो जाता है। हमारी समस्या यह है कि एक–दो उदाहरण देकर कुछ कहा नहीं जा सकता।

भारतीय समाज में नारी जाति की यह बड़ी विडम्बना है कि वह जिसके भरोसे अपने परिवार को छोड़ कर आती है, वह भी उसे कष्ट दे तो जीना दुर्लभ हो जाता है। एक स्त्री सबकुछ सहन कर सकती है लेकिन पति की उपेक्षा उसके हृदय को बेध डालती है। ससुराल में एक मात्र भरोसा पति के ऊपर होता है यदि वह भी रूठ जाए और परदेश चला जाए तो स्त्री का जीवन सर्वाधिक कष्टकारी हो जाता है।

सासु मोरा मारे राम बाँस के छिऊकिया।
मोर ननदिया रे सुकुकत पुनिया के जाय।
छोटे मोटे पातर पियवा हँसि के ना बोले।
मोर ननदिया रे से हू पियवा कहीं चलि जाए।
गंगा रे जमुनवा के चिकना डगरिया
मोर ननदिया रे पेयाँ धरत छिलाय।
कहत महेंदर मिसिर इहो रे पुरूषिया
मोर ननदिया रे पिया बिनु रहलो ना जा।।''[6]

लोक स्त्री को संतान उत्पन्न करने वाला यंत्र मानता है यह सब जानते है कि संतानोत्पत्ति किसी के हाथ में नहीं होती फिर भी यदि किसी स्त्री को संतान नहीं हेाती तो उसका सारा दोष बहु के ऊपर मढ़ दिया जाता है। और उसे बंध्या (बॉझ) कहकर प्रताड़ित किया जाता है।

'सास, बहू–कहि नाय बोलै, ननद भाभी ना कहै,
ननद भाभी ना कहै।
न हो राजे, वे हरि बाँझ कहि टेरे,
तो छतियाँ जु फटि गई।।'

ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह स्वयं संतान पैदा करना नहीं चाहती। स्त्री जीवन की सार्थकता मातृत्व सुख में ही है, इस बात को स्त्री स्वयं स्वीकार करती है। परन्तु ईश्वर के हाथ में जो है वह उसे कैसे छिन ले? एक भोजपुरी लोकगीत की नायिका को भी इन्हीं दुर्वचनों को सुनना पड़ रहा है–

''सासु मोरी कहेली बझिनियाँ ननद बझवासिनि हो।
रामा जिनके मै बारी रे बियाही ऊहो घर से निकसलनि हो।।''[7]

इन्हीं तमाम तरह की यातनाओं से दुःखी होकर स्त्रियां आत्महत्या जैसे जघन्यतम अपराध को वरण करने के लिए विवश हो जाती है। इन सब दुःखों को वह किसी और से कह नहीं पाती, किन्तु जब उसका भाई उससे मिलने आता है, और स्नेह से हाथ फेरता है तो उसके दुःख आँसुओं के साथ बाहर प्रगट हो जाते है।

''बइठी न मोरे भइया मलिनि ओसरवा रे ना।
भइया मोर दुःख कहे मालिनी घेरिया रे ना।
कै मत कूटो भइया कै नम पीसौ रे ना।
भइया कै मन सिअवो रसोइया रे ना।
भइैया सरी गली फटह लुकरिया रे ना।
भइया ओहू माहे देवरा कछोटिया रे ना।।''[8]

जब वह रो रोकर अपने सारे दुःखों का बयान कर देती है तब उसे याद आता है कि भईया जाकर घर पर सब को बता देंगे तो माता–पिता को कितना दुःख होगा। इसलिए वह अपने भाई से आग्रह करती है कि यह सब घर पर जाकर ना कहे।

''ईदुख जनी कहिछड भइया भऊजी की अगवा रे ना
भऊजी दुइ चारि घरे कह अइहें रे ना।
ई दुख जनी कहिएऽ भईया बाबा के अगवां रे ना।
सभवे बइठि बाबा रोइहै रे ना
ई दुख भइया तूटू नमही में राखऊँ रे ना
भइया करम लिखाइ तस भोगवा रे ना
सब दुख बॉधि भइया अपनी पोटरिया रे ना
भइया नढिया दीहड तूड बहाई रे ना।।''[9]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि एक स्त्री को कितनी यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। लोक–साहित्य की विधाओं (लोककथा, लोकगाथा और लोकनाट्य आदि) में सबसे अधिक समृद्ध विधा लोकगीत की है। लोकगीत लोक की आत्मा है जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है ठीक उसी तरह लोकगीत भी लोक के दर्पण होते है। इन लोकगीतों में लोक अपने हृदय की राग–विरागमयी भावनाओं को चित्रित और व्याख्यायित करता है। इन लोकगीतों में हमें जन्म से लेकर मृत्य तक के दृश्य प्राप्त होते हैं। लोकगीतों का सर्वाधिक सम्बन्ध स्त्रियों से होता है। क्योंकि वह जिन बातों को स्पष्ट रूप से नहीं कह पाती है उसे वह लोकगीतों के माध्यम से कह देती है। लोकगीत स्त्रियों के कण्ठहार ही हैं। एक गीत में बालिका अपनी माँ से सवाल करती है जिस दिन भाई का जन्म हुआ उस दिन तो तुम्हारी नार सोने की चाकू से काटी गई और जिस दिन मेरा जन्म हुआ, उस दिन हसियां, खुरपी से काटी गई ऐसा क्यों? इस पुरूषत्व के अहम के नीचे न जाने कितनी इच्छाओं–आकांक्षाओं की हत्या होते एक स्त्री देखती है और चुपचाप सहती है–

'जहि दिन हे अम्मा भइया के जनमवा
सोने की छुरी कटइलो नारी हो।
जहि दिन अहे अम्मा हमरो जनभवा
हँसुवा खोजइते हे अम्म हमरो खुरपी न भटें
मिटकी कटइले मोरी नार हो।'

लोकगीतों मे सर्वाधिक हृदय विदारक और कारुणिक दृश्य कन्या की विदाई के समय होता है, विदाई के एक गीत में कन्या अपने पिता से प्रश्न करती है–

'भइया के दिहला महली दुमहलि
हमक का दिहल विदेशवा।।'

कन्या पूछती है कि भाई को तो आप ने महल बनवा कर दिया और हमको इतना दूर–देश में क्यों ब्याह दिया? दुःख की अभिव्यक्ति किसी भी बोली या भाषा में नहीं बंधी होती है। इस तरह इन गीतों में दारुण विमोह के साथ बेटी होने की तथा पराई (गैर) होने के विवश–कातर भावों के दर्शन होते है। जो लोकगीतों की नारियों की सामर्थ्य और सीमाएं हैं।

नारी चेतना के इतिहास पर आद्योपान्त दृष्टिपात करने पर इस बात पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि लोकगीतों में मुक्तिकामी चेतना किस रूप में है और कितनी मात्रा में हैं तमाम लोकसाहित्य के विद्वानों से लोकगीतों में स्त्री की दारूण दशा पर बात करने पर उनकी भौंहे तन जाती है, चेहरे का रूप–रंग विकृत सा हो जाता है और बोलते है लोकगीतों में विमर्श वह भी स्त्री विमर्श लोग न जाने कहाँ–कहाँ और क्या–क्या ढूंढते रहते हैं। उनके नजरीये से देखा जाए तो लोकगीतों में स्त्री के जीवन में सब कुछ हरा–भरा ही नजर आता है। ऐसे लोग स्त्री का सर्वस्व पुरूष में ही देखने के आदी हैं। वे सब परंपरागत रूढ़ियों के शिकार है, वे सब पुरूषों द्वारा बनायी गई स्त्री की जड़ छवि के पक्षधर है जिनकी माने तो स्त्री का अपना कुछ नहीं है पता नहीं उनके अंदर धड़कने वाला दिल भी अपना है या नहीं। इन सब के विपरीत मैं यह मानता हूँ कि स्त्री भी पुरूष की भाँति एक मनुष्य है उसके भी अपने राग–विराग, सुख–दुख है, उसका भी अपना स्वाभिमान है जब की अहम यह मान बैठा है स्त्री मात्र मान, सहमति और स्वीकृति ही जानती है; असहमति और विरोध के इलाके में प्रवेश करना उसका काम नहीं है। तब सवाल यह उठता है कि क्या असहमति और विरोध का अधिकार केवल पुरूषों को मिला है?

स्त्री के अकेलेपन को खासतौर पर बेमेल विवाह के कारण उसकी एकांतिक यौवन अतृप्ति को कुछ लोकगीतों में ऐसी सुघर अभिव्यक्ति मिली है। उसकी तुलना के लिए समुचे भारतीय साहित्य में दो–तीन उदाहरण मिल सकते है। पहला वाल्मीकि, दूसरा कालीदास और तीसरा भवभूति। शकुन्तला और सीता की आकुल चित्त दशा को जिस मर्मस्पर्शी करूणा से हमारे इन पूर्वज कवियों ने देखा है उसकी दुर्लभ झलक भोजपुरी के कुछ लोकगीतों के गायन में मिल जाएगी। यकीन मानिये लोकगीतों को सुनते हुए स्त्री को यौवन पीड़ा के बहाने उसके शोषण का पूरा संसार खुल जाता है और हमारी सामाजिकता और मनुष्यता सवालों के कटघरे में खड़ी दिखायी पड़ती है। यह समाज और व्यवस्था तुम्हारी ही बनायी हुई है जिसने तुम्हारे जैसे ही एक व्यक्ति को मर्यादा, इज्जत–आबरू और सुचिता के जाल में फँसाकर निरंतर प्रताड़ित किया जा रहा है। वहाँ सम्भोग को आतुर कोई स्त्री नहीं है हमारी यह गौरवशाली समाज व्यवस्था ही नग्न होती है, जिसने मनुष्य की चिर संगिनी को गुलामों से भी बदतर जीवन स्थितियों में साजिशन कैद कर रखा है। यह लोकगीतों के गायन का उजला और प्रगतिशील पक्ष है। धंधेबाजो के मुनाफाखोर हवस ने प्रेम, विवाह, नैतिकता के जो मानदण्ड तय किए हैं जो सरासर गलत, घृणित और निंदनीय है। लोकगीतों में उन स्त्रियों को जो लोग पलट कर जवाब देते हुए देखना चाहते है वे किसी रचना में जमाने की राह से आने की अहमियत को नही समझना चाहते।

संदर्भ–सूची :–

1. सं0 डॉ.एम. फ़ीरोज अहमत/डॉ रागुफ्ता नियाज, नारी विमर्शः दशा और दिशा, पृष्ट–113।
2. डॉ कुबेर मिश्र, मॉरिशस के भोजपुरी लोकगीत, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, पृ0–140।
3. डॉ कुबेर मिश्र, मॉरिशस के भोजपुरी लोकगीत, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, पृ0–151।
4. प्रवेश तिवारी, बघेली प्रेम गीतों में सामाजिक चेतना, मड़ई पत्रिक, 2004 पृ0 सं0–115।
5. प्रवेश तिवारी, बघेली प्रेम गीतों में सामाजिक चेतना, मड़ई पत्रिक, 2004 पृ0 सं0–113।
6. इण्टरनेट से उद्धृत।
7. सं0 विद्यानिवास मिश्र, वाचिक कविताः भोजपुरी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2015 पृ0 85।
8. उद्धृत डॉ पूनम/सुधाकर भोजपुरी लोकगीतःएक अध्ययन पृ0 84–85।
9. उद्धृत डॉ पूनम/सुधाकर भोजपुरी लोकगीतःएक अध्ययन पृ0–28।

लोक-संस्कृति एवं उसकी परम्पराएँ

डॉ. विश्वनाथ वर्मा*
प्रो. उदयन मिश्र**

संस्कृति वह प्रक्रिया है, जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है। इस निष्पन्न व्यक्तित्व के द्वारा लोगों को जीवन जगत् के प्रति एक अभिनव दृष्टिकोण मिलता है। कवि इस अभिनव दृष्टिकोण के साथ अपनी नैसर्गिक प्रतिभा का सामंजस्य करके सांस्कृतिक मान्यताओं का मूल्यांकन करते हुए उनकी उपादेयता और हेयता प्रतिपादित करता है।[1] वह प्रकृति के सत्पक्ष का समर्थन करते हुए उसे सर्वजन ग्राह्य बनाता है।

भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा गुण यह रहा है कि उसमें अपने आपको कायम रखने की अद्‌भुत शक्ति अनादि काल से विद्यमान रही है। संसार के अनेक प्राचीन देशों का नाम लिया जा सकता है, जैसे मिस्र, यूनान, चीन, इटली आदि; किन्तु इन देशों का आमूल परिवर्तन हो चुका है। मिस्र की पिरामिड युगीन संस्कृति का वर्तमान मिस्र में नामोंनिशान भी नहीं है। इसी प्रकार अन्य देशों की स्थिति भी है। किन्तु भारत की स्थिति इनसे सर्वथा भिन्न है। भारतीय धर्म और समाज की परम्परागत चली आने वाली विशिष्ट बातें हजारों वर्षों से अपने उसी रूप में विद्यमान हैं जिस प्रकार हजारों वर्ष पहले कुम्भ स्नान हुआ करता था, वह आज भी उसी रूप में चल रहा है। चारों धाम की तीर्थयात्रा के महत्व में भी कोई कमी नहीं आयी है। यहाँ तक कि अनेक सामाजिक क्रिया कलाप भी ज्यों के त्यों चले आ रहे हैं।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। 'संस्कृति ' शब्द सम् + कृति है। इस शब्द का मूल 'कृ' धातु में है। वैयाकरण 'संस्कृति' शब्द का उद्‌गम सम् + कृ से भूषण अर्थ में 'सुट्' आगम पूर्वक 'क्तिन्' प्रत्यय से सिद्ध करते हैं। इस दृष्टिकोण से 'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ समप्रकार अथवा भलीप्रकार किया जाने वाला व्यवहार अथवा क्रिया है। जो परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है। संस्कृति शब्द को संस्कार से भी जोड़ा जाता है। इस सन्दर्भ में इसे परिष्कार माना जाता है। अंग्रेजी भाषा में संस्कृति के लिए culture (कल्चर) शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो लैटिन भाषा के cultura और colore से निकला है। इन दोनों शब्दों का अर्थ क्रमशः उत्पादन और परिष्कार है। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में संस्कृति का अर्थ बताते हुए कहा गया है– The training and refinement of mind, tastes and manners; the condition of being thus trained and refined; the intellectual side of civilization; the acquainting ourselves with the best. डॉ.राधाकृष्णन् के अनुसार, ''संस्कृति... विवके बुद्धि का, जीवन को भलीप्रकार जान लेने का नाम है।''[2] डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी मानव की युग–युग की साधना को ही संस्कृति मानते हैं।'' मनुष्य की श्रेष्ठ साधनायें ही संस्कृति है।''[3] डॉ.बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार, ''संस्कृति है मानव जीवन के विचार, आचार का संशुद्धीकरण अथवा परिमार्जन। वह है मानव जीवन की सजी– सँवरी हुई अन्तः स्थिति। वह है मानव समाज की परिमार्जित मति, रूचि और प्रवृत्ति पुंज का नाम''।[4]

संस्कृति में वही संस्कृति स्थायी रह सकती है, जिसमें आदान–प्रदान की क्रिया–प्रक्रिया हो। हम इस मत का प्रतिपादन नहीं कर सकते कि भारतीय संस्कृति ही सर्वश्रेष्ठ रही है,बाकी नगण्य रही हैं; हमारा तो यह मानना है कि कौन सी वह चीज थी जो भारत को विदेशों में सम्मान के साथ ले गयी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत ने दूसरों पर अपने विचारों को लादने के लिए कोई बर्बर संगठन नहीं बनाया और न तलवार के जोर से अपनी बात मनवाने के लिए किसी देश या जाति पर आक्रमण ही किया। भारत

*** एसोसि प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, हरिश्चन्द्र पी.जी. कालेज वाराणसी।**
****प्राचार्य, लालबहादुर शास्त्री महाविद्यालय, दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली।**

के उदार–विचार, उसके सामयिक दृष्टिकोण और चिन्तन की गहरी जिज्ञासा ने ही दूसरे देशों को प्रेमपाश में जकड़ा था।

वेद को 'श्रुति' कहा जाता है। श्रुति का अर्थ सुनना है। गुरू–परम्परयाऽनुश्रुयते इत्यानुश्रविकाः अर्थात् गुरू–परम्परा से ही जो सुना जाता है,उसी को श्रुति कहते हैं।[5] लोक में वाचिक परम्परा का स्थान श्रुति के समकक्ष है। लोक की वाचिक परम्परा का अवदान वेद है। लोक में वाचिक परम्परा का निर्वाह एक कलाकार से दूसरे कलाकार तक, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक, एक ओठ से दूसरे ओठ तक आज भी देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया की परम्परा का निर्वाह आज भी वेदपाठियों में देखा जा सकता हैं। लोक संस्कृति की परम्परा की निरन्तरता और उसकी लोक व्यापी ऊर्जा का आभास वेदों से होता हे। वेदों ने तत्कालीन सामाजिक जीवन की बहुत सी बातें, संस्कार व्यवहार, अनुष्ठान, विश्वास और सबसे प्रमुख समाज के ढाँचे को स्वीकार किया, जो बाद में वर्णाश्रम में प्रतिष्ठित किया गया। लोक में प्रचलित गुरू–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरूकुल शिक्षा पद्धति को ग्रहण किया। शिक्षा का मुल उद्देश्य उत्तरोत्तर लोक जीवन में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की ओर अग्रसर होना है, इसे वेदों ने ज्यों का त्यों प्रतिपादित किया। इन्द्रिय संयम की शिक्षा का मूलमंत्र जो लोक संस्कृति का हिस्सा था, उसे वैदिक संस्कृति के आचरण में शामिल किया गया। लोक संस्कृति में प्रचलित लोक धर्म दर्शन की धारणाओं का परिष्कार कर वेदों में सायुज्य प्रस्तुत किया गया। विवाह में गाये जाने वाले लोकगीतों का वेदों अनेक जगह उल्लेख आया है। ऋग्वेद में ऐसे गीतों के लिए ''गाथा'' और गाने वाले के लिए ''गाथिन'' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[6] वेदों में शक्ति पूजा का प्रावधान लोक संस्कृति की ही देन है। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि वेदों ने लोक जीवन कह उन सभी चीजों को ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं की, कि जो मनुष्य को श्रेष्ठता की ओर ले जाने में सहायक होती थी।

लोक और संस्कृति दोनों व्यापक संज्ञा है। लोक और संस्कृति को विखंडित करके नहीं देखा जा सकता है। फिर भी दोनों के अर्थ और क्षेत्र को समझ लेने में कोई बुराई नहीं है।

लोक का साधारण प्रचलित अर्थ है 'संसार'। वामन शिवराम आप्टे कृत संस्कृत –हिन्दी कोश में लोक को ''लोक्यतेऽसौ''[7] कहा गया है जो लोक शब्द में 'धञ्' प्रत्यय के योग से बना है। जिसका अर्थ है दुनिया, संसार। अंग्रेजी में इसे फोक (folk) भी कहा जाता है। जिसका अर्थ है जनसमूह, जनसाधारण, लोक अथवा लोग आदि।[8] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''लोक शब्द का अर्थ जनपद अथवा ग्राम नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियॉ नहीं है; ये लोग अकृत्रिम और सरल जीवन व्यतीत करते हैं।''[9] रघुवंश महाकाव्यम्[10] में लोक के विषय में कहा गया है कि ''आकृष्ट लीलान् नरलोक पालान्''। अर्थात् लोक का तात्पर्य नर–लोक से है। वहीं दूसी ओर इसे ''क्षितिपाल लोक''[11], लोकापवाद[12], लोकाचार अर्थात् सामान्य प्रचलन या चलन, अथवा लोक व्यवहार के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार जो कुछ भी दृश्यमान जगत् के अलिखित अर्थात् परम्परा एवं मौखिक रूप से चले आ रहे रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन, मौखिक आचार–विचार,पूजा–विश्वास, परम्पराएँ, धार्मिक एवं सामाजिक कृत्य एवं विश्वास, कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ, गीत, नृत्य, वाद्य, नाटक, लीला आदि बहुआयामी पहलू हैं, वे 'लोक संस्कृति' के अन्तर्गत आते हैं। जो अलिखित होते हुए भी मौलिक हैं। डीह, डिहवार, भूत, ब्रह्म, पिशाच, यक्ष, वीर, नाग आदि लोक संस्कृति के प्रमुख देवता माने जाते हैं। लोक संस्कृति के अन्तर्गत आने वाले लोक धर्म एवं लोक महोत्सवों के आयोजनों के प्रमाण वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, जैन, बौद्ध परम्पराओं के ग्रन्थों से भरे पड़े हैं। अथर्ववेद[13] में इन्द्र, सूर्य, अग्नि, मित्र, वरूण, यम, कुबेर, सबित्र, पूसा, चन्द्र आदि के साथ–साथ यक्ष, गन्धर्व, वृक्ष, समुद्र, पर्वत, नदी, रूद्र, नाग, भूत, राक्षस, पिशाच आदि अनेक लोक देवताओं के अस्तित्व एवं उनकी शक्तियों में आस्था एवं विश्वास तथा उनकी पूजा परम्परा का प्रमाण मिलता है। इस सम्बन्ध में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल[14] का मानना है कि अथर्ववेद में उल्लिखित भूमि, पर्वत, नदी, सरोवर, समुद्र, वृक्ष, वनस्पति, भूत, यक्ष, नाग, राक्षस आदि को आगे चलकर लोक देवता की कोटि में गिनाया जाने लगा। जिनकी लोक परम्परा आज तक निरन्तर चली आ रही है। इन्हीं लोक देवताओं के पूजन की परम्परा बड़े–बड़े आयोजनों द्वारा महोत्सवों के रूप में की जाने लगी, यथा– गिरिमह, धर्नुमह, इन्द्रमह, नदीमह, यक्षमह, स्कन्दमह, रूद्रमह, नागमह, स्तूपमह, भूतमह, बाबनबीर आदि।[15]

'परम्परा' से हमारा तात्पर्य उस धारणा से है जो एक बार समाज के द्वारा अपनाये जाने के बाद लगातार अपनायी जाने वाली प्रक्रिया बन जाती है और जो संस्कृति के एक निश्चित अंग के रूप में दिखलायी पड़ती है। सामाजिक अवधारणा में परम्परा का जन्म मनुष्य अपने विभिन्न अनुभवों को स्थायी रूप देने के लिए दिया करता है। 'कला' संस्कृति का एक अंग है और संस्कृति की अभिव्यक्ति में परम्परा उसका एक निश्चित स्वरूप है। परम्परा विकास सामाजिक दर्शन और मूल्यों के सहारे होता है। प्रत्येक कला में अनुकृति के सृजन के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में से कुछ निश्चित परम्परागत तत्व पाये जाते हैं। इन परम्परागत तत्वों के आधार पर कलाकृति को समझना संभव होता है और जिनके अभाव में कलाकृति को समझना बहुत ही कठिन हो जाता है। परम्परा का एक अंग रीति–रिवाज भी है। रीति– रिवाज संस्कृति के अंग बनकर समाज में निरन्तर व्याप्त हैं। समाज उन्हें अपनी मान्यताओं के साथ लेकर चलता है। रीति का सम्बन्ध सामाजिक संस्कारों से भी होता है और कला पर उसका सीधा प्रभाव पड़ता है। परम्परा पुनरावृत्ति नहीं है क्योंकि परम्पराओं के साथ कला के तत्कालीन स्वरूप में भी क्रमशः अन्तर और परिवर्तन होते रहते हैं।

परम्परा एक ऐसा शब्द है जिसे मनुष्य अपने नित्य बोलचाल में कई बार प्रयोग करता है या जब किसी खास व्यवहार आचरण की बात की जाती है, तब परम्परा की दुहाई दी जाती है। आखिर परम्परा क्या चीज है? मनुष्य जीवन के प्रारम्भिक विकास में ही आचरण के कुछ ऐसे नियमों की सर्जना हुई, जिन्होंने परम्परा का रूप धारण कर लिया। प्रारम्भ में सामूहिक जीवन के कुछ नियम बने और यही नियम इतने प्रीतिकर हो गये कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी उसे सहर्ष अपनाने लगी, यही अपरिहार्य और जीवन को स्फूर्त करने वाले नियम 'परमपरा' कहलायी। मनुष्य ने अपने विकास क्रम के साथ यदि सबसे पहले किसी चीज की सर्जना की है तो वे परम्पराएँ हैं। प्रत्येक समाज, देश में परम्पराओं का अक्षुण्ण भण्डार देखा जा सकता है। परम्पराएँ राजशाही से लेकर एक गरीब की झोपड़ी तक समान रूप से बनती हैं और टूटती है। परम्पराएँ सामूहिक अनुभव की देन हैं। परम्पराओं में पीढ़ियों का ज्ञानानुभव समाहित होता है।

परम्परा लोक संस्कृति का निर्माण करती है। परम्परा में लोक जीवन के बहुमूल्य आशय अनुस्यूत होते हैं। परम्परायें मनुष्य का एक ऊँचा स्तर बनाती है, यही कारण है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपनी जातीय परम्पराओं को बेहद प्यार करता है। परम्परा की पहली शर्त लोक विश्वास है। परम्परायें अच्छी– बुरी हो सकती हैं, रीति–रिवाज भी खोखले हो सकते हैं, लेकिन परम्परा की धारा सदैव बहती रहती है। पुरानी परम्परा की जगह नई परम्परा स्थान लेती चलती है।

इस प्रकार लोक संस्कृति के अन्तर्गत कितने ही त्योहारों, पर्वों, उत्सवों लोक महोत्सवों के साथ–साथ लोकाचार के असंख्य विधि–विधान, लोककथा कहानियाँ, चुटकुले आदि प्रचलित हैं। प्राचीन काल से ही भारत में नागपूजा का प्रचलन रहा है। वैदिक काल से आज तक प्रत्येक प्रान्तों में नागपूजा होती चली आ रही है। जिसे हम लोक संस्कुति या लोकमहोत्सव की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। अथर्ववेद[16] में इन्द्र, सूर्य, अग्नि, मित्र, वरूण, यम, कुबेर, सबित्र, पूसा, चन्द्र आदि के साथ–साथ यक्ष, गन्धर्व, वृक्ष, समुद्र, नदी, नाग, रूद्र, भूत, राक्षस आदि अनेक लोक देवतों के अस्तित्व एवं उनकी शक्तियों में आस्था, विश्वास तथा उनकी पूजा परम्परा का प्रमाण मिलता है। नागपूजा की परम्परा यक्ष पूजा से भी अधिक प्राचीन लगती है। नागों की माता 'सुरसा' पृथ्वी की ही संज्ञा है। ब्राह्मण साहित्य से ज्ञात होता है कि नाग की माता 'कद्रू' पृथ्वी का रूप है।[17] वैदिक समाज में नागपूजा का प्रचलन नहीं था। नाग देवता आर्येत्तर जातियों में पूजित थे। ऋग्वेद में आर्य देवताओं तथा नागों की शत्रुता का उल्लेख मिलता है। इन्द्र ने वृत्र तथा अहिनाग का दर्प– मर्दन किया था।[18] महाभारत से ज्ञात होता है कि राजगृह में नाग मंदिर था। जब कृष्ण–अर्जुन राजगृह पधारे तो उन्होंने मणिनाग की पूजा की थी। महाभारत काल में मगध नागपूजा का प्रसिद्ध केन्द्र था।

आज भी हमारे यहाँ नागपंचमी के दिन नाग की पूजा विधि–विधान से किया जाता है। इसी प्रकार प्राचीन काल में यक्ष पूजा का भी प्रचलन भी अधिक था। इसका सबसे अच्छा उदाहरण महाभारत के वनपर्व[19] में मिलता है। जिसमें सरोवर के जल पीने के लिए यक्ष के प्रश्नों का उत्तर न दे पाने के कारण युधिष्ठिर के चारो भाइयों को यक्ष के कोप का भाजन बनना पड़ा। युधिष्ठिर द्वारा सही उत्तर देने से जल पीने एवं चारो भाइयों की मुक्ति का उल्लेख है। इसी प्रकार पुराण, धर्मशास्त्र, जैन, बौद्धग्रन्थों में भी लोक महोत्सव की जानकारी होती है। बौद्ध साहित्य में भी यक्ष पूजा का उल्लेख मिलता है। महावंश[20] में उल्लेख मिलता है कि राजगृह के लोग

गृहदेवी के रूप में यक्षिणी की पूजा करजे थे और दीवारों पर उसका चित्र भी बनाते थे। बौद्ध धर्म में यही देवी ''हारीति'' के नाम से प्रसिद्ध हुई। यक्षों के स्थान या यक्षभवन प्रायः चैत्य या आयतन कहलाते थे। यक्ष पूजा का पुरातात्विक प्रमाण भरहुत के प्राचीन स्तूप से मिले वेदिका स्तम्भों पर उत्कीर्ण यक्ष मूर्तियों के रूप में पाया जाता है। इसी तरह प्राचीन काल में नदी, वृक्ष, सागर आदि की भी पूजा की जाती थी और आज भी भारतीय जनमानस इन्हें अपना उपास्य मानता है। इसी प्रकार तीर्थों का भी हमारे यहाँ काफी महत्व है।

पुराणों में तीर्थों की अवधारणा व्यापक भारत भाव की स्थापना के लिए ही है। ये तीर्थ सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैले हुए हैं। ये तीर्थ तीन प्रकार के हैं। कुछ तो प्राकृतिक रसस्रोत हैं, चाहे वे पर्वत हों या नदियाँ। पर्वतों की पिता के रूप में और नदियों की माता के रूप में मान्यता है। आदिम तीर्थयात्रा शरीर न करे तो भी मन से, वाणी से प्रतिदिन सात कुल पर्वतों और सात महानदियों का ध्यान कर लें तो भी अपने आप भारत की सम्पूर्णता से जुड़ जाता है। नदियों का ध्यान प्रातः स्नान करते समय किया जाता है और स्थानीय जल में सभी नदियों की भावना की जाती है। ये सात बड़ी नदियाँ हैं– गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, और कावेरी। चार धाम हैं, जो पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर चारों दिशाओं में स्थापित हैं, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका, और बद्रीनाथ। तीसरे प्रकार के तीर्थ हैं–विभिन्न प्रकार के देवपीठ, शक्तिपीठ जो सारे देश में व्याप्त हैं; शिव के द्वादश लिंग सारे देश में फैले हुए हैं। उसी प्रकार तीनों सागरों के मोड़ों पर सागर तीर्थ हैं, नदियों के संगम तीर्थ हैं। प्रत्येक मनोरम प्राकृतिक स्थल, प्रत्येक अरण्य किसी न किसी ऋषि, देवता या अवतार लीला की स्मृति से आलोकित हैं। भारत का स्वभाव है कि कहीं राम के चरण चिन्ह ढूढ़े, कहीं सीता की रसोई के निशान देखें, कहीं युधिष्ठिर के यात्रा के पड़ाव देखें, कहीं शिव के ताण्डव की भूमि देखें, कहीं कृष्ण और कहीं राम की जन्मभूमि की पहचान करें और इन सभी पहचानों के योग से भारत भूमि की पहचान करें।

मनुष्य अपने जीवन कला, संस्कृति और साहित्य पर गर्व करता है। विरासत में मिली मनुष्य की सांस्कृतिक परम्परा का गुणगान प्रायः किया जाता है। लोक की वाचिक परम्परा की समृद्धि विश्व के हर अंचल में पायी जाती है। गीत, संगीत, नृत्य और नाट्य की परम्परायें प्रदर्शनकारी कलाओं के रूप में समाज में प्रतिष्ठित है। परम्परओं के बिना जीवन का कोई पहलू पूरा नहीं हो सकता, जीवन में परम्पराओं का महत्वपूर्ण स्थान है। परम्पराओं का यदि जीवन से निकाल दिया जाय तो जीवनरस निकाले हुए गन्ने के छिलके के समान नीरस हो जायेगा।

सन्दर्भ–सूची :–

1. यत्स्यभावः कविस्तदनुरूपं काव्यम्। काव्य मीमांसा के कविचर्या प्रकरण से।
2. डॉ. राधाकृष्णन्, स्वतन्त्रता और संस्कृति (अनु0 विश्वम्भर त्रिपाठी),पृ0 53।
3. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल(निबन्ध संग्रह), पृ075।
4. डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास योगदान, पृ09।
5. महामहोपाध्याय पं0खिस्ते नारायण जोशी, लोक संस्कृति का आगम मार्ग–सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक से
6. शास्त्री श्री जी0डी0केशरी, सम्मेलन पत्रिकाःलोक संस्कृति अंक, पृ092–93।
7. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ088।
8. डॉ. हरदेव बाहरी, अंग्रेजी–हिन्दी कोश,पृ745।
9. डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रा0 भारत के कलात्मक विनोद, भूमिका।
10. रघुवंश, 6/1
11. वही, 7/3।
12. वही, 14/4।
13. अथर्ववेद, 11/5/1–23, पापमोचन सूक्त।
14. वासुदेव शरण अग्रवाल, प्राचीन भारतीय लोक धर्म पृ07।
15. वही, पृ07 एवं आगे।
16. अथर्ववेद, 11/5/1–23।
17. शतपथ ब्राह्मण, 3/6/2/2/1
18. ऋग्वेद, 1/32।
19. महाभारत, वनपर्व–यक्ष–युधिष्ठिर संबाद।
20. महावंश,12/21।

सांस्कृतिक विमर्श और कोरोना से युद्ध

(भारतीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में)

प्रो. निरंजन कुमार*

कोविड–19 महामारी के संकट से दुनिया ने मानवता के इतिहास में संभवतः सबसे बड़ी त्रासदी झेला है। इस कोरोना वायरस ने आर्थिक रूप से जहाँ विश्व को बहुत पीछे धकेल दिया है वहीं अनेक नई सामाजिक चुनौतियाँ भी संसार के सामने खड़ी हो गई हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य के स्तर पर पर भी कई मोर्चे खुल चुके हैं। लेकिन इस कोविड–19 आपदा का एक सांस्कृतिक पक्ष भी है। क्या है कोरोना संकट का सांस्कृतिक आयाम और भारत की इस संदर्भ में क्या स्थिति है?

मेरी सोच थी कि कोरोना महामारी से मानवता की लड़ाई एक ओर पूरी दुनिया में एक कॉमन (समान) प्रोटोकॉल के आधार पर वैज्ञानिक एवं मेडिकल स्तर पर लड़ी जा रही है, तो दूसरी ओर अलग–अलग देश इस संघर्ष से अपने–अपने विशिष्ट सांस्कृतिक धरातल पर जूझ रहे हैं। इस संदर्भ में मैंने कुछ शोध किया तो पाया कि पिछले साल दुनिया के शीर्षस्थ विश्वविद्यालय अमेरिका के मेसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी में कुछ इसी तरह की एक परिचर्चा हुई थी कि कोरोनो वायरस महामारी से निपटने में अलग–अलग देशों की क्या प्रतिक्रिया रही हैं, और इन प्रतिक्रियाओं में वहाँ की राष्ट्रीय संस्कृति कैसे अभिव्यक्त होती हैं। "व्हेन कल्चर मीट्स कोविड –19" शीर्षक वाली यह परिचर्चा एमआईटी के सेंटर फॉर इंटरनेशनल स्टडीज द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक कार्यक्रम था।

हालाँकि इस परिचर्चा की सीमा यह थी कि इसमें मुख्य रूप से ध्यान इस बात पर केन्द्रित था कि कोरोना को लेकर स्वास्थ्य संबंधित जो प्रोटोकोल हैं– जैसे मास्क पहनना इत्यादि को लेकर विभिन्न देशों के लोगों का रुख किस तरह वहाँ की संस्कृति से प्रभावित रहा है। जैसे कि परिचर्चा में यह रेखांकित किया गया कि चीन में महामारी के दौरान मास्क पहनने के निर्देश का बाकायदा पालन किया गया। इसका कारण बताया गया कि तानाशाही शासन की संस्कृति में किसी तरह की छूट को बर्दाश्त नहीं किया जाता। जबकि लोकतांत्रिक संयुक्त राज्य अमेरिका या यूरोपीय देशों में इन निर्देशों का पालन करवाना उतना आसान नहीं है। किन्तु इस परिचर्चा में इस महत्वपूर्ण बिंदु पर कोई चर्चा नहीं हुई कि किसी राष्ट्रीय संस्कृति के विशिष्ट तत्व कोरोना से लड़ने में किस तरह मददगार साबित हुए। इस परिचर्चा की एक दूसरी प्रमुख सीमा थी कि पूरी चर्चा अमेरिका या कुछ यूरोपीय देशों के अतिरिक्त पूर्वी एशिया के देश चीन, जापान, कोरिया एवं पश्चिमी एशिया के कुछ देशों तक सीमित रही। भारत जैसे प्राचीन संस्कृति पर इस परिचर्चा में कोई उल्लेख नहीं किया गया। इसका कारण परिचर्चा में संभवतः भारतीय विषयों का कोई विशेषज्ञ उपस्थित नहीं था। लेकिन यह बात पूरे कार्यक्रम पर एक प्रश्न चिह्न भी है। एक तरह से पूरे कार्यक्रम की यह एक बड़ी सीमा थी क्योंकि भारतीय सांस्कृतिक तत्वों ने कोरोना से लड़ने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय संदर्भों में विचार करें तो जिस तरह से दुनिया के विभिन्न देशों खासतौर से लोकतान्त्रिक और पारदर्शी राष्ट्रों में कोरोना का प्रकोप हुआ और बड़ी तादाद में लोग काल के गाल समा गए, उस दृष्टि से अपेक्षाकृत कम विकसित और कम सम्पन्न और बहुत कम स्वास्थ्य सेवा ढांचे के बावजूद भारत में अमेरिका, इंग्लैंड, इटली, स्पेन, जर्मनी, जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया और चीन एवं रूस जैसे विकसित देशों के मुकाबले कोरोना के कारण मृत्यु दर बहुत कम रही। जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के 'कोरोना वायरस रिसोर्स सेंटर' द्वारा 20 मई, 2021 तक के "मृत्यु दर विश्लेषण" अध्ययन के आंकड़े यह भी दिखाते हैं भारत के समकक्ष आर्थिक– स्वास्थ्य ढांचा स्तर वाले ब्राज़ील, दक्षिण अफ्रीका, मिश्र आदि में मृत्यु दर तो भारत से दुगुना, तिगुना और पाँच–गुना तक रही।

***हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

आर्थिक और स्वास्थ्य सुविधाओं के पैमाने पर पिछड़ा होने के बावजूद कोरोना के कारण भारत में मृत्यु दर कम होने का एक बहुत बड़ा कारण भारत की विशिष्ट सांस्कृतिक जीवन शैली है। यह सर्वविदित है कि परंपरागत भारतीय खानपान में मसाले का बहुलता से उपयोग होता है। हल्दी, काली मिर्च, जीरा, धनिया, दालचीनी, लौंग, अजवायन, इलायची, सोंठ, मीठी नीम, पुदीना इत्यादि एक आम भारतीय रसोई का अनिवार्य हिस्सा होते हैं। स्वाद के अलावे ये मसाले स्वास्थ्य की दृष्टि से भी गुणकारी होते हैं। यह अनायास नहीं कि भारतीय आर्थिक–स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों और खानपान की विशिष्ट भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखकर भारत सरकार के आयुष मंत्रालय ने घर–घर में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न मसालों और जड़ी–बूटियों के काढ़े के उपयोग का एक 'आधिकारिक सलाह' जारी किया था। इसी तरह हल्दी युक्त दूध का सेवन अथवा 'नाक में तेल डालना' जैसी परंपरागत भारतीय जीवन शैली को लाभकारी मानते हुए इस पर भी आयुष मंत्रालय द्वारा 'एडवाइजरी' जारी की गई। भारत सरकार के इन निर्देशों का कोरोना के हलके प्रभावित रोगियों को जरुर लाभ हुआ है।

यहाँ उल्लेख करना जरुरी होगा कि भारतीय संस्कृति के इन तत्वों को न केवल आयुष मंत्रालय ने उपयोगी बताया बल्कि एलोपैथी चिकित्सा पद्धति ने भी इन तत्वों को अपने प्रोटोकॉल में स्थान दिया। एनसीआर (NCR) के कई सुपर स्पेशिलिटी हॉस्पिटलों ने अन्य एलोपैथिक दवाइयों के अतिरिक्त कोरोना रोगियों को काढ़ा भी पिलवाया। यही नहीं, कोविड निगेटिव होने के बाद स्वास्थ्य लाभ करने और पूर्ण स्वस्थ होने में भी ये क्रियाकलाप अत्यंत सहायक रहे। हालाँकि इसको लेकर कोई अध्ययन– डाटा नही है। लेकिन स्वयं एमआईटी की उपरोक्त परिचर्चा में भी यह स्वीकार गया था कि सांस्कृतिक प्रभाव वास्तविक और महत्वपूर्ण होते हैं, भले ही उन्हें मापना मुश्किल हो। निश्चित रूप से भारतीय संस्कृति के इन तत्वों को लेकर वैज्ञानिक शोध कर पर्याप्त डाटाबेस बनाने की आवश्यकता है। जो न केवल हमारे जीवन और स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होगा, बल्कि इसे पूरी दुनिया में प्रचारित किया जा सकता है, जो भारतीय सॉफ्ट पॉवर को भी बढ़ाएगा। यहाँ बताना जरुरी है कि पूरे दुनिया के विभिन्न देशों, यहाँ तक कि आर्थिक और वैज्ञानिक रूप से उन्नत देशों में रहने वाले भारतीयों की बड़ी तादाद ने भी कोरोना को मात देने के लिए एलोपैथी चिकित्सा के साथ देसी काढ़े, हल्दी दूध और योग–प्राणायाम को भी अपनाया।

योगाचार्य रामदेव द्वारा सुझाए गए प्राचीन भारतीय विद्या योग और प्राणायाम ने भी कोरोना रोगियों की बड़ी मदद की। 'पोस्ट कोविड रिकवरी' में योग–प्राणायाम के महत्व को भारत की एलोपैथी चिकित्सा पद्धति ने भी खासतौर से स्वीकारा है। फेफड़ों को मजबूत करने के साथ साथ योग–प्राणायाम मानसिक अवसाद को भी कम करने में सहायक साबित हुए हैं। कोरोना के कारण भारत में मृत्यु दर कम होने में इन तत्वों की निश्चित रूप से भूमिका रही है। योग प्राणायाम खासतौर से 'अनुलोम–विलोम' और 'भस्त्रिका' ऑक्सीजन स्तर को बनाए रखने में अत्यंत सहायक है। इसके अतिरिक्त यह फेफड़े की शक्ति को भी बढ़ने में बहुत कारगर है, ध्यातव्य है कि कोरोना का फेफड़े पर बहुत अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। योग–प्राणायाम की संसार में पहले भी चर्चा रही है। लेकिन इस कोविड काल के संदर्भ में मेरा सुझाव है कि कोरोना से निपटने के लिए एलोपैथी के एक सहायक उपाय के रूप में पूरी दुनिया में इसे प्रचारित करने की भी जरूरत है। इसके लिए दुनिया के विभिन्न देशों में अवस्थित भारतीय दूतावास की मदद ली जानी चाहिए, जो स्थानीय संस्थाओं से समन्वय कर इसे प्रचारित कर सकते हैं। यह भारत के सॉफ्ट पावर के बढ़ने में और भी मदद करेगा।

दरअसल कोरोना या इन जैसे अन्य खतरनाक वायरसों का मेडिकल साइंस में कोई इलाज नहीं है। अगर कोई इलाज है, तो वह है मनुष्य की अपनी प्रतिरोधक क्षमता। इस प्रतिरोधक क्षमता को भी बढाने में योगगुरु रामदेव द्वारा प्रचारित तथा हर गाँव और नगर में पाई जाने वाली गिलोय या गुडूची आदि को भी लोगों ने खूब अपनाया। इसके अतिरिक्त अश्वगंधा, आँवला और अन्य जड़ी–बूटियों के अलावा लगभग हर भारतीय हिन्दू के यहाँ पूजा के प्रसाद के रूप में मौजूद तुलसी अत्यंत प्रभावकारी है। अनेक भारतीय डॉक्टर्स और स्वास्थ्य विशेषज्ञ 'इम्युनिटी बूस्टर' के रूप में इन चीजों का महत्व स्वीकार कर चुके हैं। हालाँकि इस संदर्भ में भी बाकायदा आधुनिक शोध करके वैज्ञानिक डाटा के साथ इसे दुनिया के सामने प्रस्तुत किए जाने

की आवश्यकता है। ताकि इसे एक प्रोटोकॉल के रूप में अपनाया जा सके। इस चीज की आवश्यकता इसलिए और भी ज्यादा है कि आने वाले समय में चीन जैसे देशों से दुनिया को फिर से नए जैविक आक्रमण का खतरा है, जिसमें अनेक नए वायरसों के माध्यम से हमला किया जा सकता है। हालिया मीडिया रिपोर्टों के अनुसार वैज्ञानिकों ने चीन के कुख्यात वेट मार्किट में 18 नए खतरनाक वायरसों का पता लगाया है। किसी नए वायरस का तत्काल इलाज न उपलब्ध होने की स्थिति में प्रतिरोधक क्षमता ही प्रमुख आरम्भिक उपाय होगी।

कोरोना आदि वायरस और बैक्ट्रिया से लड़ने में भारतीय संस्कृति का एक अन्य पक्ष सहायक हो सकता है। हमारे वेद–शास्त्रों में उल्लिखित है कि यज्ञ का धुआं वातावरण को शुद्ध करता है और रोगाणुओं एवं विषाणुओं को ख़तम या दूर करता है। मेरे एक मित्र हैं जो इंडियन आर्मी में सीनियर डॉक्टर हैं। उनका कहना है कि घर में हवन का धुआँ करने से वातावरण कोरोना वायरस से मुक्त हो सकता है। लगभग यही बात दिल्ली स्थित भारत के एक नामीगिरामी एलोपैथिक अस्पताल में कार्यरत वरिष्ठ आयुर्वेदिक चिकित्सक ने भी एक वीडियो जारी करके कहा था। उन्होंने गुग्गुल, कपूर, धूना आदि का हवन या धुआं करने पर जोर दिया। उनके अनुसार यह कोरोना वायरस से वातावरण को मुक्त करने में मदद करेगा। जहाँ शोध में करोड़ों– अरबों रूपये खर्च हो जाते हैं, वहाँ कुछ लाख रूपये खर्च कर इस विषय पर भी शोध कर इसकी प्रामाणिकता को सामने लाने की जरुरत है। अगर इस धुएँ के सकारात्मक परिणाम आते हैं तो वायरस से मुकाबला करने में यह एक बड़ा हथियार साबित होगा।

प्राचीन भारतीय संस्कृति कितनी वैज्ञानिक और स्वास्थ्य के अनुकूल थी, और आज भी विभिन्न वायरसों से लड़ने में सक्षम है, इसका एक अन्य उदाहरण है कुछ समय पहले एक प्रतिष्ठित अंग्रेजी राष्ट्रीय समाचारपत्र में छपा एक आलेख। जिसमें बताया गया कि कनाडा और पश्चिम के अन्य देशों ने 20 साल के रिसर्च के बाद पाया है कि श्वांस छोड़ते समय "हमिंग" की ध्वनि करने से नाइट्रिक ऑक्साइड निकलता है, जो नाक में पहुँच गए कोरोना और अन्य वायरसों को मारता है। "हमिंग" करना और कुछ नहीं, ॐ जैसी ध्वनि निकालना ही है। इस आलेख में उल्लिखित है कि भारतीय प्राणायाम "भ्रामरी" और योगियों द्वारा ॐ मंत्र का जाप "हमिंग" का ही पर्याय है। भारतीय विद्या के प्रति नकारात्मक भाव रखने वाले पश्चिमपरस्तों और तथाकथित सेक्युलरिस्टों की जानकारी के लिए बताना जरुरी है कि यह आलेख दो एलोपैथिक डॉक्टरों और इंडियन काउंसिल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च के पूर्व डाइरेक्टर ने संयुक्त रूप से लिखा है। यह भी कि इन तीन लोगों में से एक डॉ। इरमिन वान डाइकेन अमेरिका में शिक्षित अमेरिकी ईसाई हैं।

इसी तरह से 'अमेरिकन जर्नल ऑफ इमरजेंसी मेडिसिन' के जनवरी, 2021 अंक में एक रिसर्च पेपर छपा है जिसमें तीन मेडिकल एक्सपर्ट्स ने हल्के से लेकर मध्यम कोविड–19 रोगियों के इलाज के लिए इंसेंटिव स्पाइरोमीटर (incentive spirometer) उपयोगी माना है, जो एक तरफ फेफड़ों को मजबूत करेगा और दूसरी तरफ म्यूकस (बलगम या कफ) निर्माण को रोकेगा, जिससे निमोनिया होने की संभावना कम होगी। इंसेंटिव स्पाइरोमीटर गहरी साँस लेकर जोर से फूँकने का अभ्यास कराने वाला यंत्र है। यहाँ बताना जरुरी है कि भारतीय संस्कृति में शंख बजाने की जो परम्परा रही थी, वह कुछ–कुछ इसी तरह की चीज है। यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि मैकाले के पूर्व से लेकर आजादी के 70 सालों के बाद भी हम अपनी अधिकतर ज्ञान–परम्परा और गौरवशाली वैज्ञानिक संस्कृति से अनभिज्ञ हैं। बहुत जरुरी है कि एनसीईआरटी (NCERT) व अन्य स्कूली पाठ्यक्रमों में इन सांस्कृतिक विषयों का कम से कम आरंभिक परिचय कराया जाए।

कोरोना या ऐसे अन्य खतरनाक वायरसों से लड़ाई तो वैज्ञानिक और मेडिकल मोर्चे पर ही होगी, लेकिन इसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति के वैज्ञानिक तत्वों को शामिल करके इनको मात देने में बड़ी मदद मिलेगी, इसमें संदेह नहीं।

बौद्ध धर्म की पुनर्स्थापना में अनागारिक धर्मपाल का योगदान

डॉ. अमिताभ तिवारी*

सारांश :–छठीं शताब्दी ईसापूर्व भारत में धार्मिक आन्दोलन का काल था। यहाँ जटिल कर्मकांड के विरोध में अनेक मत आरम्भ हुए जिनमें से एक भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध मत था। अपनी तार्किकता और मध्यममार्गी विचारधारा के कारण इस मत की लोकप्रियता बढ़ती गई और कालान्तर में अनेक शासकों द्वारा इसे राजधर्म बना दिए जाने के बाद इसका प्रभाव बढ़ गया। यह धर्म भारत की सीमा से बाहर निकलकर दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों तक पहुँच गया। धीरे–धीरे इस धर्म में कुछ बुराइयों का प्रवेश हुआ और पुराना वैदिक धर्म अपने को पुनर्स्थापित करने के लिए प्रयास करता रहा। भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना ने बौद्ध मतालम्बियों, मठों और शिक्षण संस्थानों को नष्ट कर दिया। बौद्ध धर्म अपने उद्‌गम वाले देश से विलुप्तप्राय हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी में श्रीलंका में जन्मे डेविड हेववितरना, जिन्होंने बाद में अपना नाम अनागारिक धर्मपाल रखा, ने भारत में बौद्ध स्थलों की गरिमा को पुनः स्थापित करने और बौद्ध धर्म की पुनर्स्थापना के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

बौद्ध धर्म का जन्म भारत में हुआ था और शीघ्र ही इस धर्म को व्यापक लोकप्रियता मिल गयी और यह भारत की सीमा से बाहर निकल विश्व के अन्य देशों में पहुँच गया था। लेकिन वर्तमान भारतीय परिदृश्य में यह अपने जन्मस्थान में अल्पसंख्यक धर्म के रूप में हो गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में बौद्ध मतावलम्बियों की संख्या 84,42, 272 थी, इनमें से 65,31,200 बौद्ध महाराष्ट्र में थे। महाराष्ट्र में इनका प्रतिशत सर्वाधिक (कुल संख्या का लगभग 77%) होने का कारण बाबा साहब अम्बेडकर के नेतृत्व में हुआ धर्म परिवर्तन है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ये अपने को अम्बेडकरवादी या नवबौद्ध कहते हैं। भारत से अधिक बौद्ध अनुयायी दूसरे देशों में हैं– श्रीलंका में इनकी संख्या कुल जनसंख्या की लगभग 70%, म्यॉमार में 85%, थाईलैण्ड में 95%, लाओस में 90%, कम्बोडिया में 95%, मलेशिया में 20% इत्यादि। पारम्परिक रूप से भारतीय बौद्ध परिवारों पर विचार करने पर हम पाते हैं कि इस विशाल देश के कुछ हिस्से में ही यह पारंपरिक रूप से रह रहे हैं। यह स्थान है जम्मू कश्मीर का लद्‌दाख, हिमाचल प्रदेश का लाहुल और स्पीती, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश आदि।

जटिल कर्मकांड के विरोध में भगवान बुद्ध ने छठीं शताब्दी ईसापूर्व में बौद्ध धर्म की नींव डाली थी जो शीघ्र ही एक आन्दोलन बन गया जो अपने तार्किकता और मध्यममार्गी विचारों के कारण व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ। मौर्यवंश के सम्राट अशोक ने इस धर्म के प्रचार–प्रसार में अपना जीवन लगा दिया। अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को उसने भारत की सीमा के बाहर इसके प्रसार की जिम्मेदारी दी जिससे यह धर्म भारत की सीमा के बाहर निकल कर दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों में पहुँच गया। मौर्य शासन के बाद काफी समय तक प्राचीन वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म सह–अस्तित्व में रहे। कुषाण वंश के कनिष्क ने पुनः बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा में वृद्धि की। गुप्तकाल में वैदिक धर्म का पुनः विकास होने लगा तो हर्षवर्द्धन के शासनकाल में पुनः बौर्द्धधर्म ने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। इस तरह के उतार–चढ़ाव से बौद्धधर्म और वैदिक धर्म के बीच प्रतिस्पर्धा चलती रही।

अनेक विद्वानों का यह मानना है कि वैदिक धर्म के अनुयायी बौद्धधर्म को पल्लवित और पुष्पित होते नहीं देख पा रहे थे और उन्होंने लगातार इस पर अपने आक्रमण जारी रखे। कामरूप के भास्करवर्मा ने नालन्दा पर आक्रमण किया, नागार्जुन के शिष्य अरियदेव की धर्म पर शास्त्रार्थ के दौरान ब्राह्मणों को पराजित करने पर हत्या कर दी गयी, शशांक ने कुशीनगर से बौद्ध भिक्षुओं को निकाल बाहर किया और बोधगया के बोधिवृक्ष को कटवा कर वहाँ शिव मन्दिर की स्थापना की– ये सभी बौद्ध धर्म पर आक्रमण के लिए किए गए कार्य थे। बौद्ध

***एसोसिएट प्रोफेसर,, कन्हैयालाल बसंतलाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मीरजापुर।**

विद्वानों का विचार है कि यद्यपि हर्ष ने बौद्धधर्म को बढ़ावा देने की नीति अपनायी पर उसकी सहानुभूति वैदिक धर्म या कहा जाय ब्राह्मण धर्म के प्रति बनी रही जिसका परिणाम यह हुआ के विशेष रूप से उत्तर भारत में ब्राह्मण धर्म की अनेक बातें बौद्धधर्म से मिल गयीं। इन विद्वानों ने ब्राह्मण धर्म पर यह आरोप लगाया कि उसने सुनियोजित तरीके से बौद्धधर्म पर हमला बोला और बुद्ध को भगवान् विष्णु का अवतार घोषित कर दिया। पुराणों में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जहाँ अग्नि पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण और मत्स्य पुराण बुद्ध के विरोधी दिखते हैं वही गरुण पुराण के विचारों में परिवर्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 1948 में अपना ग्रंथ 'हू वेअर शूद्राज' प्रकाशित कराया जिसमें उन्होंने बौद्ध धर्म पर प्रहार के इस प्रयास पर विस्तृत प्रकाश डाला। उनके अनुसार जब शंकराचार्य के प्रयास से बड़ी संख्या में बौद्धों ने ब्राह्मणों द्वारा नियंत्रित हिन्दू धर्म पुनः स्वीकार कर लिया तब भी बौद्धों का एक ऐसा वर्ग बचा रह गया था जो धर्म परिवर्तन के लिए तैयार नहीं था। उस वर्ग के साथ उपेक्षा का व्यवहार किया गया ओर उसके ऊपर अस्पृश्यता लाद दी गयी। डॉ. अम्बेडकर ने अपने विचारों की पुष्टि के लिए पुष्ट साक्ष्य नहीं दिए अतः आधुनिक शोधकर्ता इस अवधारणा को स्वीकार नहीं करते हैं।

भारत पर मुस्मिल आक्रान्ताओं के आक्रमण ने यहाँ की व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया। उन्होंने बौद्ध धर्म को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाया। वे क्रूर थे और संस्कृति तथा शिक्षा के विनाशक भी थे। मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के हिंसक आचरण का भारत पर भयंकर दुष्प्रभाव पड़ा। वे आक्रमणकारी तलवार के बल पर इस्लाम को फैलाने का कार्य करते थे। हिन्दूओं और बौद्धों, दोनों के धार्मिक स्थलों का विध्वंस किया गया और उन मतावलम्बियों का कत्लेआम किया गया। बख्तियार खलजी ने बौद्ध मठों और नालन्दा विश्वविद्यालय का विध्वंस करके बौद्धों का सर्वाधिक नुकसान किया। मंगोलों द्वारा इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेने के बाद बौद्धों के लिए यहाँ अपना अस्तित्व बचाए रखना भी सम्भव नहीं रह गया जिसका परिणाय यह हुआ कि बौद्ध धर्म और बौद्ध ग्रंथ अपने उद्गम वाले देश से विलुप्तप्राय हो गए। मध्यकाल मुस्लिम आक्रांताओं की क्रूरता का काल था।

आधुनिक काल में भारत में बौद्ध धर्म की पुनर्स्थापना के प्रयास हुए जिससे अपने मूल देश में यह धर्म पुनः प्रतिष्ठित होने में सफल हुआ। अनेक व्यक्तियों ने इस क्षेत्र में कार्य किया परन्तु महत्वपूर्ण कार्य करने का श्रेय भिक्षु अनागारिक धर्मपाल को है। श्रीलंका में जन्में भिक्षु अनागारिक धर्मपाल का असली नाम डेविड हेववितरना था। उनकी शिक्षा ईसाई मिशनरी में हुयी थी। सन् 1880 में अमेरिकन बुद्धिस्ट थियोसोफिस्ट कर्नल एच.एस. ऑलकाट बौद्ध धर्म के पुनरूत्थान के लिए श्रीलंका गए थे। वहाँ युवा डेविड उनके संपर्क में आए। ऑलकाट महोदय के साथ उन्होंने श्रीलंका के सुदूरवर्ती क्षेत्रों का भ्रमण किया और उस दौरान उन्होंने बौद्धधर्म और उनके अनुयायियों की दुर्दशा देखी। उनका मन द्रवित हो गया और उन्होंने बौद्ध धर्म के पुनरूत्थान हेतु कार्य करने का निर्णय लिया। 1886 में अपने माता–पिता की अनुमति प्राप्त कर उन्होंने सन्यास ग्रहण किया और जनता की सेवा में अपना जीवन लगाने का निश्चय किया। उनको नया नाम दिया गया– भिक्षु अनागारिक धर्मपाल।

भिक्षु अनागारिक धर्मपाल ने 1886 से 1890 तक बुद्धिस्ट थियोसोफिकल सोसायटी में काम किया। जनवरी 1891 में वह सारनाथ आए, जिसे इसिपतन भी कहा जाता था। वह बुद्ध की बोधि प्राप्ति स्थल बोधगया भी गए। बोधगया के पवित्र मन्दिर की दुर्दशा देखकर वे विचलित हो गये और उन्होंने उस पवित्र स्थान के उद्धार के लिए अपना जीवन समर्पित करने का प्रण किया। उस स्थान के आसपास रहने वाले भी उस पवित्र स्थान की महत्ता से अपरिचित थे। उन्होंने विश्व के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले बौद्धों को पत्र लिखकर भारत में बौद्ध स्थलों की दुर्दशा से उन्हें अवगत कराया।

उन्होंने श्रीलंका में 31 मई 1891 में महाबोधि सोसायटी की स्थापना की जिसका हेड आफिस कोलम्बो में था। बौद्ध धर्म के पश्चिम में प्रचार–प्रसार और अनेक सामाजिक कार्यों के साथ इस सोसायटी का प्रधान कार्य बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक केन्द्र भारत में इस धर्म का पुनरूत्थान तथा बोधगया की गरिमा को वापस स्थापित करना था। कुछ समय के बाद महाबोधि सोसायटी की कलकत्ता में स्थापना की गयी। धर्मपाल जी पूरे विश्व में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को पहुँचाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। सितम्बर 1893 में शिकागो में विश्व धर्म संसद का आयोजन हुआ जहाँ अनागारिक धर्मपाल थेरवाद पर अपना भाषण देने के लिए आमन्त्रित किए गए। बौद्ध दर्शन

पर अपने सारगर्भित भाषण से उन्होंने वहाँ उपस्थित समस्त विद्वानों को प्रभावित किया। उनके विचारों की महानता वहाँ धटित एक घटना से परिलक्षित होती है। उस धर्म संसद स्वामी विवेकानन्द जी भी गए थे। वेदांत के विद्वान विवेकानन्द जी को वहाँ बोलने का अवसर नहीं दिया जा रहा थो। भिक्षु धर्मपाल जी ने आयोजकों से अनुरोध किया कि उन्हें आवंटित समय में से स्वामी विवेकानन्द जी को कुछ समय दिया जाए जिससे वह अपने विचार वहाँ रख सकें। स्वामी जी को धर्मपाल जी के समय में से तीन मिनट का समय दिया गया और स्वामी विवेकानन्द ने जो भाषण दिया उसने इतिहास रच दिया। भिक्षु धर्मपाल जी ने वहाँ यह दिखा दिया कि भारत की धरती कितनी महान है जहाँ सभी विचारधाराएँ सहअस्तित्व के साथ पल्लवित और पुष्पित हो सकती हैं।

भारत में बौद्ध स्थलों को उनकी गरिमा वापस दिलाने का काम आसान नहीं था। पग–पग पर उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा। बोधगया के महाबोधि मंदिर को पुनः गरिमा प्रदान करने में अनेक समस्याएँ थी क्योंकि वहाँ शिव मन्दिर का निर्माण हो चुका था और उस पर महन्त का कब्जा था। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण स्थल कुशीनगर की गरिमा वापस दिलाना तथा उनकी प्रथम उपदेश स्थली सारनाथ को दर्शनीय बनाना भी उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। भिक्षु धर्मपाल अपने उद्देश्य की पूर्ति में जी जान से लग गए। उन्होंने महाबोधि सोसायटी की शाखा सारनाथ में भी खोली। भिक्षु धर्मपाल जी मनोयोग से अपने कार्य में लगे रहे। ब्रिटिश शासन के दौरान उनका संघर्ष चलता रहा। प्रथम विश्वयुद्ध के दोरान उन्हें पाँच वर्षों के लिए कलकत्ता में नजरबंद कर दिया गया पर वे अविचलित रहे।

उन्होंने महाबोधि सोसायटी की तरफ से एक सिविल सूट दायर किया जिसमें महाबोधि विहार सहित चार प्रसिद्ध बौद्ध स्थलों को बौद्धों को हस्तांतरित करने की मांग की गयी। 13 जुलाई 1931 को अनागारिक धर्मपाल जी ने प्रवज्या ली, 16 जनवरी 1933 को उनकी प्रवज्या पूर्ण हुई और उन्होंने उपसम्पदा ग्रहण की। उनका नया नाम पड़ा भिक्षु देवमित्र धर्मपाल। उनके निरन्तर प्रयास के कारण 1934 में सारनाथ में मूलगंध कुटी विहार की स्थापना हुयी। यहाँ बौद्धधर्मावलम्बियों का आवागमन शुरू हुआ। बौद्ध धर्म के प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन का केन्द्र सारनाथ बौद्धों के लिए धर्मस्थली बन गया। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण का स्थल कुशीनगर भी बौद्धों के लिए दर्शनीय स्थल बन गया। सबसे बड़ी कठिनाई बोधगया के महाबोधि मंदिर को पुनः गरिमा प्रदान करने में थी जिसका हल 1947 के बाद निकल सका वह भी भिक्षु धर्मपाल जी की मृत्यु के कई वर्षों बाद। 6 मई 1955 को तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम राजेन्द्र प्रसाद जी ने महाबोधि मंदिर पुनः बौद्धों को सौंप दिया, वह दिन वैशाख पूर्णिमा का था। यह भिक्षु धर्मपाल जी के निरन्तर प्रयासों का परिणाम था। उस मन्दिर की व्यवस्था देखने की जिम्मेदारी एक समिति को दी गयी जिसमें तीन हिन्दू और तीन बौद्ध सदस्य का प्रावधान किया गया तथा गया जिले के डी.एम. को उसका पदेन अध्यक्ष बनाया गया।

भिक्षु धर्मपाल जी ने 29 अप्रैल 1933 को अपनी देह का त्याग किया। उनकी अस्थियों को सारनाथ स्थित मूलगंध कुटी विहार के पार्श्व में रखा गया। आज सारनाथ बौद्धों का सर्वाधिक लोकप्रिय दर्शनीय स्थल है जहाँ अनेक बौद्ध मंदिरों का अब तक निर्माण हो चुका है। यहाँ एक केन्द्रीय तिब्बती विश्वविद्यालय भी स्थापित है तथा पूरे सारनाथ में यत्र–तत्र चीवरधारी बौद्ध भिक्षु दिखाई देते हैं। महाबोधि सोसायटी की शाखाएँ आज बोधगया, सारनाथ, नई दिल्ली, साँची, चेन्नई, मुम्बई, लखनऊ तथा भुवनेश्वर में स्थापित हैं। आज बौद्ध दर्शन और पालि विभाग देश के अनेक विश्वविद्यालयों में स्थापित हैं और अनेक शिक्षण संस्थाओं में बौद्ध अध्ययन केन्द्रों की स्थापना की गई है।

सन्दर्भ सूची :–

1. भिक्षु संघरक्षित, 'बौद्धधर्म के 2500 वर्ष', दिल्ली, 1956.
2. डेविड मैकमोहन, 'द मेकिंग ऑफ बुद्धिस्ट माडर्लिज्म', ऑक्सफोर्ड, 2008.
3. डॉ. रायश डेविड, 'बुद्धिस्ट इण्डिया', दिल्ली, 1997.
4. लक्ष्मण जयवर्द्धने, 'माई लाईफ स्टोरी : अनागारिक धर्मपाल्स लाईफ इन हिज ओन वर्ड्स', श्रीलंका, 2013.
5. बी.आर. अम्बेडकर, 'हू वेयर द शूद्राज', नई दिल्ली, 2011.
6. राहुल संकृत्यायन, 'महामानव बुद्ध', लखनऊ, 2005.
7. टेक्सा बार्थोलोम्यूज, 'धर्मपाल इन शिकागो : महायान बुद्धिस्ट ऑन सिंहला चॉविनिस्ट', अटलांटा, 1993.

राष्ट्र-निर्माण में महामना का योगदान

डॉ. ममता गुप्ता*

''मुझे राज्य की कामना नहीं, मुझे स्वर्ग की कामना नहीं, मुझे मोक्ष की कामना नहीं, मेरी एक मात्र कामना बस यही है कि मैं दुःखी प्राणियों के दुःख दूर करूं''–

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नऽपुनर्भवनम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तं नाशनम्।[1] *–पं. मदन मोहन मालवीय*

महामना के शब्दों में, ''देखों ! मृत्यु के समय मुझे काशी में मत ले जाना, मैं अभी मुक्ति नहीं चाहता। मेरी इच्छा है कि एक जन्म और लेकर मानव की सेवा करुँ।'' इस प्रकार की वाणी साधारण नहीं होती। यह तो पूरे जीवन के मर्म को एक सूत्र में प्रकट कर देती है। मालवीयजी जबतक जिए उन्होंने मनसा, वाचा, कर्मणा जनता की सेवा की, और अंत में यही आकांक्षा लेकर वे इस लोक से गये कि यदि उनके कर्म उन्हें पुनः इस लोक में ला सकें तो वे अपने सेवाव्रत को एक जन्म में और आगे ले चलें।

मालवीय जी विश्वात्मा पुरुष थे। उनके हृदय में सम्प्रदाय का भेद भाव नहीं था। हिन्दू–मुसलमान, छूत–अछूत, पूर्वी–पश्चिमी सभी उनको प्रिय थे और वे हृदय से सबका भला चाहते थे। वे अत्यन्त सरल और सुलभ थे। **'सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा'** यह उक्ति उन पर पूर्णतः घटती थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनकी कर्मशक्ति का एक मूर्त्तरूप है। इसके निर्माण में उनके चित्त में अनके भावनायें थी। वास्तव में देश में ज्ञान के लिए और प्राचीन संस्कृति के उत्तम आदर्शो के पुनः उद्धार के लिए उन्होंने जो स्वप्न देखा था, उसी का मूर्त्त रूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। पर सच तो यह है कि मालवीय जी का व्यक्तित्व एक विश्वविद्यालय से कहीं बड़ा था। लोकसभा के अपने एक भाषण में उन्होंने घोषणापूर्वक कहा था कि यदि देश और जनता की भलाई के लिए सौ हिन्दू विश्वविद्यालय भी छोड़ने पड़ें तो वे उसके लिए भी तैयार हैं।

उनके जीवन की सफलता यही थी कि उन्होंने भारतीय राष्ट्र के साथ अपने आपको सब तरह मिला दिया था। विश्वविद्यालय से अंत तक उन्होंने अपना कोई भी आर्थिक संबंध नही बनने दिया। इसे तो वे सेवा–कार्य की वेदी मानते थे। अपने परिवार वालों के लिए भी उनकी यही इच्छा थी।

उनकी सेवाओं के जितने रूप हैं उन सबका वर्णन कठिन ही है। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के द्वारा वे देश का हित सम्भव मानते थे। इसके लिए उन्होंने आरम्भ में बहुत कार्य किया और अंत तक यह क्षेत्र उनको प्रिय बना रहा। उन्हीं के मुख्य प्रयत्न से देवनागरी लिपि को उत्तर प्रदेश के न्यायलयों में स्थान मिला। गंगा की निर्मल धारा के समान उनके मुख से हिन्दी की वाग्धारा प्रवाहित होती थी। रामचरितमानस और भागवत्– ये दो ग्रन्थ उनके हृदय के अत्यन्त निकट थे और वे प्रायः इनका पारायण किया करते थे। उनके पिता बड़े तेजस्वी व्यास थें। मालवीय जी भी स्वयं व्यास गद्दी पर बैठ कर विश्वविद्यालय में भागवत की कथा सुनाया करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में वे प्राचीन गुरु शिष्य के आदर्श को सर्वोत्तम मानते थें। विश्वविद्यालय के जीवन में भी औपचारिक नियमों को वे यथासंभव दूर रखने का प्रयत्न करते थे। उनका कथन था कि सच्चा मनुष्य नियमों से ऊपर है और नियम मनुष्य के लिए हैं। मनुष्य नियमों में जकड़ जाने के लिए नहीं। उन्होंने वेद, पुराण आदि प्राचीन संस्कृति विद्याओं के पठन–पाठन के लिए बहुत प्रयत्न किया। उनके मन में हिन्दू विश्वविद्यालय की जो ऊँची कल्पना थी उसमें संस्कृत विद्या का बहुत ऊँचा स्थान था। इसके साथ ही वे अर्वाचीन जीवन के लिए उपयोगी पश्चिमी विज्ञान के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे। उसकी शिक्षा के बिना राष्ट्रीय उन्नति सम्भव नहीं, अतएव उन्होंने उसके लिए भी अपने विश्वविद्यालय में पूर्ण

**असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी।*

प्रबन्ध किया। 1920 के लगभग इन्जीनियरिंग की शिक्षा का देश में प्रायः अभाव था, अतएव उस समय हिन्दू विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबन्ध राष्ट्र के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता था।

राष्ट्र निर्माण में महामना का योगदान–

वर्ष 1986 मालवीयजी के राजनीतिक जीवन में एक नया मोड़ लेकर आया। इस वर्ष दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में पं0 आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ इंडियन नेशनल कांग्रेस के द्वितीय सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए कलकत्ता गये और वहाँ प्रतिनिधि सभा की स्थापना के विषय पर अपने सशक्त विचार व्यक्त किये। उन्होंने अपने भाषण में स्पष्ट शब्दों में कहा ''प्रतिनिधित्व का अधिकार ब्रिटिश प्रजा का मौलिक अधिकार है वह हमें मिलना चाहिए।''[2]

इसी कलकत्ता अधिवेशन में मालवीयजी पं0 दीनदयाल शर्मा (व्याख्यान वाचस्पति) के संपर्क में आये। समान धार्मिक विचार एवं सनातन धर्म के प्रति गहन निष्ठा के कारण दोनों के बीच गहरी मित्रता हो गयी। सन् 1887 को पं0 दीनदयाल शर्मा ने 'भारत–धर्म महामण्डल' की स्थापना की जिसके संचालन में मालवीयजी ने सक्रिय सहयोग किया। इसी वर्ष मालवीय जी ने 'हिन्दुस्तान' पत्रिका के संपादकत्व का कार्यभार संभाल लिया। दिसम्बर सन् 1887 को उन्होंने अपने प्रान्त से चालीस से अधिक प्रतिनिधियों के साथ कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में भाग लिया और अपने भाषण में प्रतिनिधि सभा की स्थापना पर पुनः जोर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि कांग्रेस का अस्तित्व ही इस बात का परिचायक है कि भारतवासी प्रतिनिधि सभा के सर्वथा योग्य है।[3] इस अधिवेशन में मालवीयजी को कांग्रेस द्वारा अपने प्रान्त के 'पॉलिटिकल एसोसिएशन' तथा स्थायी कार्य समिति का मंत्री नियुक्त किया गया। सन् 1988 के कांग्रेस अधिवेशन में मालवीयजी ने पुनः प्रतिनिधि संस्थाओं के विस्तार की आवश्यकता पर बल दिया।

ब्रिटिश शासन की कमियों पर प्रकाश डालते हुए मालवीयजी ने कहा कि देश के प्रबन्ध में जनता के प्रतिनिधियों की कोई सुनवाई नहीं है। विधान कौंसिलों के अधिकार बहुत ही सीमित है एवं जनता के कल्याण में राजस्व का एक चौथाई से भी कम खर्च किया जा रहा है। इस व्यवस्था में जनता की नैतिक और भौतिक उन्नति सम्भव नहीं है।[4] उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता पर बल देते हुए यह मांग रखी कि प्रान्तीय सरकारों को राजस्व जमा करने व व्यय करने की स्वतन्त्रता हो, प्रान्तीय सरकारों के कार्यों पर जनप्रतिनिधियों का नियन्त्रण हो, अधिकार का विस्तार हो तथा प्रान्तों की शासन परिषदों में भारतीय सदस्यों की नियुक्ति हो।[5]

सन् 1908 में लार्ड मार्ले ने राजनीतिक सुधार के संबंध में अपनी सुधार योजना प्रस्तुत की। इस योजना के सकारात्मक पक्षों की तो मालवीयजी ने सराहना की किन्तु सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रावधान का उन्होंने पुरजोर विरोध किया। उन्होंने 'अभ्युदय' में लिखा कि ''धर्म के आधार पर प्रतिनिधियों का चुनाव अनावश्यक है।''[6] दिसम्बर सन् 1909 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन को संबोधित करते हुए अपने अध्यक्षीय भाषण में मालवीयजी ने 'मार्ले–मिण्टो सुधार योजना' के सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव की कटु आलोचना की। उन्होंने कहा– ''सम्प्रदाय और संपत्ति पर आधारित निर्वाचन पद्धति का विरोध कांग्रेस इसलिए नहीं करती कि वह चाहती है कि मुसलमान और भूमिपति प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं कर सकें, बल्कि उसका विचार है कि चूंकि विधान कौंसिलों को ऐसे प्रश्नों पर विचार करना होगा जो सभी वर्गों और मतों के लिए समान हित के हैं; इसलिए उनके प्रतिनिधियों को सभी वर्गों, जातियों की सम्मिलित राय से निर्वाचित होना चाहिए। उनके प्रति देशवासियों के विश्वास का आधार उनमें लगन के साथ जनता के हितों की रक्षा और उन्नति करने की योग्यता, बुद्धिमत्ता और आचरण होगा, न कि उनका किसी विशेष धर्म से संबंध या कई एकड़ भूमि का उत्तराधिकारी होना।[7]

मालवीय जी ने सन् 1903 से सन् 1912 तक युक्त प्रांत की प्रान्तीय परिषद् के निर्वाचित सदस्य के रूप में कार्य किया। यद्यपि प्रान्तीय कौंसिल के अधिकार बहुत सीमित थे किन्तु मालवीयजी ने इन सीमित अवसरों का उपयोग करते हुए जनता की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं व मांगों को सरकार के सामने रखा।

'बुन्देलखंड भूमि हस्तांतरण विधेयक' पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि 'लगान में कमी करने की आवश्यकता है न कि हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाने की।''[8] उन्होंने किसानों पर से लगान के बोझ को कम करने की पुरजोर वकालत प्रांतीय कौंसिल में की।[9] उन्होंने प्रांतीय कौंसिल में सिंचाई की सुविधाओं के विस्तार, कृषि शिक्षा के समुचित प्रबन्ध, औद्योगिक शिक्षा के विस्तार व युक्त प्रांत में कम से कम एक उच्चस्तरीय औद्योगिक शिक्षा महाविद्यालय की स्थापना, जनकल्याण नीति, स्वास्थ्य रक्षा की समुचित व्यवस्था से संबंधित प्रस्ताव रखे। इस प्रकार प्रांतीय कौंसिल की सदस्यता के माध्यम से जनता के स्वर को सरकार तक पहुँचाने का मालवीयजी ने हर संभव प्रयास किया।

सन् 1913 में मालवीय जी ने वकालत पूरी तरह से छोड़कर अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रीय सेवा में अर्पित कर दिया। सन् 1915 में मालवीय जी की अध्यक्षता में 'प्रयाग सेवा समिति' गठित की गयी जिसका मूल लक्ष्य निःस्वार्थ जनसेवा था। मालवीयजी ने सन् 1910 से सन् 1920 तक केन्द्रीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्य के रुप में कार्य किया। उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान सरकार की गलत नीतियों की आलोचना करने व सकारात्मक सुधार के प्रस्ताव सुझाने के लिए भारतीय विधान कौंसिल के मंच का पूर्ण उपयोग किया। वे कर नीति का ऐसा पुनर्गठन चाहते थे जिससे निर्धनों पर से कर का बोझ हल्का हो और धनिकों पर कर भार अधिक पड़े।[10]

'महामना' **प्रजा–भक्ति** को ही राजभक्ति और देश–भक्ति समझते थे। उनकी **राष्ट्रीयता** राजनीति से बहुत ऊपर थी। राष्ट्र के सर्वांगीण अभ्युदय की कामना लेकर वे राजनीति में पदार्पण किये थे। वे जनता राष्ट्र को प्रकट रूप मानते थे– ''राष्ट्राणि वे विशः'' (ऐतेरय ब्राह्मण, 8/26) और अपने को उस जनता का एकमात्र सेवक; जनता ही उनकी भक्ति का चरम साध्य थी।''[11] 'महामना' अंग्रेजों की 'बाँटों और राज करो' की नीति को अच्छी तरह समझते थे। 1914 ई0 में जब श्रीमती एनी बेसेन्ट ने होमरूल लीग की स्थापना की तो महामना ने बढ़कर उसका स्वागत किया। कांग्रेस स्वयं नरम और गरम दलों में बँटी थी, जिसके बीच मालवीयजी का व्यक्तित्व सेतु का काम करता था। यद्यपि ''मालवीय जी क्रान्तिकारियों के क्रियाकलापों को ठीक नहीं समझते थे, फिर भी उनकी देश–भक्ति और आत्म बलिदान की भावनाओं का सम्मान करते थे; और वैचारिक मतभेद के बावजूद उनकी व उनके परिवार के लोगों की सहायता करते थे।''[12]

मालवीयजी गाँधीजी के विचारों के पूर्णतः अनुयायी थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ''यद्यपि वे अहिंसा मार्ग को उचित समझते थे, किन्तु सरकारी दमन, अत्याचार एवं निरंकुशता की अतिशयता पर वे कभी–कभी क्रान्तिकारियों की तरह उबल पड़ते और हिंसा का परोक्ष रूप से, समर्थन कर बैठते थे।'' [13] सन् 1931–32 में जब भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दी गयी, मालवीयजी ने बड़े संतप्त हृदय से इन क्रान्तिकारी सपूतों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी और देश के नौजवानों के लिए इन्हें प्रेरणा का स्रोत बताया था।

गाँधीजी का मालवीयजी से प्रथम साक्षात्कार 1890 ई0 में लंदन से निकलने वाले मिस्टर डिग्वी के 'इंडिया' पत्र में छपे एक चित्र के माध्यम से हुआ था। गाँधीजी मालवीयजी से उम्र में आठ वर्ष छोटे थे और उन्हें बड़ा भाई कहकर पुकारते थे। दोनों का व्यक्तित्व सादगी से भरा था। दोनों गृहस्थ वैरागी थे और भारत माँ के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर रहे थे। ''लंदन के गोलमेज काँग्रेस में यदि महात्मा गाँधी दरिद्र और दलित भारत के एक दरिद्रनारायण के प्रतीक के रूप में उपस्थित हुए थे, तो महामना मालवीयजी आध्यात्मिक भारत के प्रतीक के धर्म, सदाचार, संस्कृति, सभ्यता तथा मानवता की प्रतिमूर्ति या प्रस्तोता के रूप में''[14] प्रस्तुत हुए थे।

मदन मोहन के व्यक्तित्व में नेतृत्व की क्षमता कूट–कूट कर भरी थी। जनवरी 1924 ई0 में उन्होंने मुहम्मद अली जिन्ना के साथ मिलगर 'इण्डिपेंडेंट पार्टी' का गठन किया, चुनाव में उनकी पार्टी जीती और मोती लाल नेहरू की 'स्वराज पार्टी' को पराजय का मुँह देखना पड़ा। 19 जून 1929 ई0 को महामना ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन में वायसराय लार्ड इरविंग से वार्ता की और 29 अगस्त 1931 ई0 को द्वितीय गोलमेज सम्मेलन हेतु राजपूताना नामक जहाज पर चढ़कर गाँधी जी के साथ लंदन गये। वहाँ उन्होंने

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ भी कई जन–सभायें कीं और भारत की स्वतंत्रता के लिए उनसे सहयोग देने का आह्वान किया।

स्वतंत्रता–संघर्ष के दौरान मालवीयजी ने हिन्दू समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों का भी डटकर मुकाबला किया। **भारत धर्म महामण्डल, सनातन धर्म महासभा, हिन्दू महासभा** आदि संस्थाओं की स्थापना कर उन्होंने लोगों को इससे जोड़ा और समाज में व्याप्त अनेक कमजोरियों को दूर करने का उद्योग किया। उन्होंने गाँव–गाँव में सभायें की तथा गाँधीजी से प्रेरित होकर अंत्यजोद्धार तथा छूआछूत जैसी सामाजिक बुराईयों को मिटाने की लोगों से अपील की। 09 नवम्बर 1933 ई0 को जब गाँधीजी ने **हरिजन सेवक संघ** बनाया और **अस्पृश्यता** को समाज का कोढ़ बताया तब मालवीयजी ने उनके इस आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। ''मालवीयजी के नेतृत्व में सनातन धर्म महासभा ने अंत्यजोद्धार का समर्थन करते हुए निर्णय लिया कि अस्पृश्यता कही जाने वाली जातियों को सर्वसाधारण कुएँ, तालाब, बावली, बाग, सड़क, सराय, श्मशान घाट तथा सर्वसाधारण स्कूलों और सभाओं में जाने के लिए कोई रोक नहीं होनी चाहिए।''[15]

इस प्रकार हम देखते हैं कि देश की राजनीति में मालवीय जी का विश्वास था कि अंग्रेजों और भारतीयों के स्वार्थ अलग–अलग हैं। अंग्रेज भारत की समृद्धि नहीं होने देना चाहते, अतएव भारतीयों को स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। पर यह कार्य किस उपाय से हो उसके विषय में उनकी दृष्टि स्वच्छ थी। आरम्भ में उनका विचार था कि जहाँ भी सम्भव हो वहीं अधिकार प्राप्ति के लिए प्रयत्न और संघर्ष करना चाहिए। अतएव एक ओर तो उन्होंने स्वदेशी और राष्ट्रीय आन्दोलनों में आगे बढ़कर भाग लिया एवं दूसरी ओर लोक सभाओं के द्वारा शासन के साथ संघर्ष और सहयोग का द्विविध मार्ग अपनाया। यह बात चाहे जितनी विचित्र जान पड़े किन्तु जिन भारतीय प्रभावों से मालवीय जी के व्यक्तित्व और विचारों का निर्माण हुआ था उसके साथ इसकी संगति बैठती है। प्राचीन उपनिषदों का एक वाक्य है –

'अनिराकरणं में अस्तु।' इसका तात्पर्य यह है कि जीवन और जगत् में कहीं किसी मोर्चे पर भी भागने का अवसर नहीं। जीवन को ऊपर उठाने के लिए जिस वस्तु का जितना सदुपयोग किया जा सके, करना आवश्यक है। जीवन में भिन्न–भिन्न अवसर आते ही रहेंगे, अतएव कहीं भी कायरता का प्रदर्शन या रणभूमि से पराङ्मुख होकर रहना वीर पुरूष को शोभा नहीं देता। वीर पुरूष वह है जो आत्मविश्वास के साथ हर एक परिस्थिति का सामना करता है और उसे अपने अनुकूल मोड़ने का प्रयत्न करता है। वीरात्मा अपने कर्मबल का भरोसा करता है। अतएव प्रत्येक क्षेत्र में पहल सदा उसके पास रहती है। ऐसे ही सच्चे वीर मालवीय जी थे। उनकी दृष्टि सदा स्वच्छ थी और कर्म परिशुद्ध था। राष्ट्र एवं समाज संबंधी कार्यों को करते हुए उन्होंने अनेक उतार–चढ़ाव देखे। पर जिस प्रकार त्याग, तप और निष्ठा से उन्होंने उन–उन मोर्चो का सामना किया उससे लोक में सदा उनका सम्मान बढ़ता ही गया।

मैं राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं चाहता, और मोक्ष भी मुझे नहीं चाहिये, मेरी केवल एक ही अभिलाषा है कि जो बंधे हैं उनके बंधन दूर हों, जो दुःखी हैं उनके कष्ट मिटें और जो अशान्त हैं उन्हें शान्ति प्राप्त हो– इन भावों से उमड़ता हुआ समुद्र मालवीय जी का हृदय था। उनका विश्वविद्यालय इन्हीं भावों का एक प्रतीक है। यदि यहाँ निवास करने वाले गुरु और शिष्यों में इन भावों की आराधना होती है तो यह विश्वविद्यालय और महामना मालवीय जी का स्वप्न सफल है अन्यथा ज्ञान का व्यापार करने वाले संस्थान तो बहुत है। मालवीय जी का भौतिक शरीर अपना कार्य समाप्त करके गंगा की धारा में मिल गया। उनके पंचभूत महाभूतों में विलीन हो गए। पर आज भी मालवीय जी इस विश्वविद्यालय के अमर प्रहरी हैं। उनकी आसन्दी पर जो बैठे हैं और उनके कुल में जो निवास करते हैं, वे सत्यात्मक हृदय से मालवीय जी के आदर्शो का पालन कर सकें, यही मालवीय जी के जन्म की सनातन चरितार्थता है।

अन्त में प्रातः स्मरणीय, पूज्यपाद, महामना की वन्दना करते हुए एवं उनके गुणों का स्मरण करते हुए उस महात्मा को प्रणाम एवं श्रद्धाञ्जलि, अर्पित करती हूँ कि वे जिस किसी लोक में हों, वहाँ से हम भारतवासियों को, विशेष रूप से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अधिकारियों तथा अन्तेवासियों को सर्वदा अपने आर्शीवाद का भाजन बनायें रहें तथा आपत्तियों के समय हमारे लिये सन्मार्ग का प्रदर्शन करें।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदद्दुःखभाग्भवेत्।।"

सन्दर्भ– सूची :–

1. तिवारी, डॉ0 उमेश दत्त, 'महामना पं0 मदन मोहन मालवीय', प्रकाशक– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करणः 1988, पृष्ठ 09।
2. दी ऑनरेबल पं0 मदन मोहन मालवीय : हिज लाइफ एण्ड स्पीचेज, द्वितीय संस्करण, 1918, गणेशन एण्ड कन्स पब्लिशर्स मद्रास, पृ0 6–7।
3. रिपोर्ट सन् 1908 का प्रान्तीय कांग्रेस का अध्यक्षीय भाषण, पृष्ठ–351
4. दी ऑनरेबल पं0 मदन मोहन मालवीय : हिज लाइफ एण्ड स्पीचेज, द्वितीय संस्करण, 1918, गणेशन एण्ड कन्स पब्लिशर्स मद्रास, पृ0 103।
5. दी ऑनरेबल पं0 मदन मोहन मालवीय : हिज लाइफ एण्ड स्पीचेज, द्वितीय संस्करण, 1918, गणेशन एण्ड कन्स पब्लिशर्स मद्रास, पृ0 133।
6. इण्डिया विंस फ्रीडम : मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, 1959 ए, ओरिएण्टल लॉग मैस, लिमिटेड, कलकत्ता।
7. रिपोर्ट, ट्वेंटी फोर्थ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, 1909, पृ0 29–30।
8. दी ऑनरेबल पं0 मदन मोहन मालवीय : हिज लाइफ एण्ड स्पीचेज, द्वितीय संस्करण, 1918, गणेशन एण्ड कन्स पब्लिशर्स मद्रास, पृ0 283–891।
9. दी ऑनरेबल पं0 मदन मोहन मालवीय : हिज लाइफ एण्ड स्पीचेज, द्वितीय संस्करण, 1918, गणेशन एण्ड कन्स पब्लिशर्स मद्रास, पृ0 455।
10. प्रोसीडिंग– गवर्नर जनरल की कौंसिंल (विधायिका), मार्च सन् 1916, जि0 54, पृ0 455।
11. तिवारी, डॉ0 उमेश दत्त, 'महामना पं0 मदन मोहन मालवीय', प्रकाशक– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करणः 1988, पृष्ठ 14।
12. तिवारी, डॉ0 उमेश दत्त, 'महामना पं0 मदन मोहन मालवीय', प्रकाशक– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करणः 1988, पृष्ठ 23।
13. तिवारी, डॉ0 उमेश दत्त, 'महामना पं0 मदन मोहन मालवीय', प्रकाशक– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करणः 1988, पृष्ठ 24।
14. तिवारी, डॉ0 उमेश दत्त, 'महामना पं0 मदन मोहन मालवीय', प्रकाशक– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करणः 1988, पृष्ठ 32।
15. लाल, मुकुल बिहारी, 'महामना पं0 मदन मोहन मालवीय', जीवन और नेतृत्व, प्रकाशक– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करणः 1978, पृष्ठ 517 ।

महान् कर्मयोगी स्वामी विवेकानन्द

डॉ. ऋता दीक्षित*

संक्षिप्ति :– 19वीं शताब्दी में भारत के चिंतन–क्षितिज पर स्वामी विवेकानन्द रूपी सूर्य का उदय हुआ, जिसकी वैचारिकी–आभा में अन्य मत–मतांतर निस्तेजप्राय हो गये।कारण, स्वामी जी का प्रतिपाद्य नितांत प्रायोगिक था। प्रायोगिक वेदांत के तो वे अन्यतम अधिकारी संत माने जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग की उनकी मीमांसा जीवन–पथ का पावन अभिषेक है। भारतीय मनीषा का श्रेष्ठतम परिपाक है ''ज्ञान–भक्ति–कर्म'' की योगत्रयी। स्वामी जी ने इस योगत्रयी के महत्व को अंगीकार करते हुए ''कर्मयोग'' पर सर्वाधिक बल दिया।

संकेताक्षर :– कर्मयोग, श्रीमद्भगवद्गीता, स्वामी विवेकानन्द, भारतीय दर्शन, साधना–पथ।

''कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
म कर्मफल हेतुर्भू, मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।''

सन्त शिरोमणि स्वामी विवेकानन्द जी के कर्मयोग का आधार श्रीमद्भगवद्गीता का उक्त श्लोक है। गीता के कर्मयोग को अपने जीवन में पूर्णरूपेण उतार लेने वाले स्वामी जी ने साधनमार्ग के रूप में कर्मयोग का ही महत्व स्वीकार किया है। कर्मयोग का तात्पर्य है कुशलता के साथ अर्थात् वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा कार्य करने की विधि। कर्मयोग प्रथम तो समस्त व्यक्तिगत कार्यो को फलाभिलाषा से रहित होकर करने का विधान करता है, क्योकि फल में आसक्ति रखने से मन की शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः मन. मस्तिष्क एवं इन्द्रियादि से कार्य तो करना चाहिए, परन्तु उन पर उसका प्रभाव नहीं पड़ने देना चाहिए। शनैः शनैः समस्त व्यक्तिगत एवं स्वार्थयुक्त कर्मों का त्याग कर केवल परार्थ कर्म करना ही उचित है।

सभी भारतीय दर्शन मुक्ति को अन्तिम लक्ष्य मानते है। मुक्ति के विषय में अपने विचार स्पष्ट करते हए स्वामी जी ने अनेक स्थलों पर यह कहा है कि सीमित और स्वार्थयुक्त संसार का त्याग ही मुक्ति है। अतः जो भी मार्ग इस संकुचित सीमा से और देश–काल निमित्त के बन्धन से निकालने मे समर्थ हो, वही योग है।[2] इसी दृष्टि से स्वामी जी ने कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग को साधन–मार्गो के रूप मे स्वीकार किया है। स्वामी जी ने भक्ति–मार्ग को स्वाभाविक एवं सहज मार्ग बतलाया है। समाज में अधिकांश व्यक्ति द्वैतवादी हैं, वे सहज रूप से बहा के निर्गुण एवं अमूर्त स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करने में असमर्थ हैं। अतः उनके लिए भक्ति ही सरल एवं सहज मार्ग है।[4] भक्त को गिरने की सम्भावना नहीं रहती जब कि ज्ञानयोग की साधना कठिन भी है एवं उसमे पतन की सम्भावना बनी ही रहती है।''[5] इसके अतिरिक्त भक्ति–मार्ग का एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ यह भी है कि उससे विश्व–बन्धुत्व या विश्व–प्रेम की उपलब्धि जितनी सरलता से हो सकती है, उतनी अन्य किसी मार्ग से नही।'' जो भी परम पिता की सन्तान है वे सभी भक्त को पवित्र प्रतीत होने लगते है। दूसरों को प्यार किये बिना कोई भक्त कैसे रह सकता हैं ?''[6] जब मनुष्य की उक्त अवस्था में पहुॅच जाता है तब मनुष्य उसे भगवान के रूप में दिखने लगता हैं।''

स्वामी जी के अनुसार आध्यात्मिक अनुभूति के निमित्त किए जाने वाले मानसिक प्रयत्नों की परम्परा या प्रक्रिया का ही नाम भक्ति है। उसका प्रारम्भ साधारण पूजा–पाठ से होता है और अन्त ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ एवं अनन्य प्रेम से।''[8] श्री रामानुज के समान स्वामी जी ने भी भक्ति के सात साधन बतलाये है। वे है–– विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद और अनुध्दर्ष। भक्ति दो प्रकार की होती है।[9] इनमें वैधी वह है, जिसमें शंकहीन, होकर श्रुति का अनुसरण किया जाए। दूसरी है, रागानुगा, जो पॉच प्रकार की है– शान्त, दास्य, संख्य, वातसल्य एवं माधुर्य। भक्ति–जनित प्रेम में तीन गुण आवश्यक रूप से होन चाहिए। प्रथम, यह कि प्रेम निःस्वार्थ होना चाहिए। दूसरे यह कि प्रेम को भय– रहित होना चाहिए। ईश्वरीय दण्ड के भय से जो प्रेम को वह निकृष्ट कोटि का है। प्रेम और भय का परस्पर विरोध है। सच्चे प्रेम का तीसरा

***सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), जी. एस. एम. (पी. जी.) कॉलेज, सकीट (एटा) उ. प्र.।**

लक्षण यह है कि वह प्रतिद्वन्दी पात्र से रहित हो। इस प्रकार भक्त का अपने आदर्श के प्रति अनन्य प्रेम होना आवश्यक है।

स्वामी जी द्वारा विहित भक्ति–मार्ग की यह विशेषता है कि यहॉ भक्ति से भी अभेद–प्राप्ति को बतलाया गया है। भक्ति के महत्व के विषय में स्वामी जी कहते है। कि एकत्व ज्ञान केवल शुध्द ज्ञान एवं दर्शन से ही प्राप्त नहीं होता, परन्तु वह प्रेम द्वारा भी प्राप्त है।[12] ऊपर जिस विरोध की चर्चा अभी की गयी थी उसके विषय में स्वामी जी स्वंय भी यह स्वीकार करते है कि भक्ति का प्रारम्भ द्वैत से ही होता है, परन्तु साथ ही इसका परिहार करते हुए स्वामी जी कहते है कि परमार्थ अवस्था में पहुॅचकर प्रेम, भक्त एवं भगवान में कोई अन्तर नही रहता।''[13]

स्वामी जी ने भावुकता से शून्य व्यक्तियों के लिए ज्ञानयोग का विधान किया है।[14] आचार्य शंकर के समान स्वामी जी ने भी श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन का महत्व प्रतिपादित किया।[15] ज्ञान–योगी का ध्यान, निषेधात्मक एवं विध्यात्मक भेद से दो प्रकार का होता है। प्रथम मे उन गुणों के निषेधात्मक स्वरूप का ध्यान करना चाहिए, जो आत्मा के नहीं है, और द्वितीय से आत्मा के सत्–चित्–आनन्द अनन्त स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। श्रवणादि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए स्वामी जी विचारों के महत्व को विशेष रूप से स्वीकार करते है। विचार ही हमारी कार्य–प्रवृत्ति के नियामक है।[16] जैसा हम सोचेंगे वैसे ही बन जायेंगें। अतः आदर्श के सम्बन्ध में जितना हो सके सुनना होगा। तब तक सुनना होगा, जब तक वह हमारे शरीर के अणु–परमाणु में व्याप्त नहीं हो जाता और जब तक हमारे रक्त में प्रवेश कर एक–एक बूंद में घुल मिल नही जाता।[17] वस्तुतः ब्रह्मात्मैक्य के ज्ञान का ही नाम मोक्ष है। वही पारमार्थिक अवस्था एवं मोक्ष का परम साधन है। ज्ञान का तात्पर्य स्वामी जी भी अद्वैत वेदान्त के समान यह बतलाते हैं कि यह ज्ञान इन्द्रियजन्य नही हैं।[18] परन्तु 'अंह ब्रहगासिग' का अपरोक्ष ज्ञान ही मोक्ष का साक्षात् साधन है।

स्वामी जी ने साधन मार्ग के रूप में कर्मयोग का सर्वाधिक महत्व स्वीकार किया है। कर्मयोग का अर्थ है कुशलता के साथ अर्थात वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा कार्य करने की विधि।[19] कर्मयोग प्रथम तो समस्त व्यक्तिगत कार्यो को फलाभिलाषा से रहित होकर करने का विधान करता है क्योंकि फलों में आसक्ति रखने से मन की शक्ति नष्ट हो जाती है।[20] अतः मन, मस्तिष्क एवं इन्द्रियादि से कार्य तो करना चाहिए, परन्तु उन पर उसका प्रभाव नही पड़ने देना चाहिए। शनैः शनैः समस्त व्यक्तिगत एवं स्वार्थयुक्त कर्मो का त्याग कर केवल परार्थ कर्म करना ही उचित है। परार्थ किया हुआ निःस्वार्थ कर्म कदापि बन्धनकारी नहीं हो सकता।[21] यही मुक्ति लाभ का अर्थ है। कार्यकारण में या देशकाल में सीमित होकर, क्षुद्र शरीर की कामनाओं की तृप्ति के लिए किया गया कर्म ही बन्धक होता है। जो कार्य स्वाधीन होकर अनन्त के लिए किया जायेगा, वह न बन्धक होगा, न सीमित। स्वामी जी ने कर्मफलासक्ति को त्यागने का उपाय फलों को ईश्वरार्पित करना बतलाया है।[22] स्वामी जी साधनक्रम में राजयोग को भी उपयोगी बतलाते है। योग के यम नियमादि अष्टांगों का क्रमिक पालन करते हुए एवं मन की समस्त शक्तियों को अन्तर्मुखी बनाते हुए आत्म–स्वरूप को अवभासित करने का जो मार्ग है, वही राजयोग है।''[23]

अद्वैत वेदान्त में निवृत्ति मार्ग को प्रधानता दी जाता है।[24] परन्तु स्वामी विवेकानन्द ने आधुनिक युगानुकूल प्रवृत्ति–मार्ग का विधान किया है। 'संसार का त्याग करों ' इसका रहस्य स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि 'संसार में रहों परन्तु उसमे सीमित, संकुचित और स्वार्थपूर्ण दृष्टि से मत रहो।' संसार में रहो, परन्तु संसार के होकर मत रहो। इसका अर्थ यह नहीं हैं कि हमें आलसी होकर मिट्टी के ढेले की भॉति पड़े रहना होगा। वेदान्त हमें कार्य से कभी विरत नही करता। यदि मुक्त पुरूष ही कार्य नही करेगा तो संसार को मार्ग कौन प्रदर्शित करेगा।[25] जो व्यक्ति भोग –विलासों में मग्न है या जो संसार को कोसता हुआ वन को चला जाता है और वहॉ अपने शरीर को कष्ट देता तथा शरीर को धीरे–धीरे सुखाकर अपने को मार डालता है, वह व्यक्ति लक्ष्य–भ्रष्ट और पथ–भ्रष्ट है।[26] ''जब तुम्हारें लिए सभी ब्रह्म–भाव हो गया है, तब तुम्हें संसार छोड़ने की क्या आवश्यकता?'' आत्मनों मोक्षार्थम् जगतो हिताय च कर्म करना ही सन्यासी का वास्तविक लक्ष्य है।[27]

संदर्भ–सूची :–

1. श्रीमद्भगवद्गीता , 247।
2. The Complex Works of Swami Vivekananda, Vol.lll : p. 40.
3. Therefore the whole scope of all systems of yoga is to clear up this ignorance and allow the atman to restore its own nature. lbid :Vol. Vll : p. 152.
4. Ibid: Vol. III : p. 82
5. Complex Works of Swami Vivekananda, Vol.lll : p. 77.
6. Ibid: Vol. III : p. 82.
7. Ibid: p. 82
8. Ibid: p. 36
9. Ibid: Vol. VI : p. 78
10. Ibid,
11. Ibid: Vol. III : p. 88-9.
12. Swami Vivekananda Vol. III : p. 282
13. Ibid: Vol. III : p. 100
14. Ibid: Vol. VIII : p. 3.
15. Ibid: Vol. V : p. 322.
16. Ibid: Vol. VIII : p. 19.
17. Ibid: Vol. II : p. 152.
18. Complex Works of Swami Vivekananda, Vol. Vlll : p. 21.
19. Ibid: Vol. I: p. 97.
20. कर्मयोग पृ0 , 15।
21. Complex Works of Swami Vivekananda, Vol. l : p. 86.
22. Ibid: Vol. I : p. 100.
23. Ibid: Vol. I : p. 129-30.
24. Complex Works of Swami Vivekananda, Vol.ll : p. 149-50.
25. Ibid: Vol. VIII : p. 226.
26. Ibid: Vol. II : p. 150.
27. Ibid: Vol. V : p. 261.

यज्ञ और सुख-शान्ति : एक अन्तर्सम्बन्ध

डॉ. वन्दना कुमारी*

शारीरिक क्षेत्र में सुख बाह्य और शान्ति आन्तरिक है सुख का अर्थ है–सु =अच्छी तरह से, खा=इन्द्रियों का रहना। पांच कर्मेन्द्रिया तथा पांच ज्ञानेन्द्रिया जिस दशा में अच्छी तरह रह सकें, तृप्ति अनुभव कर सकें, वह दशा सुख की दशा है। शान्ति मानसिक है। मन जिस दशा में तृप्ति का अनुभव करता है, उद्वेगों से विचलित नहीं होता है, तभी वह शान्त कहलाता है। आन्तरिक इन्द्रियों में मन की प्रधानता है। मानसिक क्लेशों में शोक और भय प्रधान है। शोक किसी व्यतीत हुए इष्ट नाश का होता है और भय भविष्य में होने वाली किसी हानि का। शोक और भय के सम्बन्ध में क्लेश कारक बात केवल इतनी है कि उसका चिन्तन मन को अपनी ओर खींच लेता है और मन विगत तथा अनागत इष्ट हानि के साथ अपने को तद्प कर लेता है यदि हम मन के इस दृष्टिकोण को ऐसा परिवचिर्तित कर दे कि मन उसमें न फसें उसके साथ तद्प न हो तो हमें किसी प्रकार का क्लेश नही होगा मनः एव मनुष्याणां कारण बन्ध मोक्षयोः दोनों का ही कारण मन है। यदि यह बाह्य पदार्थो की आसक्ति में तथा उनके उत्पन्न हानि और लाभ में फंस गया तो बन्धन और उसका परिणाम दुख दोनों ही प्राप्त होंगे और यदि मन इसमे न फंसा, केवल अनासक्त भाव से दृष्टा बना रहा तो मोक्ष का कारण बनेगा। मन की स्वस्थता ही सुख है उसका अस्वास्थ्य दुख है कभी कभी हम मिथ्या दुख और सुख की कल्पना से भी विचलित हो उठते है।

वास्तविकता यह है कि सुख बाह्य तथा आन्तरिक इन्द्रियों का स्वास्थ्य ही है प्रचुर धन, अनेक सेवक और प्रभूत पार्थिव सामग्री के होते हुये भी यदि इन्द्रियां स्वस्थ नही है और रोग के कीटाणुओ से आकान्त है तो वास्तविक सुख स्वप्न के समान ही है। जो कुछ मै खाता हूँ, यदि उसे पचा नही सकता, जो कुछ. पढ़ता हूं यदि उसे आत्मसात् नही कर सकता तो मेरा खाया हुआ और पढ़ा हुआ दोनों व्यर्थ है इसी प्रकार विपुल भोग विलास की सामग्री के रहते हुये भी यदि मैं उसका उपयोग नही कर सकता तो उससे सुख की उपलब्धि कैसे हो सकती है। अतः सच्चा सुख इन्द्रियों के स्वास्थ के साथ ही सम्बद्ध है। इन्द्रियों के स्वास्थ्य के साथ उनकी क्षीणता को दूर करने के लिये भोग पदार्थो की आवश्यकता है, इसे कोई भी अस्वीकार नही कर सकता। इस अवस्था को हमारे यहां अभ्युदय की संज्ञा प्रदान की गयी है।

सुख के पश्चात् शान्ति आती है। यह इन्द्रिय जगत् से परे अध्यात्मिक जगत् की वस्तु है। परम आत्म तत्व ही परम शान्ति है। वही एकमात्र ऐसी सत्ता है जिसमें अशान्ति विक्षोभ की तरंगें नही उठती। इन्द्रियो की स्वस्थता में भी मानव तरंगाकुल बना रहता है तम और रज दोनो. गुण उसे सतत् विचलित करते रहते है सत् का सम्पर्क ही उसे शान्ति की झलक दिखाने में समर्थ होता है। यह कार्य सत् के प्रथम विकार शुद्धि से प्रारम्भ होता है और उसकी पूर्ण प्रतीति आत्मा के अपने स्वरूप में अवस्थित होने पर होती है। आत्मा का यह अपना रूप शिव है शान्त है जहां समस्त जागतिक प्रपन्च शमन को प्राप्त हो जाते है। यजुर्वेद के नीचे लिखे मन्त्र में सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता हुआ भक्त प्रभू के आगे प्रणय होता हुआ कहता है– ओडम् नमः शिवाय च, मयोभवाय च, मयस्कराय च, नमः शिवाय च, शिवतराय च। ''प्रभु आप सुख और शान्ति को उत्पन्न करने वाले है आपको मेरा प्रणाम है आप ही सुख और शान्ति के मूल कारण है आपको मेरा नमस्कार है। आप ही शान्त, शिव रूप है। आप से बढ़कर यहां अन्य कोई भी शिव शान्त रूप नही है। आपको मेरा नमस्कार है।''

मन्त्र में प्रणति के साथ साधक का ध्यान प्रभु के दो गुणों की ओर विशेष रूप से गया है। वे दो गुण प्रभाव और मयोभव है। शम् शान्ति का और मयः सुख का नाम है। मन्त्र के प्रथम दो चरण प्रभु को सम्भव मयोभव तथा शंकर मयस्कर कहते है सबसे बाहर की अवस्था में प्रभु शान्ति और सुख स्त्रोत स्वरूप में साधक के सम्मुख आते है उसे विश्व की समस्त सुख राशि और शान्ति उन्हीं से निकलती हुयी प्रतीत

***एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर (उ0प्र0)**

होती है। उसके पश्चात् दूसरी अवस्था उसके कतृत्व की आती है। जो सुख शान्ति का स्त्रोत है उद्भव और जनक है। वही सुख और शान्ति का वातावरण दूसरों के लिये उत्पन्न कर सकता है। मन के वातावरण को सुख और शान्ति से सम्पन्न करने के लिये साधक इसी हेतु प्रभु के चरणो में झुकता है जैसा पहले लिखा जा चुका है, सुख का सम्बन्ध इन्द्रिय जगत् के साथ है। इसी लिये मन्त्र के प्रथम दो चरणों में शान्ति के साथ सुख का भी उल्लेख हुआ है। प्रथम चरण बाह्य इन्द्रियों की स्वस्था अवस्था के लिये सुखं और शान्ति की याचना करता है और द्वितीय चरण अन्तः करण की स्वस्थता के लिये इसके ऊपर की सूक्ष्म अवस्था आत्मिक जगत् की अवस्था है जंहा तक पहुचते पहुचते सुख पीछे छूट जाता है केवल शान्ति रह जाती है। मन्त्र के तीसरे चरण में सुख का उल्लेख इसी हेतु नही पाया जाता वहाँ शिव और शिवतर दो शब्द आते है आत्मा की इन्द्रियों के सुख से स्वयं शान्ति स्वरूप ही बनना है और कुछ नही परमात्मदेव शिवम् रूप है। कल्याण के केन्द्र है वे शिवधर है उनसे बढकर अन्य कोई सत्ता कल्याण रूपिणी नही है। इससे अधिक कुछ भी कहना मन्त्र शक्ति का निरादर करना होगा। अतः श्रुति भगवती प्रभु को शिव तथा शिवतर कहकर ही सन्तोष कर रही है। मानव जीवन के यही दो प्रमुख लक्ष्य है। सुख और शान्ति महर्षि कणद ने अपने वैशेषिक दर्शन में इन्हीं को अभ्युदय और निःश्रेयम् कहा है।

शान्ति व्यक्तिगत तथा सामूहिक दो. प्रकार की होती है। यद्यपि व्यक्ति और समूह अन्योन्याश्रित हैं, फिर भी इतिहास ने ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जब एक व्यक्ति अत्यन्त आंदोलित एवं अशान्त समाज के अन्दर रहते हुए भी शांतिपूर्वक अपनी जीवन–चर्या व्यतीत करता रहा है। परन्तु इन्हें हम अपवाद कह सकते हैं। सामान्यतः आन्तरिक शान्ति के सम्बन्ध में व्यक्ति और समूह एक दूसरे पर अवलम्बित रहते ही हैं। अपनी दैनिक शान्ति–प्रार्थनाओं में हम अपनी व्यक्तिगत शांति का सम्बन्ध इसी आधार पर द्यावा–पृथ्वी से लेकर जड़ एवं चेतन विश्ववेदों के साथ संयुक्त करते हैं। मेरा मन शांत तभी रह सकता है जब मेरे चारों ओर का वातावरण अशान्ति–रहित हो। यदि बाहर अशान्ति है, तो अन्दर शांति नहीं रह सकेगी। वैदिक संस्कृति में व्यक्तिगत एवं सामूहिक यज्ञ भावना इस शान्ति का मूल आधार मानी गई है। हमारा शरीर स्वयं एक यज्ञ है। इसमें वेदी है, ऋत्विक है, यजमान है और यज्ञ करने की समस्त सामग्री भी।

"यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च, वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा, देवा यन्तु सुमनस्यमानाः।। (1)

मानव–जीवन रूपी यज्ञ का सम्पादन चक्षु और मुख से होता है। साधन–सामग्री का चयन करना इन्हीं का काम है। मैं जो कुछ बोलता हूं, सुनता हूं और मनन करता हूं– इस सबके रूप में मानो यज्ञ ही कर रहा हूं। इस यज्ञ का विस्तार करने वाला स्वंय ईश्वर है। इस यज्ञ में देव प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश करें। जिस प्रकार यह व्यष्टि रूप जीवन यज्ञ है, उसी प्रकार यह समष्टि रूप जगत् भी यज्ञ है। इस यज्ञ का विस्तार प्रभु ने किया है। श्रीमद्भगवद् गीता इसी तथ्य की पुष्टि करती है

''सह यज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोहसित्वष्ट कामधु क्।।" (2)

प्रभु ने यज्ञ के साथ ही प्रजा को उत्पन्न किया है। यही यज्ञ प्रजा की वृद्धि और कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। इस उक्ति में सुख और शांति दोनों आ जाते हैं। कामनाओं की पूर्ति में सुख है और वृद्धि शान्ति की अवस्था में सम्भव है। ऊपर अथर्ववेद के मन्त्र में देवों को आने के लिए आवाहन किया गया है। ये देव व्यक्तिगत जीवन में दैवी भाव हैं और जगत् में जड़ एवं चेतन दिव्य शक्तियां हैं। मानव जीवन में जब दैवी भाव अथवा दिव्य विचार प्रवेश करते हैं, तो यह व्यक्तिगत जीवन यज्ञ सफलता को प्राप्त करता है। उसी समय शांति का अनुभव होता है। सामूहिक अथवा जागतिक यज्ञ में जब दिव्य शक्तियां अथवा दैवी गुण धारण करने वाले प्राणी बाहुल्य से दृष्टिगोचर होने लगते हैं, तो विश्व में शान्ति का वातवारण छा जाता है और प्रजा धन धान्य एवं समृद्धि से उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार दिव्यता की उपलब्धि, देवी गुणों और भावों का आगमन, देवों की उपस्थिति व्यक्तिगत एवं जागतिक शांति के लिए आवश्यक माने गये हैं। यदि व्यक्ति दिव्य भावों के लिए आकर्षित होता है और जगत् देवों को अपनाता हुआ उनका सम्मान करता है, तो वे दैवी भाव और देव व्यक्ति एवं जगत दोनों के ऊपर सुख एवं शान्ति की वर्षा करते हैं। परन्तु जब व्यक्ति

और जगत इसके विपरीत पथ का अनुसरण करते हैं, तो उन्हें अशान्ति एवं कलह का ही विषाक्त धूंट पीना पड़ता है। गीता, अध्याय 3 के श्लोक 11 और 12 में स्पष्ट संकेत करती है कि देवों को प्रसन्न करना ही श्रेय प्राप्ति का एक मात्र कारण है। सुख भोग भी देवताओं दिव्य शक्तियों, दैवी गुणों और भावों के आगमन पर ही अवलम्बित है। वहीं इनके देने वाले यह दिव्यता कैसे आती है ? गीता कहती हैः– केवल अपने आप ही सब कुछ मत खा जाओ। जो अपने लिए पकाते हैं, वे मानों पाप का भक्षण करते हैं।श दूसरे शब्दों में यज्ञ करो। यज्ञ के पश्चात् जो बचे, उसे खाओ, तो पाप से बच जाओगे और दिव्यता की ओर प्रयाण करोगे। ऋग्वेद में भी यही कहा गया हैः–

'मोघमत्रं विदन्ते अप्रचेताः, सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं, केवलाघे भवति केवला दी।।' (3)

जो व्यक्ति यज्ञ द्वारा न तो अर्यमा आदि देवों का पोषण करता है और न अपने साखाओं की ही सहायता करता है, वह अकेला खाने वाला मनुष्य केवल पाप को ही खाने वाला है। इसके पूर्व वाले मंत्र में और भी स्पष्टतापूर्वक कहा गया है कि मनुष्य को जो धन प्राप्त हुआ है, उसे वह अपना न समझे। लक्ष्मी आज तक किसी की भी जीवन–संगिनी नहीं बन सकी। जैसे. रथ के पहिये बराबर घूमा करते हैं, वैसे ही धन आज एक के पास है, तो कल दूसरे के पास चला जाता है। धन की इस अस्थिर अवस्था को अनुभव करके मनुष्य को चाहिये कि उपयुक्त याचक को अपने धन का कुछ भाग्य अवश्य दे दे। अपनी तात्कालिक होती हुई हानि का भी कुछ विचार न करे, प्रत्युत इस सम्बन्ध में जीवन पथ की विशालता को ध्यान में न लाये।

पूणीयात् इत् नाध्मानाय तव्यान् द्राधीयांसं अनुपश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चका, अन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः।। (4)

अथर्ववेद में दुरिष्टि–दुर्यज्ञ और स्विष्टि–सुयज्ञ का वर्णन करते हुए कहा गया हैः–

'ये भक्षयन्तो न वसूनि आनृधुः, यानग्नयो अन्वतष्यन्त धिष्णया।
या तेषामवया दुरिष्टिरू स्विष्टि, नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा।।' (5)

जो मनुष्य खाते चले जाते हैं, उनके खाने से जो कमी हो जाती है, उसकी पूर्ति नहीं करते, अर्थात् जो भोजन सामग्री तथा धन धान्य की वृद्धि करने में नहीं जुटते–जो केवल खाऊ है, कमाऊ नहींय उन्हें भोजन करने वाली अग्नि आदि दिव्य शक्तियां संतप्त करती हैं, क्योंकि वे सुन्दर यज्ञ की साधना नहीं कर रहे–उनका केवल भोजन–भोग दुर्यजन है। यह दुर्यजन ही पाप की जड़ है, दिव्यता का घातक है और अशान्ति का कारण है।

अतः दिव्यता की प्राप्ति यज्ञ कर्म से ही सम्भव है। यज्ञकर्म में प्रमुखता त्याग की है। कोरे भोगवादी व्यक्ति, देश और समाज दिव्यता के स्थान पर आसुरी भावों का पोषण करने वाले हैं, और इसी हेतु अशान्ति में पड़ते हैं तथा दूसरों को डालते हैं। शान्ति का साधन यज्ञ है, त्याग है, परोपकार है। अपने को ही विश्व का केन्द्र समझकर जो व्यक्ति संग्रह में लगा हुआ है, अथवा जो धनी होकर अपने सेवकों, श्रमजीवियों का शोषण करने पर तुला हुआ है, वह यज्ञ नहीं कर रहा, पाप कर रहा है। विश्व की अशान्ति का वही एक मात्र कारण है। जब मानव तथा समाज भोग के साथ योग अथवा यज्ञ भी करता है, तब उसका दुर्यजन सुयजन में परिवर्तित होता है। ऐसे भी विप्र हैं, देव हैं जो भोगों के स्थान पर यज्ञ की ही शाश्वत रूप से साधना किया करते हैं। जो अपने लिये नहीं, दूसरों के लिए ही जीवन धारण करते हैं– वे यज्ञिय जीवन व्यतीत करने वाले महामानव इस नीरस, बंजर, उजड़े, असंतृप्त जगत को सरस, उपजाऊ, उर्वर और शीतल बना देते हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. अथर्व0 2.35.5
2. श्रीमद्भगवतगीता 3–10
3. ऋग्0 10.1 1 7.6
4. वही0 10.1 1 7.5
5. अथर्व0 2.3 5.1
6. वैदिकी (डॉ० शर्मा)

मुगल साम्राज्य में जागीरदारी प्रणाली की भूमिका

उमा शंकर तिवारी*

शोध सारांश :– मुगल साम्राज्य में प्रचलित जागीरदारी प्रणाली मुगल प्रशासन का महत्वपूर्ण भाग थी। इसकी नींव अकबर द्वारा रखी गई थी। जागीर भूमि का एक भाग होता था, जिसे किसी व्यक्ति को उसके वेतन के रूप में सेवा के बदले दिया जाता था। आरंभ में इसे लागू करने का उद्देश्य शाही सेवा में कुशल व अनुशासित व्यक्तियों को लाना था। जागीर परिवर्तनशील होती थी। जागीरदार का नियत भूमि पर वंशानुगत अधिकार नहीं होता था। जागीरदारी प्रथा का उद्देश्य नगद वेतन के बदले राजस्व संग्रह भी था। इरफान हबीब के अनुसार मुगल साम्राज्य की सैन्य शक्ति का आधार जागीरदारी व्यवस्था थी।[1] इस प्रकार जागीरदारी प्रथा संपूर्ण मुगल शासन काल में स्थापित रही। यह व्यवस्था अकबर के शासन काल से लेकर औरंगजेब के शासनकाल तक सुचारू रूप से चलती रही। परंतु उसके शासन के उत्तरार्ध में जागीरदारी प्रथा पर काले बादल आच्छादित होने लगे जिससे यह प्रथा संकट ग्रस्त हो गई। जैसे ही जागीरदारी प्रणाली अव्यवस्थित हुई, वैसे ही मुगल साम्राज्य पतन की ओर उन्मुख होने लगा। प्रस्तुत शोध पत्र में मुगल साम्राज्य में जागीरदारी प्रणाली की क्या भूमिका रही, इसी का अध्ययन किया गया है।

Keywords – मुगल, जागीर प्रणाली, जागीरदार, मनसबदार, साम्राज्य, काश्तकार, भूमि।

मुगल काल में मनसबदारों को जब नगद वेतन के बदले किसी भू–क्षेत्र का राजस्व आवंटित किया जाता था तो वह उनकी 'जागीर' अथवा 'तियूल' कही जाती थी। इससे पूर्व इसी संदर्भ में कभी–कभी दिल्ली के सुल्तानों के काल में 'इक्ता' शब्द का भी प्रयोग होता था। जागीर प्राप्तकर्ता को 'जागीरदार' अथवा 'तियूलदार' कहा जाता था। जागीरदार एक मनसबदार होता था, इसलिए उसे अपना व्यक्तिगत खर्च चलाने और शाही सेना के रखरखाव पर खर्च करने का अधिकार था। वह चौधरी, कानूनगो, देशमुख और कृषकों के माध्यम से नियत मात्रा में राजस्व वसूल करता था। परंतु वह विचौलिया वर्ग नहीं था। जागीरदार पर शासन का कठोर नियंत्रण होता था, क्योंकि जागीर भरपूर शक्ति व प्रभाव का मुख्य स्रोत थी। जागीरदारों को सरकार द्वारा पारित सभी प्रकार के नियमों का पालन करना होता था।[2]

जागीरें हस्तान्तरणीय थी। कोई भी जागीरदार ज्यादा दिनों तक एक ही स्थान पर नहीं रह सकता था। मनसबदारों की पदोन्नति होने पर भी उन्हें बड़ी जागीर दी जा सकती थी। उनका स्थानांतरण होता रहता था। मोरलैंड ने लिखा है कि कभी–कभी जागीरदार का 6 महीने बाद ही स्थानांतरण कर दिया जाता था। वह क्षेत्र किसी दूसरे आदमी को दे दिया जाता था। इससे शोषण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता था।[3] हस्तांतरण की पद्धति के कारण जागीरदारी व्यवस्था में दोष उत्पन्न हो गए। जागीरदार राजस्व वृद्धि हेतु ज्यादा प्रयास भी नहीं करते थे। इसके विपरीत वे वसूली पर ज्यादा ध्यान देते थे। कभी–कभी वह इसके लिए उत्पीड़न का सहारा लेते थे। इरफान हबीब ने लिखा है कि जागीरदार किसी न किसी बहाने काश्तकारों यद्यपि गांव तक बेंच देते थे या उन्हें लूट लेते थे फलस्वरूप कृषि उपज में कमी हुई क्योंकि जागीरदारों के कहर से काश्तकार अपनी जमीन छोड़कर भाग जाते थे।[4]

अकबर के शासन काल के अंतिम वर्षों में कम से कम तीन प्रांतों में खालसा से प्राप्त कुल आय कुल जमा की चौथाई थी। जहांगीर के काल में संपूर्ण साम्राज्य में यह अनुपात गिरकर 1/20 तक पहुंच गया। हालांकि शाहजहां इसमें वृद्धि कर 1/7 तक ले गया था। शेष समस्त भूमि जागीरो के रूप में बंटी हुई थी। जागीरों में समस्या यह थी कि उनके निर्धारित राजस्व (जमा) और उससे प्राप्त वास्तविक राजस्व (हासिल) में अंतर होता था।[5]

***असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय बीना, सागर।**

औरंगजेब के शासन के पूर्वार्ध तक यह व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रही, परंतु उसके शासन के उत्तरार्ध में इस पर संकट के बादल छाने लगे। जागीरदारी प्रथा के समक्ष आने वाली परेशानियों में निरंतर युद्ध, साम्राज्य विस्तार, मनसबदारों की संख्या में वृद्धि, अकाल इत्यादि था। औरंगजेब के दक्षिण अभियान के कारण दक्कनी मनसबदारों (मराठा अधिकारियों) की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई, जिससे उनके वेतन चुकाने के लिए जागीरों की संख्या काफी कम पड़ गई। जागीरों के अभाव और उपलब्ध जागीरों से प्राप्त आय में कमी से मनसबदार दुःखी हुए, जिससे उनमें असंतोष की भावना बढ़ी। अतहर अली के अनुसार दक्कन और मराठा राज्यों में मुगल साम्राज्य के विस्तार के कारण अमीरों की संख्या तेजी से बढ़ी और इससे जागीर की कार्य पद्धति में संकट उत्पन्न हो गया। दक्षिणी कुलीनों के समावेश के कारण जागीरों की कमी पड़ने लगी और अच्छी जागीरें प्राप्त करने के लिए अमीरों की होड़ लग गई। मराठों को अपने पक्ष में करने के लिए उन्हें मुक्त हस्त से जागीरें प्रदान की गईं। राज्य में जागीर देने के लिए भूमि की अत्यधिक कमी हो गई।[6] सतीश चंद्र के अनुसार सारा जमाना वेजागीर हो गया था।[7] जब जागीरदारों का तबादला होता था तो जागीरदार अधिकारियों को रिश्वत देकर अपना तबादला रुकवा देते थे, क्योंकि एक बार जिस जागीरदार से जागीर छिन जाती थी तो उसे पुनः प्राप्त करना बहुत कठिन कार्य था। खाफी खाँ लिखते हैं कि औरंगजेब स्वयं कहता था कि जागीर और जागीरदारों के चाहने वालों की दशा एक अनार सौ बीमार वाली हो गई है। जदुनाथ सरकार ने व्यंग करते हुए लिखा है कि यदि किसी को बाल्यकाल में मनसब मिलता था तो जागीर पर कब्जा करने में इतना समय लग जाता था कि तब तक सफेद बालों वाला बूढ़ा हो जाता था। स्थिति ऐसी बन चुकी थी कि जब कहीं किसी अभियान के समय अमीरों को जागीर देने की आवश्यकता पड़ती थी तब किसी दूसरे अमीर की जागीर उससे छीन कर इन्हें दे दी जाती थी। बेजागीरी का मुख्य कारण था उस काल में अमीरों की संख्या और मनसबों में वृद्धि।[8]

औरंगजेब के समय अमीरों की संख्या में तीव्र वृद्धि उसके दक्षिण अभियान 1681 ई० के बाद हुई। इसका कारण दक्कनी अमीरों व मराठों को अपनी तरफ मिलाने के लिए औरंगजेब द्वारा किया गया प्रयास था। उसने राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए जमींदारों को भी मनसब दिया। उसके समय जागीरों में भारी कमी आई। इस समस्या के समाधान हेतु उसने कागजी तौर पर जागीर की आय में वृद्धि कर दी जिससे वास्तविक आय में भारी कमी आई। समकालीन लेखक भीमसेन का कहना है कि प्रत्येक जागीरदार यह सोचता था कि मैं भूमि को धन–धान्य पूर्ण करने का प्रयास क्यों करूं, क्योंकि इसका लाभ तो किसी और को ही मिलेगा। अतः किसानों से अधिक से अधिक कर वसूल करने का प्रयास करें। इसका प्रभाव यह हुआ की किसानों में खेती के प्रति असंतोष उत्पन्न हुआ और वे बगावत करने पर उतारु हो गए।[9]

इस प्रकार औरंगजेब इस आर्थिक और प्रशासनिक संकट को रोकने का कोई उपाय न कर सका। साथ ही उसके दक्षिण में निरन्तर युद्ध में संलिप्त होने के कारण यह संकट और भी गंभीर होता गया। प्रशासनिक संकट के तौर पर जब हम देखते हैं तो औरंगजेब द्वारा दक्कन राज्यों के अधिग्रहण से राजस्व में वृद्धि तो अवश्य हुई परंतु इससे कहीं ज्यादा कुलीनों की संख्या में वृद्धि हुई। कर्नाटक और मराठों के विरुद्ध निरंतर युद्ध के खर्च के पूरा करने के लिए औरंगजेब ने अधिकांश समृद्ध जागीरों को खालसा भूमि में परिवर्तित कर दिया जिससे पैबाकी जागीरों की कमी हो गई।[10] औरंगजेब ने अपने पुत्र आजम को एक पत्र लिखा कि साम्राज्य में पैबाकी की कमी है और वेतन मांगने वालों की अधिकता। पैबाकी के अभाव में जागीरदारों को काम करना कठिन हो गया।[11] इस प्रकार जागीरों की विकट स्थिति ने बहुत ही विकृत तरीके की गुटबंदी को पनपने का अवसर प्रदान किया। भीमसेन कहते हैं कि औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुर शाह ने राजपूत राज्यों पर इसलिए आक्रमण किया ताकि उनकी भूमि जागीर के रूप में अधिकारियों में बांटी जा सके। जागीरों से प्राप्त वास्तविक आय बादशाह के उपयोग में आने वाली सैनिक टुकड़ियों की देखरेख में होने वाले खर्च के लिए पर्याप्त नहीं थी। अतः राज्य के प्रति सैनिक दायित्व के निर्वाह की ओर मनसबदार लापरवाह हो गए। चूँकि जागीरो से होने वाली आय अनिश्चित थी। इसलिए शाही जानवरों के रखरखाव पर होने वाला खर्च का भुगतान करना भी मनसबदारों के लिए कठिन हो गया।[12]

ऐसी स्थिति में जागीरों के लिए मनसबदार और मुगल साम्राज्य के बीच संघर्ष प्रारंभ हो गया। किंतु यह सैन्य संघर्ष का रूप धारण न कर सका। यह संघर्ष दरबारी गुटबंदी और अधिकारियों के रिश्वत लेने के कारण हुआ। लेकिन जागीरदारों द्वारा स्थानांतरण संबंधी आदेशों का बलपूर्वक उल्लंघन नहीं किया गया। औरंगजेब के शासन काल के अंतिम वर्षों में उमरा वर्ग पर विभिन्न प्रकार के दबाव पड़ने लगे। इसका असर साम्राज्य के विच्छिन्न होने के रूप में प्रकट हुआ। इस प्रक्रिया का आरंभ जाटों के विद्रोह से हुआ। जो मुगल फौजदार अब्दुल नबी के अत्याचार के विरोध स्वरूप प्रारंभ हुआ था। इसके बाद सतनामी और सिख विद्रोह से भी मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा में कमी आई। ऐसी स्थिति में मराठों के साथ मित्रता स्थापित करनी पड़ी। शिवाजी की गतिविधियों से पश्चिमोत्तर भारत के व्यापार में बाधा पड़ी। मराठों के प्रतिरोध के महत्वपूर्ण परिणाम हुए। स्थानीय अधिकारी अपने लाभ के लिए मराठों से व्यक्तिगत स्तर पर समझौते करने लगे जिससे जागीरदारी संकट की स्थिति और अधिक गंभीर हुई।[13]

इस प्रकार असली समस्या यह थी कि इस काल में सामाजिक व वैभवपूर्ण जीवन शैली, युद्ध सम्बन्धी व्यय तथा प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने के लिए जागीर पर्याप्त न थी। उत्पादन में वृद्धि के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन देने के बावजूद भी उत्पादन में इतनी वृद्धि नहीं हो सकती कि वह वैभवपूर्ण जीवन शैली का व्यय वहन करने में सक्षम हो सके। जमा और हासिल के बीच जो विसंगति थी वह जागीरदारी प्रथा की एक बड़ी कमजोरी थी। ऐसी स्थिति में जागीरदारों, जमींदारों और किसानों के बीच संबंधों में दूरी बनने लगी थी। जागीर से राजस्व वसूली में जागीरदार को जमींदार के सहयोग की अपेक्षा होती थी, वह तो उनसे मिलता ही नहीं था उल्टे जमींदार उनके लिए समस्याएं उत्पन्न कर देता था। जमींदार का सदैव यह प्रयास होता था कि वह वसूले गये राजस्व का अधिकांश हिस्सा अपने पास रख ले। इस प्रकार उसको जो लाभ होता था वह जागीरदारों की हानि होती थी। ऐसी स्थिति में जागीरदार और जमींदार के बीच कुछ झगड़ा–फसाद हो जाता था। परंतु बेचारे किसान तो उस जमींदार और जागीरदार की दया पर ही जीते थे।[14]

सतीश चंद्र के अनुसार मुगल काल में जागीरदारी प्रथा का संकट मुख्यता मध्यकालीन भारत में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक संबंधों से जुड़ा हुआ था विशेषतया भू–कृषि संबंधों से और इन संबंधों की आधारशिला पर खड़े प्रशासनिक ढांचे से। मुगल शासकों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या थी राजस्व प्राप्ति में निरन्तर होती कमी की। मुगल शासन राजस्व–संग्रह हेतु जमींदारों और प्रभावशाली भू–स्वामियों पर निर्भर था और यह लोग सरकार को इस कार्य में पर्याप्त सहयोग नहीं प्रदान करते थे। सवारों की संख्या घटने के कारण मुगल सरदारों की योग्यता और इच्छाशक्ति भी काफी कमजोर हो गई तथा वे अपने हिस्से की मालगुजारी वसूलने हेतु जमींदारों का पर्याप्त सहयोग नहीं कर सकते थे। इससे मनसबदार भी अपनी जागीरों से देय आय राशि वसूलने में असमर्थ हुए। इसलिए उनके सैनिक सामर्थ्य में कमी आ गई।[15]

सतीश चंद्र के अनुसार उस समय भू कृषि संबंध जागीरदारों, जमींदारों और प्रभावशाली कृषक वर्ग के तिपाये पर टिके थे। इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि उस समय का विशेषाधिकार प्राप्त किसान सामान्यता भूमिहीन किसानों को या छोटे किसानों को भूस्वामित्व प्रदान करने के प्रति अनिच्छुक था। जिससे कृषि कर्म का विस्तार नहीं हो सका और विस्तार न होने के कारण कृषि उपज में वृद्धि सीमित रही।[16]

मुगल प्रशासन में सामाजिक संरचना के ढांचे ने मुगलों से जमींदारों के साथ संबंध निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। खुदकाश्त, स्थानीय अधिकारी तथा मध्यस्थ जमींदार इस वर्ग से थे। गांव में इन्हीं का प्रभाव था। इनके और फौजदार के माध्यम से जमींदारों पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया जाता था।[17]

फौजदार जागीरदार की लगान वसूली में सहयोग प्रदान करता था। साथ ही जागीरदार के विरुद्ध काश्तकार की समस्याओं का प्रतिकार करने का माध्यम भी था। वाकयानवीस भी इन दोनों पर निगरानी करता था। इस प्रकार नियंत्रण व संतुलन की यह व्यवस्था कुशल शासन पद्धति का अभिन्न अंग थी। परंतु संतुलन शीघ्र ही नष्ट हो गया। भूमिहीनों को बिना खेती की गई भूमि पर स्वामित्व स्थापित करने का अधिकार नहीं था। मुगल काश्तकार भूमि में वृद्धि के लिए मुख्यता जागीरदारों पर ही निर्भर थे जिसके कारण

संकट और बढ़ गया। प्रायः छोटे जमींदारों का स्थानांतरण होता था। मनसबदार अधिकांशतः जमींदारों से ही लगान वसूल करते थे जिसकी वजह से वे उन पर आसानी से बल प्रयोग नहीं कर सकते थे। इस प्रकार काश्तकार सीधे तौर पर प्रभावित नहीं होते थे।[18]

17वीं शताब्दी तक जमींदारों की शक्तियों में वृद्धि हुई तथा वे राजस्व वसूली से संबंधित व्यवस्था का अभिन्न हिस्सा बन गए तथा जमा में उनका हिस्सा शामिल होने लगा था। जमींदारों के प्रभाव में इस प्रकार की वृद्धि से काश्तकार प्रशासन के प्रभाव से अलग हो गए। दक्षिण भारत की तात्कालिक राजनीतिक स्थिति के कारण काश्तकारों की हालत खराब हुई। जबकि जमींदारों की स्थिति मजबूत हुई। जमींदार मराठा सरदारों के साथ मिल गए। इस प्रकार जागीरदारों को भूराजस्व का वास्तविक अंश भी नहीं मिल पाता था। 17वीं शताब्दी के बाद वे उस सामाजिक संतुलन को बनाए रखने में भी सक्षम न रहे। जिस पर मुगल साम्राज्य की बुनियाद थी जिससे प्रशासन का संकट भी उठ खड़ा हो गया। जागीरदारी संकट वस्तुतः मुगलों को उस सामाजिक संतुलन को बनाए रखने की असमर्थता के कारण हुआ जिस पर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था आधारित थी तथा जो उस साम्राज्य की आधारशिला थी।[19]

इस प्रकार मुगलों की राजनीतिक और धार्मिक नीतियों ने इस बढ़ते हुए आर्थिक और प्रशासनिक संकट को विषम बना दिया था। इसका मूल कारण मध्यकालीन समाजिक विषमताएं थीं। इस समय समाज में यह द्वन्द था कि उत्पादन के साधनों का अधिकांश भाग ऐसे सामाजिक और राजनीतिक तत्वों द्वारा उपयोग किया जाता है, जो उनका प्रयोग भोग–विलास तथा ऐश्वर्य में अधिक करते थे। वे उत्पादन के साधनों के विकास के प्रति उदासीन थे।[20] इसके अतिरिक्त उनका ध्यान युद्धों में लगा रहता था। मुगल बादशाहों ने कृषि की प्रगति व विस्तार में योगदान तो दिया परंतु यह आवश्यकता से बहुत कम था। दूसरी तरफ शासकों की शान शौकत एवं भोग–विलास की बहुत सी आकांक्षाओं में कोई कमी भी नहीं हुई। इसका प्रभाव सीधे कृषक वर्ग पर पड़ा।

औरंगजेब का उत्तराधिकारी बहादुर शाह जब गद्दी पर बैठा तो वह अभिजात वर्ग के व्यक्तियों और अमीरों को जागीर न दे सका। इसके बावजूद उसने भी अंधाधुन्ध जागीरें बांटकर और पदोन्नति देकर जागीरदारी प्रथा के संकट में वृद्धि की। मुगल सम्राट जहांदार शाह के शासनकाल में उसके वजीर जुल्फिकार खाँ ने जागीर की दावेदारी संबंधी मामलों की जांच तथा सत्यापन के नियमों का कड़ाई से पालन करने का प्रयत्न किया और इसके लिए रोजनामचे बनवाए। किंतु घूसखोरी की वजह से इसका उल्लंघन होता रहा। राजस्व संग्रह को ठेके पर देने की प्रथा नियंत्रण से बाहर हो गयी। फल स्वरुप किसानों का दमन बहुत बढ़ गया। मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने भ्रष्टाचार में कमी लाने हेतु इजारेदारी प्रथा को बंद कर दिया। किंतु वह एक कमजोर शासक था इसलिए यह सुधार ठीक से लागू न हो सका। इस दौरान मुगल साम्राज्य षड्यंत्रों का अखाड़ा बन गया। नॉरमन अहमद सिद्दीकी ने लिखा है कि भ्रष्टाचार और भाई भतीजावाद इतना अधिक फैल गया था कि जागीरें और मनसब कभी किसी को प्रसन्न करने के लिए दी जाने लगी तो कभी संघर्षरत दलों के बीच शक्ति संतुलन के लिए। इससे जागीरदारी प्रथा में विद्यमान विघटन की प्रक्रिया और तेज हो गयी।[21]

निष्कर्ष :– इस प्रकार मुगल काल में प्रचलित जागीरदारी प्रणाली का मुगल शासन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह प्रणाली मुगल सम्राट अकबर के समय साम्राज्य विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण में सहयोगी भूमिका अदा की। जहांगीर और शाहजहां के समय भी इसने साम्राज्य विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परंतु औरंगजेब के उत्तरार्ध में इस जागीरदारी प्रथा में जो संकट उत्पन्न हुआ वह उसकी मृत्यु के समय तक कम नहीं हुआ। औरंगजेब की मृत्यु के समय तक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शासन व्यवस्था सभी दृष्टिकोण से मुगल साम्राज्य में विषम में स्थिति पैदा हो गई। इसके निवारण के लिए किसी असाधारण व्यक्ति अपेक्षा नयी गतिविधियों की आवश्यकता थी। औरंगजेब के मृत्योपरान्त अयोग्य उत्तराधिकारियों के गद्दी पर बैठने तथा बढ़ते हुए जागीरदारी संकट के कारण ही अमीरों में गुटबंदियां जोर पकड़ने लगी। जागीर मिलने में बड़ी देर होने लगी। जागीरों के जमा और हासिल में बहुत ज्यादा अंतर होने के कारण बड़े–बड़े अमीरों

ने इस आशय से गुट बनाये कि अच्छी तथा गैरहासिल जागीरें उन्हें और उनके समर्थकों को मिले। इस समय तक मंसबों तथा जागीरों का वितरण भी प्रमुख मुगल अधिकारियों के हाथों में होता था। जिससे जागीरदार वर्ग मुगल शासकों के प्रति जिम्मेदार न होकर इन प्रमुखों के प्रति वफादार बन गया। बादशाह का महत्व कम होता गया और अमीरों की शक्तियां बलवती होती गईं। मुगल प्रमुख अमीरों द्वारा अवध, बंगाल, दक्कन व हैदराबाद जैसी स्वतंत्र रियासतों की नींव रखी गई। उत्तरकालीन मुगल बादशाहों की अयोग्यता से जागीरदारी संकट बढ़ता चला गया, जो कि अंततः मुगल साम्राज्य के विघटन का कारक सिद्ध हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं जागीरदारी प्रणाली में उत्पन्न संकट की मुगल साम्राज्य के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

सन्दर्भ सूची :–

1. इरफान हबीब, दि एग्रिरियन सिस्टम ऑव मुगल इंडिया, बम्बई, 1963, पृष्ठ–210
2. हरीशचंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–2, दिल्ली, 1993, पृष्ठ–102
3. डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टू औरंगजेब, लन्दन, 1923 पृष्ठ 249–250
4. इरफान हबीब, दि एग्रिरियन सिस्टम ऑव मुगल इंडिया, बम्बई, 1963, पृष्ठ 217–219
5. हरीशचंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–2, दिल्ली, 1993, पृष्ठ–105
6. एम० अतहर अली, द मुगल नोविलिटी अंडर औरंगजेब, बम्बई, 1966, पुनः प्रकाशन, 1970, पृष्ठ–173 डॉ० आर० के० परुथी, मुगल साम्राज्य का पतन तथा विदेशी शक्तियों का आगमन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृष्ठ–02
7. सतीश चंद्र, उत्तर कालीन मुगल भारत, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993 पृष्ठ–23
8. जदुनाथ सरकर, औरंगजेब, बम्बई, 1970, पृ०–404
9. भीमसेन, नुस्ख–ए–दिलकुशां, उद्धृत जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, बम्बई, 1970, पृष्ठ– 400
10. डॉ० आर० के० परुथी, मुगल साम्राज्य का पतन तथा विदेशी शक्तियों का आगमन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृष्ठ–04
11. रुक्काते आलमगीरी, अनुवाद जमशेद एच० बिल्मोरिया, बाम्बे, 1908, पृष्ठ–109
12. सतीश चंद्र,पार्टीज एंड पालिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट, 1707–40, 1959, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 29–34
13. हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ–161, एन० ए० सिद्दीकी, लैंड रिवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन अंडर दि मुगल्स, 1700–1750, बाम्बे, 1970, पृष्ठ 108–123
14. हरीशचंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–2, दिल्ली, 1993, पृष्ठ–108
15. सतीश चंद्र,पार्टीज एंड पालिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट, 1707–40, 1959, दिल्ली, 1982, पृष्ठ–33
16. हरीशचंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–2, दिल्ली, 1993, पृष्ठ–109
17. डॉ० राधेश्याम, मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, इलाहाबाद, 1995, पृष्ठ–137
18. शर्मा, यस० आर०, भारत में मुगल साम्राज्य, आगरा, 1979, पृष्ठ–191
19. सतीश चंद्र, उत्तर कालीन मुगल भारत, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993 पृष्ठ–25
20. एल० पी० शर्मा, मध्य कालीन भारत, नई दिल्ली, 2010, पृ०–367
21. सतीश चंद्र, उत्तर कालीन मुगल भारत, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993 पृष्ठ 181–182, हरीशचंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–2, दिल्ली, 1993, पृष्ठ–103।

जम्मू–कश्मीर और लद्दाख के मध्य आकाँक्षाओं का संघर्ष

डॉ. सुनीता मंगला*

शोध सार :– स्वायतता, अस्मिता और आत्म–निर्धारण के मुद्दों पर आधारित भारतीय संविधान के मूलभूत संघवादी ढांचे के अंतर्गत क्षेत्रीय आकांक्षाओं और राष्ट्रीय एकीकरण का एक बेहतरीन सामंजस्य और संतुलन स्थापित करने की सकारात्मक कोशिश की गयी है। पूर्व में जम्मू कश्मीर भारतीय संघ का एक ऐसा राज्य रहा है जो निरंतर भारतीय धर्मनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक और संघवादी सिद्धांतों की परीक्षा देता रहा है। विलय–पत्र, 1947 के बाद विभिन्न समझौतों और प्रावधानों के द्वारा जम्मू कश्मीर और भारतीय संध के मध्य संविधान के तहत संवैधानिक एकीकरण तो संपन्न हो गया था परंतु केंद्र की आधिकारिक दखलअंदाजी और जम्मू और लद्दाख के प्रति श्रीनगर की उदासीनता ने इस राज्य को कभी भी मनोवैज्ञानिक रूप से भारतीय संघ के साथ जुड़ने नहीं दिया। शक्तियों के प्रवाह की जितनी जरूरत नई दिल्ली से श्रीनगर को थी उतनी ही शक्तियों का प्रवाह जम्मू, लद्दाख और स्थानीय और ग्रामीण स्तरों तक नहीं हो पाया। विशेष दर्जे पर आधारित अधिकार और राज्य स्वायतता की मात्रा केवल कश्मीर घाटी तक ही सीमित रही और जम्मू और लद्दाख एवं स्थानीय क्षेत्रीय आकांक्षाओं को हमेशा ही यहां पर नजरअदाज किया जाता रहा। जम्मू कश्मीर की सरकार हमेशा राज्य स्वायतता की मांग करती रही परंतु जम्मू और लद्दाख की मांगों को गैर–लोकतांत्रिक और विखंडीकरण की प्रक्रिया के रूप मे देखा गया । भारत जैसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था मे जम्मू तथा लद्दाख क्षेत्रों की अस्मिताओं और आकांक्षाओं को भी पूर्ण वैधता मिलनी चाहिए।(Puri, Balraj. 1993:12) प्रस्तुत शोध लेख इस तथ्य की जांच करने की कोशिश करता है कि भारतीय संघ में 1947 में जम्मू कश्मीर के सम्मिलित होने के पश्चात अनुच्छेद 370 के तहत दी गई विशेष प्रास्थिति और 5 अगस्त, 2019 को इसके निरसन तक राज्य स्वायतता के साथ–साथ जम्मू और लद्दाख और वहाँ के विभिन्न सजातीय समूहों की मांगें किस रूप मे प्रभावी और कार्यान्वित रही? एवं अब जम्मू कश्मीर और लद्दाख के दो केंद्र द्वारा शासित प्रदेशों में विभक्त होने के पश्चात क्या वास्तविक अर्थों में 'कश्मीर घाटी' के साथ–साथ 'जम्मू' और 'लद्दाख' की क्षेत्रीय आकांक्षाएँ पूर्ण हो पाएँगी?

बीजशब्द :– राज्य स्वायतता, क्षेत्रीय–स्वायतता, सजातीय–समूह, क्षेत्रीय आकांक्षाएँ, संवैधानिक–एकीकरण।

परिचय :– भारत संघ मे अधिमिलन के पश्चात जम्मू–कश्मीर राज्य को असमरूप संघवाद के तहत इसके अनोखे इतिहास, संस्कृति और राजनीतिक संदर्भों की वजह से अनुछेद 370 के तहत विशेष प्रास्थिति और राज्य स्वायतता प्रदान की गयी।(Arora, Balveer and Verney, Douglus V. 1995:80) जिन्होने बाद मे 'राज्य अधिकारों' का रूप धारण कर लिया जिसकी वजह से जो राज्य भारतीय संघवाद की सफलता का उदाहरण हो सकता था वह कभी भी मनौवेज्ञानिक रूप से भारतीय संघ के साथ पूर्णत एकीकृत नहीं हो पाया। यह राज्य केंद्र सरकार से निरंतर विशेष अधिकारों की मांग करता रहा परंतु राज्य के अंदर जम्मू और लद्दाख के अन्दर के प्रतिरोधों और टकराहटों को ख़त्म करने में असफल रहा। समय समय पर जो भी स्वायतता की मांगे केंद्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत की जाती रहीं वो कहीं भी जम्मू एवं लद्दाख की स्वायतता या आकांक्षाओं से जुड़ी नहीं थी। इसीलिए जब 1999 की राज्य स्वायत्तता समिति को केंद्र सरकार ने अस्वीकृत कर दिया तो केंद्र आधारित सरकार के साथ–साथ कांग्रेस दल, भारतीय जनता पार्टी, शिवसेना, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ,जनता दल, डी.एम.के. आदि राष्ट्रीय दलों के साथ साथ जम्मू तथा लद्दाख निवासियों ने भी वृहत स्वायतता संबंधी मांगों को पूर्णतया नकार दिया। अतः यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जो राज्य भारतीय संघवाद का सर्वोत्तम उदाहरण हो सकता था वह राज्य के अधिकारों और स्वायतता प्राप्ति की लड़ाई मे अपने ही राज्य की क्षेत्रीय आकांक्षाओं को सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं कर पाया और न ही राज्य की अंदरूनी राजनीति को ही संतृप्त कर पाया। नेशनल कॉन्फ्रेंस के 'घाटी आधारित नेतृत्व' ने राज्य

***एसोसिऐट प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, कालिंदी कालेज, दिल्ली विश्वविधालय, दिल्ली।**

की वृहतर स्वायतता संबंधी मांगों को समय–समय पर 1947 के विलय पत्र, भारतीय संविधान द्वारा प्रदत अनुच्छेद 370, 1952 में किये गए दिल्ली समझौते, 1954 में पारित राष्ट्रपतीय आदेश, 1974 के कश्मीर समझौते और 1999 की राज्य स्वायत्तता समिति(SAC) और क्षेत्रीय स्वायत्तता समिति (RAC) की सिफ़ारिशों के रूप मे केन्द्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया जिसमे, यदि क्षेत्रीय स्वायत्तता समिति (1996) को अनदेखा कर दिया जाये तो, किसी भी अन्य समझौते या समिति ने जम्मू तथा लद्दाख की क्षेत्रीय मांगों की तरफ ध्यान नहीं दिया। श्रीनगर ने केंद्र सरकार के साथ स्वायत्तता प्राप्ति के लिए जो भी समझौते किए या आंदोलन चलाएं वह पूर्ण रुप से इस राज्य की सम्पूर्ण और सभी की सम्मिलित राजनीतिक क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे वो मुख्यता 'श्रीनगर और नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रभुत्व' पर आधारित थे जिसमे जम्मू और लद्दाख की मांगों की पूर्णतया अवहेलना की गयी जिसने राज्य राजनीति मे "क्षेत्रीय स्वायतता" संबंधी नए विवाद को जन्म दिया। इसलिए 1928 मे विन्सेंट एच स्मिथ के कहे विचार कि 'विश्व के कुछ ही प्रदेश ऐसे हैं जिनकी शासन और सरकार के मामले मे कश्मीर से ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति रही है'(Smith, Vincent H. 1928 :176) आज भी सही प्रतीत होते हैं। राज्य के अंतर्गत श्रीनगर के पक्ष में झुके केंद्रीयकृत ढांचे की वजह से जम्मू तथा लद्दाख के लोगों के मध्य अलगाव की भावना को हमेशा बढ़ावा मिला। (Behera, Navnita Chadha. 2006:105) यह कहने में भी कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि जम्मू और कश्मीर पर जो भी शोध हुआ है उसमे मुख्यताः भारतीय संघ और जम्मू–कश्मीर के संबंधों का वर्णन किया गया है। ऐसे शोधों की कमी है जो जम्मू और लद्दाख के सजातीय और एथनिक समूहों की मांगों और आकांक्षाओं का वर्णन करता हो। हालाँकि बलराज पुरी, नवनीता चड्ढा बेहरा, रेखा चौधरी आदि ने जम्मू–कश्मीर और केंद्र सरकार के सम्बन्धों के साथ जम्मू तथा लद्दाख की क्षेत्रीय स्वायतता की मांगों के साथ–साथ यहाँ के विभिन्न सजातीय सामाजिक समूहों जैसे डोगरी, पहाड़ी, गुर्जर,बकरवाल आदि के असंतोष को भी उजागर किया है।(Behera, Navnita Chadha-2000, Chaudhary Rekha:2000, Balraj Puri.:1966, 1983) इन सभी शोधकर्ताओं ने अपने अपने तरीके से कश्मीरी संघर्ष का वर्णन किया है, परंतु हिंदी भाषा में जम्मू–कश्मीर तथा लद्दाख के अंतर्दवंदों, आपसी संघर्षों और क्षेत्रीय स्वायतता की मांगों को दर्शाने वाले ऐसे शोध लेखों की कमी है जो कश्मीर विवाद को जम्मू और लद्दाख के लोगों के दृष्टिकोण से देखते हों।

कश्मीर घाटी के प्रभुत्व के विरुद् लदाखियों, जम्मूवासियों, कश्मीरी पंडितो और वहाँ के क्षेत्रीय समूहों के विरोध के स्वर नए नहीं है बल्कि इनकी जड़ें तो जम्मू कश्मीर राज्य के भारतीय संघ मे विलय के समय से ही जमने लगीं थी जिसकी वजह से वहाँ की राज्य सरकार के खिलाफ राज्य की अंदरूनी राजनीति भी निरंतर आंदोलित होती रही जिस पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

जम्मू कश्मीर विभिन्न जातीय समूहों,आदिवासियों,भाषाओं एवं धर्मों के रूप में असाधारण विविधताओं वाला क्षेत्र रहा है जो उसे दक्षिण एशिया में विशिष्ट रणनीतिक स्थिति प्रदान करता है। 1946 में अमृतसर संधि के पश्चात यह राज्य जम्मू कश्मीर और लद्दाख के रूप में एक संयुक्त इकाई के रूप मे आस्तित्व में आया था। यह तीनों क्षेत्र सांस्कृतिक, सामाजिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक रूप से पृथक थे। दक्षिण एशिया के तीन प्रमुख धर्म इस्लाम, हिंदू और बौद्ध धर्म के अनुयाई यहाँ निवास करते हैं। जम्मू में हिंदू, कश्मीर घाटी में मुसलमान समुदाय, लद्दाख के लेह में बौद्ध समुदाय और कारगिल में मुस्लमान समुदाय बहुसंख्या में विधमान है। इसके अतिरिक्त डोगरा, पंजाबी, पोठवारिस, गुर्जर, किश्तवाड़ी, सिराजी, बदेरवाही के अलावा अन्य बहुत से सामाजिक समूह राज्य में अपना आस्तित्व दर्ज कराये हुए हैं। इसलिए यह कहना तथ्यपरक है कि यहां ना तो हिंदू एवं ना ही मुस्लिम समान श्रेणी (Homogeneous Category) में हैं। मुस्लिम समुदाय डोगरा मुस्लिम, पहाड़ी मुस्लिम, गुज्जर मुस्लिम और कश्मीरी मुस्लिमों में बंटे हैं। वहीं हिंदुओं को डोगरा, पंजाबी, पहाड़ी, सिराजी, बदेरवाही, किश्तवाड़ी आदि श्रेणियों में बांटा जा सकता है। हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी के अतिरिक्त राज्य की छ प्रमुख भाषाओं डोगरी, पंजाबी, पहाड़ी, गुर्जरी, लद्दाखी और कश्मीरी को छठी अनुसूची के अंतर्गत भारतीय संविधान में संवैधानिक मान्यता दी गई है। (Chaudhary, Rekha.2010:7) परंतु केंद्र सरकार और श्रीनगर की सरकार या दूसरे शब्दों मे कहें तो नेशनल कॉन्फ्रेंस

सरकार यह मानने मे पूर्णतया असफल रही कि जम्मू, लद्दाख के लोगों, कश्मीरी पंडितों, गुर्जर, बकरवाल, पहाड़ी आदि क्षेत्रीय समुदायों की अलग अलग आवाजें हैं जिनकी मांगों को स्वयं श्रीनगर की सरकार ने हमेशा असवैधानिक और विखंडीकरण के लिए जिम्मेदार बताया। जम्मू की भारतीय संघ के साथ पूर्ण एकीकरण के साथ साथ पृथक होंम लैंड की मांग,कश्मीर के विस्थापित पंडितों की पनून कश्मीर की मांग, लद्दाख की केंद्र प्रशासित दर्जे और स्वायत प्रवर्तीय परिषद की शक्तियों को बढ़ाने की मांग,गुर्जर और पहाड़ी समुदाय की अनुसूचित जाति और जनजाति दर्जा प्राप्ति की मांगों के साथ साथ, डोगरा,बकरवाल व लद्दाख की बौद्धिक वर्ग–समूहों की भी अपनी मांगें हैं जिनको कभी भी राज्य सरकार ने अपने अधिकारों के संघर्ष मे शामिल नहीं किया।

जम्मू सूबे के लोग अपने आपको डोगरा प्रदेश का का अंग मानकर हमेशा प्रथक होमलैंड की मांग करते रहे है जो हमेशा कश्मीरी प्रभुत्व से मुक्ति चाहते थे क्योंकि कश्मीरियों के साथ ना तो उनकी भाषा मिलती है न रंग रूप, न जाति, न भूगोल, ना परंपराएं, न ही खानपान। भारत में विशेष प्रास्थिति के साथ जम्मू कश्मीर के शामिल होने के पश्चात जम्मू के लोगों का सबसे बड़ा आंदोलन 1952 का प्रजा परिषद आंदोलन था जिसकी स्थापना बलराज माधोक ने की थी। यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक विचारधारा पर आधारित आंदोलन था जिसमें शेख अब्दुल्ला सरकार की "प्रशासन का इस्लामीकरण' करने पर आलोचना करते हुये सम्पूर्ण जम्मू कश्मीर राज्य का भारतीय संघ के साथ एकीकरण करने को कहा क्योंकि प्रधानमंत्री का न तो जम्मू के हितों से कोई सम्बन्ध है न ही राज्य के महाराजा जम्मूवासियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने की स्थिति मे थे। (Madhok, Balraj. 1989:30) सुप्रसिद्ध नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी के असामयिक निधन की जड़ें इसी आंदोलन की तह मे तलाशी जा सकती है। बाद मे जम्मू मुक्ति मोर्चा, जम्मू राष्ट्रीय मोर्चा एवं स्टेटहुड़ फॉर जम्मू जैसे अनेक संगठनों ने भारत के साथ पूर्ण एकीकरण पर बल दिया और पृथक होमलैंड की भी मांग की। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि जम्मू को ना तो अनुच्छेद 370 चाहिए और ना ही स्वायत्तता चाहिए बल्कि आतंकवाद व कश्मीरी राज से मुक्ति चाहिए। अनुच्छेद 370 के निरसन से निश्चित तौर पर जम्मू का भारतीय संघ के साथ संवैधानिक के साथ साथ मनोवैज्ञानिक एकीकरण भी होगा।

कश्मीर से विस्थापित कश्मीरी पंडितों के लिए कश्मीर की स्वायत्तता की मांग हमेशा मृतप्राय रही है। उन्होंने राष्ट्र की प्रभुसत्ता के लिए इसे घातक बताते हुये पानून कश्मीर की मांग पर बल दिया था। पानून कश्मीर, कश्मीर घाटी के छोटे अल्पसंख्यक हिन्दू विस्थापित पंडितों का संगठन है जो, 1989–90 मे घाटी मे बढ़ते आतंकवाद के चलते जम्मू और दिल्ली पलायन कर गए थे। इस संगठन का उद्देश्य कश्मीरी हिन्दू पंडितों के लिए कश्मीर घाटी के अंतर्गत केंद्र शासित दर्जे के साथ एक प्रथक होम लैंड बनाना था। इस संगठन के अनुसार फारुख अब्दुल्ला निर्देशित नेशनल कांफ्रेंस ने अपनी पार्टी के बहुमत के बल जो भी केंद्र सरकार से स्वायतता प्राप्त की है उसने हमेशा राष्ट्र को दूसरे विभाजन की ओर धकेला है जिनका संबंध कभी भी घाटी से 70 लाख विस्थापित कश्मीरी पंडितों और राष्ट्र के हित में नहीं रहा। इसीलिए इन का मानना था कि यदि कश्मीर को बांटना है तो उसके तीन नहीं चार हिस्से कर देने चाहिए जिसमें से एक क्षेत्र, झेलम नदी के उत्तर में,संघ शासित दर्जे के साथ कश्मीरी पंडितों के सुपुर्द कर देना चाहिए। कश्मीरी विषयों के जानकार बलबीर पुंज ने कश्मीर घाटी के विस्थापित पंडितों को दोबारा घाटी मे बसाने के केंद्र सरकार के वायदे और धारा 370 और 35–A की समाप्ति को इस दिशा मे एक सकारात्मक पहल मानते हुये कहा कि ''जिस अलगाववाद, घृणा और कट्टरता को यहाँ दशकों से खाद पानी मिला है उसकी समाप्ति एक दो वर्षो मे संभव नहीं है। इस भूखंड के मूल निवासी और स्थानीय संस्कृति के ध्वजवाहक कश्मीर पंडितों की वापसी यहाँ तभी संभव है जब घाटी को विषाक्त मजहबी माहौल से मुक्ति मिले। (पुंज, बलबीर. 2021:8)

लद्दाख के लोगों मे भी अंदरूनी राजनीति के प्रति खासा असंतोष रहा जिसकी वजह से उनमे अलगाव की भावना पैदा हो गई थी जिसके लिए केंद्र और राज्य सरकारें दोनों जिम्मेदार हैं। लद्दाख के दो जिले हैं एक बौद्ध बाहुल्य वाला लेह और दूसरा शिया मुस्लिम बहुल कारगिल क्षेत्र है। लद्दाख,विशेषकर लेह में, 1950 में शेख अब्दुल्ला के समय से विभिन्न संस्थाओं ने घाटी के विशेष दर्जे और स्वायत्तता मांगों का बहिष्कार करते हुये लद्दाख के लिए संविधान की धाराओं में परिवर्तन करके केन्द्र शासित प्रदेश का दर्जा

और अनुसूचित जनजाति क्षेत्र का दर्जा प्राप्त करने की मांगों पर बल दिया जिसका कारगिल के शिया संप्रदाय से संबंधित मुस्लिम वर्ग ने हमेशा विरोध किया। वेन कुशल बकुला (Octogenerion head Lama of Ladakh) ने कहा था कि राज्य एवं केंद्र सरकार दोनों ने लद्दाख की महत्वपूर्ण भौगोलिक, राजनीतिक एवं रणनीतिक स्थिति के बावजूद इसकी अवहेलना की है। लद्दाख की जनता के लिए श्रीनगर एवं नई दिल्ली सरकार का व्यवहार हमेशा से भेदभाव से भरा रहा है इसलिए लद्दाखवासियों का मानना था कि लद्दाख के लिए केंद्र शासित दर्जा प्राप्त करने के अलावा कोई भी लद्दाखी किसी अन्य तरीके से संतुष्ट नहीं होंगे एवं वह किसी भी तरह से जम्मू कश्मीर की, उसकी विशेष अधिकार प्रदान करने वाली 1953 पूर्व स्थिति की मांग की, प्रक्रिया को आगे नहीं बढ़ने देंगे। लद्दाख स्वायत्त पर्वतीय विकास परिषद ने भी केंद्र शासित दर्जा प्राप्त करने के लिए निरंतर संघर्ष किया। लद्दाख बौद्ध संघ के अध्यक्ष सेविंग सेरिंग सम्पेफई के अनुसार अतीत मे कश्मीर द्वारा मांगी जाने वाले मांगे किसी भी तरह लद्दाख के लोगों और उनकी सांस्कृतिक पहचान से संबन्धित नहीं रहीं। लद्दाख स्वायत्त पर्वतीय विकास परिषद ने स्वायत्तता मांगों के विरोध में एक आन्दोलन करके एक विशेष प्रस्ताव का प्रस्तुतीकरण किया जिसके तहत लद्दाख को जम्मू कश्मीर से प्रथक करके उसके लिए केंद्र शासित दर्जा दिलाने की मांग थी।(Frontline, 2000:8) 1970 मे तो यहा केंद्र शासित दर्जा प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ा आंदोलन चला। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने लद्दाख को केन्द्र शासित प्रदेश बनाने और अनुसूचित जनजाति क्षेत्र घोषित करने का आश्वासन भी दिया हालांकि उनके कार्यकाल मे लद्दाख को यह दर्जा तो नहीं मिला परंतु मई 1995 मे नरसिंह सरकार ने लद्दाख स्वायत परिषद संबंधी एक्ट पास किया जिसमे लेह और कारगिल क्षेत्र मे स्वायत परिषदों की स्थापना का प्रस्ताव था ताकि अंतर्परिषदीय सम्बन्धों को दृढ़ बनाया जा सके।(Behara, Navnita Chadha. 2006:224) 5 अगस्त 2019 में जम्मू और कश्मीर संबंधी राज्य पुनर्गठन अधिनियम द्वारा लद्दाख को निश्चित रूप से फायदा हुआ जिसके तहत 31 अक्टूबर 2019 को लद्दाख भारत का सबसे कम जनसंख्या और सबसे बड़े क्षेत्रफल वाला केन्द्र शासित प्रदेश बन गया और लदाखियों का केंद्र शासित दर्जा पाने का बरसो पुराना सपना पूरा हो गया।

जम्मू के अंतर्गत भी उपक्षेत्रीय सजातीय समूहों जैसे डोगरा, गुर्जर, बकरवाल, पहाड़ी मध्य भी संघर्ष जारी है। राज्य की किसी भी राज्य स्वायतता संबंधी मांगों मे इनके अवरोधों का जिक्र तक नहीं किया गया। राजनीतिक भागीदारी के साथ साथ शिक्षा, रोजगार, विकास और अवसरों, राजकीय सेवाओं, उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश, केंद्र से प्राप्त सहायता आदि में इनके सांस्कृतिक समुदायों के साथ हमेशा से ही घोर भेदभाव के दर्शन होते हैं। जम्मू कश्मीर के मुस्लिम समुदाय से संबन्धित तीसरा बड़ा समुदाय गुर्जर, जो राज्य जनसंख्या का नौ प्रतिशत है एवं कारगिल को छोड़कर संपूर्ण राज्य में फैले हुए, अनुसूचित जनजाति दर्जा मांग करते रहें हैं। इन्दिरा गांधी ने लद्दाख को अनुसूचित जनजाति क्षेत्र घोषित करने का आश्वासन दिया तो गुर्जर समुदाय ने भी अनुसूचित जनजाति दर्जा प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया जो उन्हे 1991 में प्राप्त हो गया। गुर्जर समुदाय की तर्ज पर पहाड़ी समुदाय भी अनुसूचित जनजाति दर्जा प्राप्त करने की मांग कर रहे हैं।(Behara, Navnita Chadha.2006:130) पहाड़ी वर्ग में हिंदू वर्ग से संबंधित खत्री, ब्राह्मण और महाजन समूह हैं वहीं मुस्लिम समुदाय के असंतुष्ट वर्ग सैयद, कुरैशी, मन्हा, जराल, दुल्ली, लोहार, तरखान, मोची, लोन, दार शामिल हैं, जो अनुसूचित जनजाति दर्जा प्राप्त करने के साथ 'पहाड़ी भाषा' को भारत के संविधान प्रदत छठवीं अनुसूची के अंतर्गत लाने की भी मांग करते रहे थे ।

यदि जम्मूवासियों, लद्दाखियों, कश्मीरी पंडितों और उपक्षेत्रीय समूहक्षेत्रों के संघर्षों का अवलोकन करें तो प्रारम्भ मे ये सभी आंदोलन असफल रहे जिसका प्रमुख कारण था जनसमर्थन का अभाव। यदि एक राजनीतिक समूह अपने क्षेत्रों के सभी जनों की आकांक्षाओं और राजनीतिक अधिकारों का पक्ष नहीं लेता है और न ही उनका प्रतिनिधित्व करता है तो उसके सफल होने के कारण कम होते हैं। उदाहरण के लिए जम्मू के पृथक राज्य बनाने की मांग के असफल होने का प्रमुख कारण था क्षेत्र के भीतर ही जन समर्थन का अभाव। कारगिल के मुसलमानों ने लद्दाख द्वारा समय समय केंद्र शासित प्रदेश का दर्जा प्राप्त करने की मांग को कभी समर्थन नहीं दिया। कश्मीरी पंडित भी राज्य के अंदर और बाहर पंडितों के लिए प्रथक

होमलैंड बनाने के पक्ष में जन समर्थन नहीं जुटा पाए। हालांकि समय–समय पर राज्य की क्षेत्रीय अस्मिताओं को पूरा करने संबंधी मांगों पर कई समितियों की स्थापना की गई जैसे; गजेंद्रगड़कर कमीशन 1967, सीकरी कमीशन 1978, वजीर कमीशन 1980, सिंघल समिति 1998, क्षेत्रीय स्वायतता समिति 1999 आदि। इन सभी समितियों ने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि जम्मू और लद्दाख की कश्मीरी प्रभुत्व के खिलाफ शिकायतें आधारहीन नहीं है और इन सभी ने राज्य संरचना में आंशिक परिवर्तन के सुझाव भी दिए परंतु वो बहुत कारगार नहीं हुये। प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार हमेशा से ही जम्मू कश्मीर के लिए एक स्थायी समाधान के लिए उत्तेजित दिखी। इसीलिए जब उनकी सरकार पुनः सत्ता में आयी तो संविधानिक दायरे के तहत 5 अगस्त, 2019 को गृहमंत्री अमित शाह ने संसद मे जम्मू–कश्मीर पुनर्गठन बिल प्रस्तुत किया गया जिसके आधार पर अनुच्छेद 370 और 35A को रद्द करने के साथ उसे दो संघ–नियंत्रित प्रदेशों– जम्मू–कश्मीर और लद्दाख में विभाजित कर दिया गया जिसके आधार पर 370 के तहत मिली विशेष प्रास्थिति की वजह से जो 156 कानून इस राज्य पर लागू होते थे वो समाप्त हो गए हैं। अब आधार एक्ट, संपति एक्ट, हिन्दू मैरिज एक्ट और सूचना संबंधी एक्ट जैसे कानून यहाँ पर लागू होंगे जो संख्या में लगभग 106 हैं। (हालाँकि इस से सम्बधित पूर्व में चले आ रहे 166 कानून ज्यों के त्यों रहेंगे) संविधान के अनुच्छेद 239–A के अनुसार जिस प्रकार दिल्ली और पुडुचेरी की अपनी विधानसभा है उसी के समान जम्मू–कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश की भी अपनी विधानसभा होगी। वहीं, अनुच्छेद 239 के तहत लद्दाख भी केंद्र शासित प्रदेश बना है जिसकी न ही कोई विधानसभा होगी और न ही कोई विधान परिषद। यहां उपराज्यपाल ही मुखिया होगा। उपराज्यपाल की नियुक्ति केंद्र सरकार की सिफारिश पर राष्ट्रपति करते हैं। अब सरकार तथा निर्वाचन आयोग एक साथ मिलकर जम्मू कश्मीर का पुनः परिसीमन तय करेंगे, तत्पश्चात यहाँ दोनों ही केन्द्रशासित प्रदेशों की विधानसभा सीटों में बढ़ोतरी होगी। यह निश्चित ही एक ऐतिहासिक परिवर्तन है जिससे जम्मू और लद्दाख की क्षेत्रीय आकांक्षाओं की आंशिक पूर्ति तो हो गयी है। जहां लद्दाख को केंद्र प्रशासित प्रदेश होने का दर्जा मिल गया वहीं कश्मीरी पंडितों को वापस राज्य मे बसने की आकांक्षाओं को निश्चित ही बल मिला है। परंतु श्रीनगर घाटी के लोगों मे अनुच्छेद 370 को रद्द करने संबंधी अकस्मात होने वाले निर्णय और नए अधिवास(Domicile) कानून की शुरूआत, जिसने बहुसंख्कीय मुसलमानों मे परिसीमन अभ्यास से अपनी जड़ों से वंचित होने की आशंकाओं और जनसांख्यिकीय परिवर्तन संबंधी चिंताओं को जन्म दिया, ने नई दिल्ली के प्रति अलगाव और अविश्वास की भावना को जन्म दिया है। अब केंद्र सरकार पर यह भारी जिम्मेदारी है कि आने वाले समय मे सभी क्षेत्रीय आकांक्षाओं को संवैधानिक दायरों के तहत पोषित करने की कोशिश करे और निष्पक्ष और विश्वसनीय चुनावों के माध्यम से लोगों तक अपनी पहुँच बनाए एवं यह देखे कि परिसीमन प्रक्रिया निष्पक्ष, पारदर्शी और विश्वसनीय हो।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वहित से प्रेरित होता है एवं ये स्वहित और आकांक्षाएँ ही क्षेत्रीय अस्मिता और स्वायतता की मांगों को मजबूती प्रदान करती हैं परंतु जम्मू कश्मीर जैसे बहुल–सांस्कृतिक विविधता वाले राज्य मे लद्दाख और जम्मू की क्षेत्रीय आकांक्षाओं को नजरंदाज किया गया जिसकी वजह से कश्मीर घाटी के नेतृत्व पर आधारित एकीकृत एवं केन्द्रीयकृत सत्ता इन क्षेत्रों मे टकराहट का कारण बनी रही। इसलिए आज के समय में जब जम्मू कश्मीर और लद्दाख का समान दर्जे के आधार पर विभाजन हो गया है तो आवश्यक है कि नई दिल्ली श्रीनगर एवं श्रीनगर–जम्मू और लद्दाख के मध्य सौहार्दपूर्ण प्रयासों के साथ साथ कश्मीरी लोगों की क्षेत्रीय वफ़ादारियों एवं उपक्षेत्रीयताओं को भी भरपूर सम्मान दिया जाये। 5 अगस्त 2019 के ऐतिहासिक निर्णय से जम्मू–कश्मीर और लद्दाख की प्रशासनिक व राजनीतिक व्यवस्था में किस प्रकार का अंतर आयेगा? और केंद्र सरकार जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख की सरकारों को और तत्पश्चात क्षेत्रीय स्तरों तक कितनी शक्तियों का प्रवाह कर पाएँगी? यह बताना अभी जल्दबाज़ी होगी। लेकिन यह सत्य है कि अनुच्छेद 370 के निरस्तीकरण के पश्चात केवल कश्मीर घाटी के साथ ही नहीं बल्कि दोनों केंद्र शासित प्रदेशों के रूप में जम्मू और कश्मीर और लद्दाख के मध्य विश्वास और सशक्तिकरण को मजबूत करना होगा क्योंकि इस क्षेत्रों का प्रश्न सीधे–सीधे भारतीय लोकतंत्र और संघवाद के भविष्य से जुड़ा है। अब कश्मीर मे सकारात्मक संकेत भेजने के लिए नई दिल्ली को यह सुनिश्चित करना होगा कि नई राजनीतिक प्रक्रिया में घाटी के भीतर से दबे स्वरों का पोषण दें। दशकों से

जम्मूवासियों, लदाखियों, कश्मीरी पंडितों, एवं अन्य समूहों को जिस भेदभाव का सामना करना पड रहा है उसे मिटाकर उन्हे मुख्यधारा मे लाना पड़ेगा। व्यापक स्तर पर तीनों क्षेत्रों के पूर्ण विकास पर बल देकर वहाँ के युवाओं तथा निवासियों को इस तथ्य से आश्वस्त कराया जाना आवश्यक है कि वे निर्णय लेने के विस्तृत एतिहासिक कालखंडों में हमेशा से ही भारत का महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं और भविष्य में भी रहेंगे। पिछले दो वर्षों में जम्मू और कश्मीर में कई राजनीतिक, सामाजिक और ढांचागत परिवर्तन हुए हैं। राजनीतिक मोर्चे की हलचलों की बात की जाए तो,सभी क्षेत्रीय दल अगस्त, 2019 के कदम को उलटने की मांग कर रहें है परंतु विकास कि गति धीरे धीरे बल पकड़ रही है। जिला विकास परिषद के निर्वाचन बिना किसी विवाद के सफलतापूर्वक पूर्ण हुए और अब परिसीमन की कवायद चल रही है जिसके बाद विधानसभा चुनाव हो सकते हैं। अप्रैल 2021 मे जम्मू–कश्मीर में चिनाब नदी पर दुनिया का सबसे ऊंचा रेलवे पुल तो बना दिया गया है जिसको 2022 तक पहली बार ट्रेन द्वारा घाटी को शेष भारत से जोड़ने की उम्मीद है। आशा है इस पुल की तरह जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख की आकांक्षाओं को भी भारतीयता मे से जोड़ा जाएगा और आंतरिक राजनीति के अंतर्विरोधों को दूर करके जम्मू और लद्दाख और नीचे स्थानीय और ग्रामीण क्षेत्रों तक शक्तियों के प्रवाह पर बल दिया जाएगा तभी वास्तविक विकेन्द्रीकरण और सशक्तिकरण का रूप सामने आ पाए।

References :-

1. Arora Balveer and Verney Douglus V. (ed.), Multiple Identities in a Single State: Indian Federalism in Comparative Perspective, New Delhi, Konark Publication, .1995
2. Balraj Madhok, Jammu, Kashmir and Ladakh:Problem and Solution, New Delhi, Reliance Publication, 1989.
3. बलबीर पुंज, "कब होगी कश्मीरी पंडितों की वापसी" दैनिकजागरण, 10 अगस्त, 2021.
4. Balraj Puri, Jammu: A Clue to Kashmir Tangle, New Delhi, Printed and Published by 1966.
5. Balraj Puri, Insurgeney and After, New Delhi, Orient Longman Private Limited, 1993.
6. Balraj Puri, Simmering Volcano: Study of Jammu's Relation with Kashmir, New Delhi, Sterling Publishers, 1983.
7. Navnita Chadha Behera, State Identity and Violence: Jammu, Kashmir & Ladakh, New Delhi, Manohar Publication, .2000
8. Navnita Chadha Behera, Demystifying Kashmir, Washington, DC, Brooking Institution Press, 2006.
9. Rekha Chaudhary (ed.), Identity Politics in Jammu and Kasmir,Vitasta Publication, New Delhi, 2010.
10. Vincent H. Smith, The Oxford History of India, Oxford, U.K., Clarendon Press, 1928.

विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों का समावेशन

एक समीक्षात्मक अध्ययन

सुधीर कुमार तिवारी*

शोध सारांश :– समावेशी शिक्षा केवल विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की आवश्यकताओं तक ही सीमित नहीं है, वरन् यह सभी बालकों की आवश्यकताओं पर केंद्रित है, जो मनुष्य के दृष्टिकोण को प्रभावी बनाने का एक सशक्त माध्यम है और जिससे समाज की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था को प्रभावी बनाया जा सकता है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा मूलतः विविधताओं की स्वीकृति का एक सकारात्मक दृष्टिकोण है, जो समाज की प्रगति हेतु अपनी आवश्यकता और चुनौतियों को साथ–साथ सुनिश्चित करती है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा समावेशी शिक्षा, विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ एवं समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक/विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से संबंधित शोध साहित्य की समीक्षा की गई है।

मुख्य शब्द :– :विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी', 'समावेशी–शिक्षा' और 'दृष्टिकोण'।

समावेशी शिक्षा विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में विशेष आवश्यकताओं को समायोजित करता है और शिक्षा की गति को बनाए रखता है। "समावेशी शिक्षा सामाजिक समानता के साथ–साथ प्रत्येक बालक को उसकी अपनी क्षमता विकसित करने में मदद करती है, जो विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने के योग्य बनाती है" (वर्मा, 2014; चौधरी, 2010; भारती, 2014)।

इस शिक्षा व्यवस्था से सामाजिक समानता के साथ–साथ प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी अपनी क्षमता विकसित करने में मदद मिलेगी। समावेशी शिक्षा में सभी विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास ही शिक्षक की सफलता का मापदंड है; लेकिन इसमें शिक्षक की जिम्मेदारियाँ एवं उत्तरदायित्व बढ़ जाती है। ''विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की बुनियादी सुविधाओं पर शिक्षकों का रवैया औसत पाया गया। अधिकांश शिक्षकों ने कक्षाओं को समावेशी शिक्षा को अनुकूल बनाने हेतु अधिक से अधिक भौतिक एवं पाठ्य संसाधन उपलब्ध कराने की आवश्यकता पर बल दिया है।" (यादव, 2018; मालकर, 2017; सिंह एवं अग्रवाल, 2015; चड्ढा, 2016)।

भारत में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रभावी योजना और प्रयासों की आवश्यकता है। भारत में नियमित और विशिष्ट शिक्षा में प्रशिक्षित शिक्षकों के बीच सहयोग और समर्थन के माध्यम से एक समावेशी दृष्टिकोण की दिशा में कदम बढ़ाया जा रहा है। विशिष्ट शिक्षा प्रणाली की परंपरा के रूप में सरकार शैक्षिक सुधारों को बढ़ावा दे रही है, जो कि शिक्षा हेतु एक समावेशी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करती है।

वर्तमान समय में विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए अस्वीकरण और अति संरक्षण जैसी धारणा को पूर्णतयः नकार दिया गया है; क्योंकि अति संरक्षण की भावना दया से प्रेरित होती है और अस्वीकरण की भावना घृणा से। इसलिए ये दोनों ही विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के समाजीकरण में बाधक हैं। समावेशी शिक्षा, शिक्षक और विद्यार्थियों के मध्य की कड़ी को मजबूत करती है और ऐसे वातावरण का निर्माण करती है जिससे विद्यार्थी स्कूली शिक्षा के साथ–साथ अन्य सामाजिक गतिविधियों से जुड़ जाते हैं। इसके द्वारा सभी छात्रों की योग्यता का विकास किया जाता है जिससे वे अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकें; क्योंकि यह एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है, जिसमें मूल्य, ज्ञान प्रणाली, संस्कृति, संरचना के सभी स्तरों पर सृजन के माध्यम से सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किया जाता है; अर्थात् समावेशी शिक्षा अपने

*** पी–एच. डी.– शोध छात्र, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)।**

व्यापक अर्थों में विद्यार्थियों की विविधता को स्वीकार करने और उचित समर्थन प्रदान करने के संदर्भ में है, जिसके अनुसार शिक्षक को कक्षा में विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। इस प्रकार समावेशी शिक्षा की सफलता एवं गुणवत्ता शिक्षक के प्रशिक्षण पर निर्भर करती है। समावेशी कक्षा में पढ़ाने के लिए शिक्षक के पास ऐसे कौशल और ज्ञान की आवश्यकता होती है, जो उसे नियमित रूप से कक्षा तक व्यापक पहुँच प्रदान करने वाली रणनीतियों की योजना बनाने और उन्हें लागू करने में मदद करती है।

कक्षा में शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात के मानकों का भी ध्यान नहीं रखा जाता है, परिणाम स्वरूप शिक्षक विशिष्ट विद्यार्थियों पर अतिरिक्त ध्यान नहीं दे पाते। "विशिष्ट विद्यार्थियों के लिए बुनियादी ढ़ांचे की कमी और विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी के परिणाम स्वरूप समस्याएँ विद्यमान हैं।" (शाह, 2014; नागपाल एवं संगीता, 2012)। समावेशन की इस अवधारणा को प्राथमिक स्तर की कक्षा से ही आत्मसात कराया जाना चाहिए और इस संदर्भ में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

समावेशन मूल रूप से विविधताओं की स्वीकृति का एक सकारात्मक दृष्टिकोण है। दिव्यांगजनों को विकलांगता शारीरिक रूप से उतना नहीं प्रताड़ित महसूस कराता जितना कि उन्हें सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से; इस संदर्भ में कहा भी गया है कि "विकलांगता सामाजिक तौर पर निर्मित होती है" (गाताडे, 2013; कुमारी, 2013; खरलुखी, 2016)। विकलांग व्यक्तियों के लिए भेदभाव मुक्त और समान जीवन का स्वप्न साकार करने के लिए संस्थागत प्रबंधों और कानूनी प्रावधानों में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। अगर कोई समुदाय भौतिक, स्थापत्य, यातायात संबंधी या अन्य बाधाओं को बनाए रखता है तो वह समाज उन कठिनाइयों का निर्माण करता है, जो दिव्यांग–जन के लिए कष्टदायी है। अगर इस प्रकार की भौतिक बाधाएं न हो तो ये दिव्यांग–जन अपेक्षाकृत बेहतर काम कर सकते हैं। साथ ही, यह भी सामाजिक रूप से आवश्यक है– दिव्यांगजन के प्रति हमारी सोच में सकारात्मक बदलाव। विकलांग होना कोई अभिशाप नहीं है बस जरूरत है वातावरण को सुगम्य बनाने की। "सुगम्य भारत अभियान समग्र विकास की राह में उठाया गया एक सशक्त कदम है" (पाठक, 2016; गुप्ता, 2016)।

यदि दिव्यांगजन को सुगम्य माहौल दिया जाए तो वे स्वयं को और प्रभावी ढंग से विकसित करके अपने जीवन की बाधाओं पर जीत हासिल कर सकते हैं। दिव्यांगजन को सुगम्य वातावरण देना सिर्फ सरकार का ही नहीं बल्कि हम सबका भी दायित्व है। सुगम्यता की ओर बढ़ता कदम दिव्यांगजन के कल्याण की दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता है। समावेशी शिक्षा के लिए अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है। हम कह सकते हैं कि समावेशी शिक्षा तभी संभव है जब सभी बुनियादी ढांचे और सुविधाओं; जैसे कि विद्यालयों के लिए धन, शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करने और विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम अनुकूलन समर्थन प्रणाली प्रदान की जाए। "प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों का समावेशी शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है, जो समावेशी शिक्षा के प्रति संतोषजनक सकारात्मक प्रभाव दर्शाता है" (सिंह, 2005; फर्नांडिस, 2010; त्रिपाठी एवं अमन, 2012; कौर, 2018; जैन एवं यादव, 2017; सरकार एवं चौधरी, 2017)।

अधिकांश शिक्षक समावेशी शिक्षा के पक्ष में हैं, जिसके परिणाम स्वरूप समावेशी शिक्षा का क्रियान्वयन प्रभावी होता है और इसके द्वारा विशिष्ट विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास हो सकता है। "विशिष्ट विद्यार्थियों के शिक्षण–अधिगम हेतु शिक्षकों को और अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिससे उनकी समस्या का समाधान किया जा सके" (सिंह, 2005; फर्नांडिस, 2010; कुमार, 2011; त्रिपाठी एवं अमन, 2012; कौर, 2018; जैन एवं यादव, 2017; सरकार एवं चौधरी, 2017)।

समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण सकारात्मक है, जो महत्वपूर्ण रूप से वातावरण, व्यावसायिक प्रतिबद्धता और पाठ्यचर्या अनुकूलन से संबद्ध है और विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को प्रभावी अनुकूलन में मदद करता है। इससे ज्ञात होता है कि लोकतांत्रिक संगठनात्मक वातावरण, उच्च व्यावसायिक प्रतिबद्धता और आवश्यक पाठ्यचर्या अनुकूलन सभी एक साथ संबद्ध होकर समावेशी शिक्षा के

प्रति शिक्षकों में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास कर सकते हैं। शिक्षक विविध छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समावेशी स्कूलों में एक साथ स्कूल की गतिविधियों का प्रदर्शन करते हैं और एक दूसरे के साथ सहयोग करते हैं। यद्यपि, प्राथमिक विद्यालय के अधिकांश शिक्षकों ने यह भी माना कि विशेष शिक्षा की तुलना में विशिष्ट विद्यार्थियों को शिक्षित करने के लिए समावेशी शिक्षा एक प्रभावी विकल्प है; लेकिन समावेशी साधनों के माध्यम से एक प्रभावी तरीके से शिक्षा प्रदान करने में कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शारीरिक रूप से अक्षम विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों को लगता है कि समावेशी शिक्षा के लिए प्रदान किया गया बुनियादी ढ़ांचा उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए समावेशी शिक्षा में विद्यार्थियों को आवश्यक बुनियादी ढाँचा प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर सर्वेक्षण आवश्यक है। समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समावेशी विद्यालयों में उचित प्रशिक्षित शिक्षक, अध्ययन सामग्री और अनुकूली उपकरणों की उपलब्धता आवश्यक है।

शैक्षिक निहितार्थ :– संबंधित साहित्य समीक्षा से ज्ञात होता है कि समावेशी शिक्षा ने शिक्षण–अधिगम को सरल तथा प्रभावी बनाने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया है। समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में अब तक के उपलब्ध संबंधित साहित्य; जैसे कि सिंह (2005), चौधरी (2010), फर्नाडीस (2010), नागपाल एवं संगीता (2012), त्रिपाठी एवं अमन (2012), कुमारी (2013), गाताडे (2013), भारती (2014), वर्मा (2014), शाह (2014), सिंह एवं अग्रवाल (2015), खरखुली (2016), गुप्ता (2016), चड्ढा (2016), पाठक (2016), जैन एवं यादव (2017), मालकर (2017), सरकार एवं चौधरी (2017), कौर (2018) और यादव (2018) के अध्ययन पश्चात् पाया गया कि समावेशी शिक्षा के संदर्भ में अभी तक प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर ही शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया से संबंधित कार्य हुए हैं।

समावेशी शिक्षा विभिन्न आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों की शिक्षा प्रक्रिया के रूप में अपनी अनिवर्यता को सुनिश्चित करती है, जो शिक्षा के क्षेत्र में एक नया उपक्रम है और जिसमें विकलांग बच्चों को एक ही शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक और शैक्षिक वातावरण द्वारा गैर–विकलांग साथियों के साथ शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। किसी भी समाज के भविष्य का निर्धारण उसकी वर्तमान शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता पर केंद्रित होता है। समावेशी शिक्षा की प्रासंगिकता का सबसे महत्वपूर्ण कारण समानता का सामाजिक मूल्य है। समावेशी शिक्षा हाल ही में भारतीय शिक्षण–अधिगम प्रणाली से जुड़ा है। समावेशी शिक्षा के संप्रेषण माड्यूल के जरिये चलाये जा रहे सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम, मूल्यांकन के अधिकांश पैमाने पर खरा उतरा है। इसके अधिकांश प्रशिक्षण माड्यूल गुणवत्तापूर्ण हैं। आवश्यक है केवल इसके क्रियान्वित रणनीतियों में सुधार लाने की जिससे प्रशिक्षण कार्यक्रम को और अधिक बेहतर बनाया जा सके।

उपरोक्त निष्कर्षों से स्पष्ट है कि समावेशी शिक्षा से संबंधित कई शोध कार्य हुए हैं; किंतु माध्यमिक स्तर के विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एवं माध्यमिक स्तर के शिक्षक की अभिवृत्ति से संबंधित शोध कार्य सीमित हैं। उपरोक्त शोध कार्यों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि भारत में समावेशी शिक्षा से संबंधित अध्ययन काफी सीमित हैं, इक्कीसवीं सदी के प्रथम एवं द्वितीय दशक में समावेशी शिक्षा से संबंधित कुछ सार्थक एवं महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं; किंतु माध्यमिक स्तर पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से संबंधित अध्ययन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :– समावेशी शिक्षा केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि एक माध्यम है, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते हैं। उक्त अध्ययन के अंतर्गत समावेशी शिक्षा से संबंधित शोध कार्यों के विश्लेषण के साथ समीक्षा भी की गयी। साहित्य की समीक्षा से यह स्पष्ट है कि भारत में माध्यमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा से संबंधित अध्ययन का अभाव है। अतः शोध की प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए शोधार्थी द्वारा शोध की आवश्यकता के संदर्भ पर प्रकाश डालकर शोध कार्य की प्रासंगिकता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। शोध कार्य के अंतर्गत माध्यमिक स्तर के विशिष्ट शिक्षा शिक्षकों एवं विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों से संबंधित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया संबंधी समस्याएं, मूल्यांकन संबंधी समस्याएं, समावेशी शिक्षा की चुनौतियाँ, प्रभावी बनाने के उपाय एवं

समावेशी शिक्षा के प्रति माध्यमिक स्तर के विशिष्ट शिक्षा–शिक्षक एवं विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के अभिवृति से संबंधित अध्ययन किया गया है।

संदर्भ सूचीः–

1. कुमारी, आर. (2013, अप्रैल). संपादकीय. *योजना, 57*(04), 05.
2. कौर, एस. (2018). *पर्सपेक्टिव ऑफ टीचर टूवर्ड्स इंक्लुसिव एजुकेशन इन रिलेशन टु ऑर्गनाइजेशनल क्लाइमेट, प्रोफेशनल कमिट्मेंट एंड करीकुलर एडॉप्शन इन गवर्नमेंट स्कूल ऑफ चंडीगढ़* (प्रकाशित शोध–प्रबंध). पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़.
3. खरलुखी, बी. (2016). ए स्टडी ऑन इम्प्लीमेंटेशन ऑफ इंक्लूसिव एजुकेशन एट दि एलिमेंट्री लेवल इन दि सलेक्टेड नार्थ–ईस्टर्न स्टेट्स. *इंडियन एजुकेशनल रिव्यू, 54*(2), 98–103.
4. गाताडे, एस. (2013, अप्रैल). विकलांगता एवं प्रौद्योगिकी. *योजना. 57*(04), 29–31.
5. गुप्ता, एस. (2016, मई). विकलांगता से आगे सुगमता और कल्याण. *योजना. 60*(5), 22–24.
6. चड्ढा, ए. (2016, जनवरी). भारत में समावेशी शिक्षा का स्वरूप. *योजना. 60*(01), 35.
7. चौधरी, आर. (2010). दि टीचिंग–लर्निंग कंडिशन्स फॉर क्वालिटी एजुकेशन इन इंक्लूसिव स्कूल्स. *जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन. 36*(1), 76–83.
8. जैन, सी. एवं यादव, ए. (2017). उच्च माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति. *परिप्रेक्ष्य,* नई दिल्ली, *24*(2), 53–66.
9. नागपाल, आर. एवं संगीता. (2012). इंक्लूजन इन एजुकेशन : रोल ऑफ टीचर्स. *जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, 38*(1), 59–70.
10. पाठक, ए. (2016, मई). सुगम्य भारत अभियान निर्बाध वातावरण और सशक्तीकरण की राह. *योजना. 60*(5), 28–29.
11. फर्नांडिस, ए. के. (2010). *ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ इंक्लूसिव एजुकेशन इन दि स्टेट ऑफ गोवा* (प्रकाशित शोध–प्रबंध). शिक्षा विभाग, शिवजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर.
12. भारती (2014). कोलाब्रेशन इन इंक्लूसिव एजुकेशन. *दि प्राइमरी टीचर, 34*(3), 70–78.
13. मालकर, एन. (2017). *इम्प्लीमेंटेशन ऑफ इंक्लूसिव एजुकेशन प्रोग्राम अंडर सर्वशिक्षा अभियान एन एवैलूएटिव स्टडी इन बारपेटा डिस्टिक.* (प्रकाशित शोध–प्रबंध). गुवाहटी विश्वविद्यालय, असम.
14. वर्मा, ए. के. (2014). समावेशी शिक्षा. *भारतीय आधुनिक शिक्षा, 35*(2). 24–29.
15. यादव, ए. (2018). समावेशी शिक्षा प्रतिमान में कक्षा शिक्षण–अधिगम, *भारतीय आधुनिक शिक्षा, 39*(1), 106–114.
16. शाह, जे. ए. पी. (2014). राइट टू एजुकेशन ऑफ दि डिसएबल्ड. *जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, 40*(3), 5–29.
17. सरकार, बी. एवं चौधरी, एस. आर. (2017). *एटिट्यूड ऑफ सेकेंडरी स्कूल टीचर्स टुवर्ड्स इंक्लूसिव एजुकेशन एजुट्रैक्स* (ए मंथली स्केनर ऑफ ट्रेंड इन एजुकेशन), *16*(6), 42–47.
18. सिंह, ए. (2005). *इफेक्टिवनेस ऑफ इंक्लूसिव एजुकेशन ऑफ छत्तीसगढ़ : एन एवैलुएटिव स्टडी, कल्याण महाविद्यालय, भिलाई,* (प्रकाशित शोध–प्रबंध). दुर्ग.
19. सिंह, वाई. पी. एवं अग्रवाल, ए. (2015). *प्रोब्लम एंड प्रोस्पेक्ट्स ऑफ इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया*, सम्मेलनः शिक्षा पर तीसरा वैश्विक शिखर सम्मेलन, मलेशिया.
20. त्रिपाठी, वी. एन. एवं अमन, ए. के. (2012). सर्व शिक्षा अभियान के तहत नियुक्त विशेष अध्यापकों का विकलांग बालकों की शिक्षा में योगदान. *परिप्रेक्ष्य,* नई दिल्ली, *19*(2), 35–48.

उच्च शिक्षा का संदर्भ और योग

बजरंग भूषण*

सारांश :– *'ज्ञानम् मनुजस्य तृतीय नेत्रम्' , और यह तीसरा नेत्र खुलता जाता है मनुष्य के क्रमशः ज्ञान अर्जन करने के साथ और इस ज्ञानार्जन की शुरुआत होती है मनुष्य के शिक्षा प्रारम्भ करने के साथ। यूँ तो मनुष्य जन्म के साथ ही शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ कर देता है किन्तु उसके व्यवस्थित शिक्षा की शुरुआत तब होती है जब वह विद्यालय में प्रविष्ट होता है। शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित योग्यता (शक्ति) का विकास करके उसे सही अर्थों में एक पूर्ण मानव बनाती है।*

मनुष्य विद्यालयी शिक्षा एक क्रम में प्राप्त करता है। ये क्रम हैं – प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा। जहाँ प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत मनुष्य मुख्यतः पढ़ना–लिखना सीखता है और माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत चीजों के प्रति उसकी समझ का विकास होता है वही उच्च शिक्षा के अन्तर्गत मनुष्य के दृष्टिकोण एवं व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्तित्व विकास का मनुष्य के जीवन में बड़ा ही महत्व होता है क्योंकि मनुष्य का व्यक्तित्व ही उसे समाज में पहचान दिलाता है। जिस समय मनुष्य उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा होता है उस समय वह किशोरावस्था में होता है और हरलॉक के अनुसार यह अवस्था बेहद तनावपूर्ण एवं तूफानों भरी होती है। इस अवस्था में मनुष्य का चित्त बड़ा ही अस्थिर होता है, जो व्यक्तित्व विकास में बाधक होता है। 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'। योग मनुष्य के अस्थिर चित्त को स्थिर करके उसके व्यक्तित्व का उचित विकास करता है। योग में अनेक क्रिया–कर्म हैं जो मनुष्य के तन और मन के बीच सन्तुलन स्थापित करते हैं। इस प्रकार उच्च शिक्षा के दौरान जब मनुष्य के व्यक्तित्व एवं अन्य पक्षों का विकास हो रहा होता है, योग अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा गया है (ज्ञानम् मनुजस्य तृतीयं नेत्रम्)। नेत्र का मानव जीवन में बड़ा महत्व होता है। नेत्रहीन व्यक्ति इस संसार के क्रिया–कलापों एवं ज्ञान–विज्ञान से अनभिज्ञ रहता है। फलतः समुचित ज्ञान के अभाव में उसका स्वस्थ (उपयुक्त) विकास नहीं हो पाता है। व्यक्ति में ज्ञानार्जन के विकास के साथ ही उसका तीसरा नेत्र खुलता जाता है अर्थात् उसमें ज्ञान प्राप्ति हेतु एक अतिरिक्त इन्द्रिय का विकास होता जाता है। और व्यक्ति में इस ज्ञानार्जन की शुरूआत होती है उसके शिक्षा प्रारम्भ करने के साथ। इस प्रकार शिक्षा का व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। यूँ तो जन्म के साथ ही मनुष्य अनौपचारिक रूप से अपने परिवार एवं समाज से शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ कर देता है (किन्तु यह शिक्षा अव्यवस्थित होती है और इसका शैक्षिक सिद्धान्तों से कोई लेना–देना नहीं होता है) किन्तु उसके व्यवस्थित शिक्षा की शुरूआत तब होती है जब वह विद्यालय में प्रविष्ट होता है।

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित योग्यता (शक्ति) का विकास करके सही अर्थों में उसे एक पूर्ण मानव बनाती है। शिक्षा व्यक्ति के लिए है और व्यक्ति समाज के लिए है। शिक्षा व्यक्ति में मानवता का प्रस्फुटन करती है। शिक्षा का उद्देश्य ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना है जो मानवता के काम आये। व्यक्ति एक इकाई है जो समाज के लिए कार्य करता है। ससीम से असीम की ओर बढ़ना प्रत्येक व्यक्ति का जीवन लक्ष्य होना चाहिए। व्यक्ति के भीतर असीमित सम्भावनाएँ छिपी रहती है। ज्ञान अपनी सम्पूर्णता में व्यक्ति के भीतर अवस्थित है किन्तु यह अज्ञान के पर्दे से आवृत्त है। इस अज्ञानता के पर्दे के अनावरण का प्रयास ही शिक्षा है।

व्यक्ति के जीवन में उसके व्यवस्थित शिक्षा की शुरूआत तब होती है जब वह विद्यालय में प्रवेश लेता है। विद्यालय शिक्षा के केन्द्र एवं साधन होते हैं जो वस्तुतः शिक्षा के माध्यम से सामाजिक उद्देश्यों की

***सहायक आचार्य, डिपार्टमेंट ऑफ फॉउण्डेशन्स ऑफ एजूकेशन, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (सम विश्वविद्यालय), दयालबाग़, आगरा– 282005 (उ०प्र०)**

पूर्ति करते हैं। व्यक्ति का समाजीकरण शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य है जिस हेतु विद्यालयों की स्थापना की जाती है। विद्यालयों की अपनी शिक्षण वस्तु (पाठ्यक्रम) होती है जिसके निर्माण का आधार सामाजिक उद्देश्य होते हैं। इस विषयवस्तु के माध्यम से विद्यालय व्यक्ति को शिक्षा देकर उसका समाजीकरण करते है।

मनुष्य विद्यालयी शिक्षा एक क्रम में प्राप्त करता है ये क्रम हैं–प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा। प्राथमिक शिक्षा व्यक्ति के शैक्षिक जीवन का आधार स्तम्भ होती है। प्राथमिक शिक्षा के आधार पर ही व्यक्ति के भावी जीवन का कँगूरा खड़ा होता है। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा व्यक्ति के जीवन की रीढ़ है। प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत मनुष्य मुख्यतः पढ़ना–लिखना सीखता है जो भावी शिक्षा का आधार बनती है। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते हुए व्यक्ति का पहली बार सामाजिक संप्रत्ययों से पाला पड़ता है।

जब व्यक्ति के माध्यमिक शिक्षा की शुरूआत होती है तब तक वह अनेक सामाजिक संप्रत्ययों को सीख चुका होता है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते हुए व्यक्ति की चीजों के प्रति समझ का विकास होता है। माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के उपरान्त व्यक्ति उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालयी शिक्षा) में प्रविष्ट होता है। जिस वक्त बालक विश्वविद्यालयी शिक्षा में प्रवेश लेता है, वह किशोरावस्था में होता है। इस समय बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास तो लगभग हो चुका होता है किन्तु उसका संवेगात्मक विकास तेजी से हो रहा होता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **हरलॉक** के अनुसार यह अवस्था बेहद तनावपूर्ण एवं तूफानों भरी होती है। इस अवस्था में मनुष्य का चित्त बड़ा ही अस्थिर होता है। यह वह अवस्था होती है जब व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास हो रहा होता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व ही उसकी सामाजिक पहचान बनती है। बालक के चित्त की अस्थिरता उसके व्यक्तित्व विकास में बाधक बन जाती है।

उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम समय के साथ उन्नत होता जाता है तथा उसमें क्लिष्टता आती जाती है। इस पाठ्यक्रम को ग्रहण करने के लिए बालक के भीतर गम्भीरता एवं संकेन्द्रता होनी चाहिए। किन्तु इस समय चित्त की अस्थिरता बालक को गम्भीरता एवं संकेन्द्रता से वंचित करती है। ज्ञान प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की अपने निर्धारित विषयों के प्रति उपयुक्त अनुक्रिया आवश्यक होती है अर्थात् ज्ञान प्राप्ति हेतु इन्द्रियों को अपने विषयों से तालमेल बिठाना आवश्यक होता है। उच्च शिक्षा के दौरान व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़ा होना होता है अर्थात् उसे जीविकोपार्जन के स्रोत ढूँढ़ने होते है। उसे समाज में अपनी अलग पहचान बनानी होती है। चूँकि आज के समाज में जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हो जाने के कारण जीविकोपार्जन के स्रोतों को प्राप्त करने की दौड़ बहुत कठिन हो चुकी है अतः बालक इस दौरान संघर्ष करते हुए असफलता मिलने पर बेहद तनाव एवं निराशा में चला जाता है।

उच्च शिक्षा के दौरान जब बालक किशोरावस्था में होता है तो उसके शरीर से अनेक हार्मोन्स का स्रावण होता रहता है। ये हार्मोन्स बालक के मन पर बहुत प्रभाव डालते हैं। शरीर और मन के बीच परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है अर्थात् शरीर का मन पर और मन का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जितना सत्य यह है कि ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क (मन) का विकास होता है।'' उतना ही सत्य यह भी है कि ''स्वस्थ मन ही स्वस्थ शरीर का आधार है।'' बालक के व्यक्तित्व के समुचित विकास हेतु उसके शरीर एवं मन के बीच सन्तुलन होना परमावश्यक है।

आज का युग वैश्विक युग है। आज विश्व के राष्ट्रों का भूमण्डलीकरण हो चुका है। आज का युग प्रतिस्पर्धी युग है। आज के समाज में अर्थ की प्रधानता हो चुकी है। आज बालक की सफलता का मानदण्ड आर्थिक स्रोतों पर उसका कब्जा है। आज विश्वविद्यालयों में प्रायः रोजगार परक शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। आज उच्च शिक्षा में मूल्य परक शिक्षा का अभाव हो गया है। फलतः बालक के व्यक्तित्व में मूल्यों का क्षरण दृष्टिगत हो रहा है।

मूल्य हमारी सांस्कृतिक विरासत हैं। मूल्य हमारी संस्कृति के अमूल्य धरोहर हैं। मूल्य व्यक्ति को समाज में जीने का तरीका सिखाते हैं। समाज में व्यक्ति के जीने का तरीका जितना ही मूल्यपरक होगा वह व्यक्ति उतना ही संतुष्ट, आनन्दित एवं सुखी होगा। मूल्य व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य स्थापित

करते हैं। उच्च शिक्षा के दौरान जब बालक किशोरावस्था में होता है तो जैविक आदि कारणों से उसका सामाजिक मूल्यों से जबरदस्त संघर्ष होता है। इस समय किशोर पुराने सामाजिक मूल्यों को धता बताते हुए समाज में नये मूल्यों की स्थापना करना चाहता है, जिससे उसे सामाजिक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। फलतः वह तनाव एवं बेचैनी तथा अस्थिरता की अवस्था में पहुँच जाता है।

अष्टांग योग के प्रणेता महर्षि पतंजलि की रचना पातंजल योगसूत्र में कहा गया है कि 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध' (चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है)। योग मनुष्य के अस्थिर चित्त को स्थिर करके उसके व्यक्तित्व का उचित विकास करता है। योग में अनेक क्रियाकर्म हैं जो मनुष्य के तन और मन के बीच संतुलन स्थापित करते हैं। गीता में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं– ''मन बड़ा चंचल होता है, उसे वश में करना प्रवहमान वायु को वश में करने जैसा है''–

''चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।''

प्रत्युत्तर में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –''निः सन्देह मन बड़ा चंचल होता है, उसे अंकुश में लाना बड़ा दुष्कर कार्य है पर अभ्यास एवं वैराग्य से उसे वश में किया जा सकता है''–

''असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।''

मन की चंचलता समाप्त होने पर ध्यान की निष्पत्ति होती है। ध्यान की धरा पर अवबोध के बीज का अंकुरण होता है। ध्यान (एकाग्रता) की स्थिति में मन के सम्मुख जिन ज्ञान कणों को प्रस्तुत किया जाता है, मन उन्हें ग्रहण कर लेता है। ध्यान अवबोध की आदर्श दशा है। अवबोध का दूसरा स्तम्भ पूर्वार्जित विषय की पुनर्लब्धि अर्थात् स्मृति है।

वस्तुतः योग जीवन जीने की एक कला है। योग एक दर्शन है जो हमें जीवन जीने का नया दृष्टिकोण, नयी दृष्टि प्रदान करता है। मनुष्य अपने जीवन जीने का दृष्टिकोण, अपनी जीवन दृष्टि तब विकसित कर रहा होता है, जब वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा होता है। अतः इस स्तर पर एक उपयुक्त जीवन दृष्टि, एक उपयुक्त जीवन–दर्शन के समुचित विकास में योग बालक की पर्याप्त सहायता कर सकता है। इस प्रकार उच्च शिक्षा के दौरान जब मनुष्य के व्यक्तित्व एवं अन्य पक्षों का विकास हो रहा होता है, योग अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

योग हमें जीवन जीने की कला सिखाता है। आज जो उच्च शिक्षा बच्चों को दी जा रही है उसका मुख्य जोर उन्हें रोजगारपरक बनाने पर होता है न कि उन्हें जीवन जीने की कला सिखाने पर। बिना जीवन जीने की उपयुक्त कला सीखे बच्चा वास्तविक मनुष्य, सम्पूर्ण मानव, नहीं बन सकता है। आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे मन की एकाग्रता एवं आत्मविश्वास बढ़े तथा बालकों का चारित्रिक गठन हो। उनके भीतर सद्विचार और सद्वृत्ति का संस्कार फूटे। वस्तुतः चरित्र ही वास्तविक मनुष्य, सम्पूर्ण मानव का निर्माण करता है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो आर्थिक समृद्धि, सामाजिक समरसता तथा चारित्रिक दृढ़ता में समन्वय स्थापित कर सके। अच्छी शिक्षा बालक को उदार बनाकर उसके भीतर, दया, करुणा, सेवा, परोपकार आदि उदात्त भावों को जन्म देती है। बालक को कुरीतियों को नष्ट करने की दृढ़ मानसिकता देते हुए उसे मानवता के कल्याण में लगा देती है। इस लिहाज से विश्वविद्यालयी स्तर पर योग शिक्षा काफी महत्त्वपूर्ण है।

योग बालक के शरीर और मन के बीच समन्वय स्थापित करता है। उच्च शिक्षा के दौरान किशोरावस्था में बालक के शरीर से बहुत से ऐसे हार्मोन्स का स्रावण होता है जिससे उनका सांवेगिक स्तर प्रभावित होता है। योग इन हार्मोन्स के स्रावण का स्तर उपयुक्त बनाये रखता है। यौगिक क्रिया कर्म बालक की सोच को सकारात्मक बनाये रखते हैं। बालक के मानसिक अनुशासन हेतु 'प्राणायाम' और 'ध्यान' महत्त्वपूर्ण हैं। योग के आठों अंगों– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि–विश्वविद्यालयी स्तर पर बालक के उपयुक्त विकास में उसकी भरपूर सहायता कर सकते हैं। जहाँ यम और नियम उसे संतोषी, तपी, संयमी आदि बनाते हैं वहीं आसनों से उनकी शारीरिक शक्ति जबकि

प्राणायाम से मानसिक शक्ति एवं एकाग्रता का विकास होता है। इसी प्रकार प्रत्याहार और धारणा से वह अपनी सभी इन्द्रियों को उनके अपने उपयुक्त विषयों में लगाकर अपने भीतर उपयुक्त सकारात्मक विचारों का सृजन करता है। ध्यान और समाधि की अवस्था उसका पूरा संकेन्द्रण कर देती है।

मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का समुच्चय है। योग का उद्देश्य इन तीनों पक्षों का समुचित विकास करना होता है। योग व्यक्ति को उसकी आत्म पहचान कराने में मदद करता है। शिक्षा की बात की जाये तो योग बालक की पठन आदतों में सुधार करती है। योग चिंता, तनाव और हताशा को कम करता है।

विश्वविद्यालयी स्तर की शिक्षा पर दृष्टिपात किया जाये तो हमें दृष्टिगत होता है कि आज विश्वविद्यालयी स्तर पर सर्वत्र योग शिक्षा के अभाव का सन्नाटा पसरा हुआ है। हमारे होनहार छात्र उस यौगिक क्रिया कर्म से सर्वथा अपरिचित हैं जो उनकी भरपूर सहायता करते हैं। हालाँकि यू0जी0सी0 आज विश्वविद्यालयी स्तर पर योग शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाने पर विचार कर रही है किन्तु अभी उसकी मेहनत रंग नहीं ला पा रही है।

हम सब शैक्षिक जगत के लोग अपने प्रयासों से योग के माध्यम से विश्वविद्यालयी स्तर पर इसे बच्चों को सिखाकर उन्हें सम्पूर्ण मानव बनने के मार्ग पर उनका मार्गदर्शन कर सकते हैं। हमें खुद प्रयास करना चाहिए कि जिससे योग शिक्षा पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बन जाये। जब तक ऐसा नहीं है, तब तक हमें अलग से विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए योग शिक्षा की लौ को स्वयं जलायें रखना होगा। दयालबाग़ के शिक्षा संकाय में मेरे प्रयासों से इसकी शुरुआत हो चुकी है।

संदर्भ–सूची :–

1. ओड़, डॉ. लक्ष्मीलाल के., शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2004।
2. चौबे, सरयू प्रसाद एवं चौबे, अखिलेश, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, 2005।
3. जैन, राजीव, सम्पूर्ण योग विद्या, मंजुल पब्लिशिंग हाऊस, भोपाल, 2011।
4. दशोरा, नन्दलाल, पातंजल योग सूत्र (व्याख्या एवं अनुवाद), रणधीर प्रकाशन हरिद्वार, 2001
5. पाण्डेय, रामशकल, शिक्षा–दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2003।
6. Hilgard, E.R., Atkinson, R.L., R.C. Harcourt Brace Jovanvich, New York, 1979.
7. Mortis, T. and Tomporowski, P., Exercise and Cognitive function, Michingan, Wiley-Blackwell, 2009.
8. Ross, A., & Thomas, S., The Health Benefits of Yoga and Enercise ; A Review of Comparison Studies, The Journal of Alternative and Complementary Medicine, 16(1), 3-12, 2010.
9. www.centeredyoga.com
10. www.yogaalliance.org

शिक्षक-शिक्षा में सार्वभौमिक मूल्यों की प्रासंगिकता

डॉ. अविनाश पारीक*

शोध सारांश :– आज यह महसूस किया जा रहा है कि शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना, मानवीय आचरण एवं प्रवृत्तियों के विकास, राष्ट्रीय भावना व राष्ट्रीय चरित्र निर्माण, शोध अध्ययन की गुणवत्ता, संवेदनशीलता एवं सामाजिक सरोकारों से युक्त नई युवा पीढ़ी का निर्माण और भ्रष्टाचार विहीन व्यवस्थाओं के लिए आवश्यक अपेक्षित वातावरण को बनाने एवं समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने में सफल नही हो पाई है। भारतीय शिक्षा के संवाहक एवं राष्ट्र निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित शिक्षकों के सामने मानव मूल्यों को बचाने का संकट विकट समस्या बन गया है। आज शिक्षा, मीडिया और व्यवस्थाएँ सार्वभौमिक एवं वैश्विक रूप ले रहें है। मूल्य आधारित शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में राष्ट्रीयता का विकास करना रहा है। भारतीय मानवशास्त्री तथा मानवतावादी विद्वानों ने मानवीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था को महत्व दिया है। सुखद जीवन में भविष्य को सुनिश्चित करने हेतु मानव मूल्यों की शिक्षा अपरिहार्य है। इस हेतु बालक एवं बालिकाओं को भविष्य के लिए तैयार करने हेतु मूल्य परक शिक्षा प्रदान की जाये।वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों से समन्वित अध्यापक शिक्षा ही विश्व शान्ति की अभिलाषा को साकार कर सकती है। आज के शिक्षक व विद्यार्थी भारतीय संस्कृति, सदाचार और नैतिक मूल्यों को आत्मसात् करने के बजाए भौतिकता के आकर्षण के पीछे भागते दिखाई देते है। मूल प्रश्न यह है कि शिक्षा क्या है? और शिक्षा क्यों? अर्थात् शिक्षा का मूल मंतव्य क्या है? इसके लिए शिक्षा, समाज और सम्प्रेषण माध्यमों को भोगोन्माद, लाभोन्माद, कामोन्माद, अस्थिर, अनिश्चित, समस्याकारी कार्य–व्यवहार आचरण से मुक्त करने की आवश्यकता है। मानव इस धरती पर अनन्त काल तक सुख, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्वपूर्वक जी सके। इसके लिए जरूरी है आचार–संहिताओं, विधि–विधान–संविधान, व्यवस्थाओं और मानवीय कार्य व्यवहार की पहचान कर उसे शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाए।

संकेताक्षर :- भोगोन्माद, लाभोन्माद, कामोन्माद, वैश्विक सम्प्रेषणा, सार्वभौमिक, सहअस्तित्व, सर्वशुभ।

प्रस्तावना :- स्वतन्त्रता के बाद भारत में शिक्षा संस्थाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में आज भारत अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करने जा रहा है। यह केवल अधोसंरचनात्मक विकास नही है, गुणवत्ता, सुविधाएँ एवं विषयों की विविधता का भी विकास हुआ है।[1] भारत की प्रतिभाएँ आज वैश्विक स्तर पर विशिष्ट भूमिकाओं का निर्वाह कर रही है।[2] फिर भी आज यह महसूस किया जा रहा है कि शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना, मानवीय आचरण एवं प्रवृत्तियों के विकास, राष्ट्रीय भावना व राष्ट्रीय चरित्र निर्माण, शोध अध्ययन की गुणवत्ता, संवेदनशीलता एवं सामाजिक सरोकारों से युक्त नई युवा पीढ़ी का निर्माण और भ्रष्टाचार विहीन व्यवस्थाओं के लिए आवश्यक अपेक्षित वातावरण को बनाने एवं समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने में सफल नही हो पाई है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के भौतिकवादी युग में द्रुतगति से होने वाले आधुनिक विकास, विभिन्न प्रकार के संचार माध्यमों के बढ़ते आकर्षण एवं प्रभाव तथा जनसंख्या विस्फोट व नगरीकरण के कारण मानव की जीवन शैली बहुत प्रभावित हुई है। इसके कारण आज मानव मूल्यों पर संकट के बादल छा गए है।

सामाजिक जीवन में समरसता का स्थान कटुता ने ले लिया है। धनवान व बलवान के द्वारा निर्धन व निर्बल का शोषण बढ़ता जा रहा है। बढ़ती स्वार्थपरता के कारण मानव अवसरवादी, आत्म केन्द्रित, चाटुकार तथा कर्त्तव्यबोध से विमुख होकर मानवीयता से दूर हो गया है। इसका प्रमुख कारण है – मानव चेतना विकास मूल्य शिक्षा का अभाव। भारतीय चिन्तकों एवं शिक्षाविदों द्वारा 'व्यक्तित्व विकास के महत्वपूर्ण

***विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय, आई.ए.एस.ई. (मानित विश्वविद्यालय), गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर (राजस्थान)।**

आयाम' के रूप में स्थापित वर्तमान शिक्षा व्यवस्था भी आज इसके प्रभाव से नहीं बच पाई है। भारतीय शिक्षा के संवाहक एवं राष्ट्र निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित शिक्षकों के सामने मानव मूल्यों को बचाने का संकट विकट समस्या बन गया है। अपने ज्ञान व व्यवहार से छात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली शिक्षकों की प्रतिबद्धता अब स्थानान्तरित होकर मध्यान्ह भोजन (पोषाहार) व्यवस्था और उसके वितरण तथा सरकारी प्रक्रियाओं की कागजी आपूर्ति में सिमट गई है। अतः बाल केन्द्रित शिक्षा का उद्देश्य उनके लिए गौण हो गया है। उपयुक्त शैक्षिक प्रबन्धन के अभाव और शिक्षकों की शिक्षणेत्तर कार्यो में बढ़ती संलग्नता के कारण न केवल शिक्षण अधिगम का गुणात्मक स्तर प्रभावित हुआ है बल्कि शिक्षा का मूल उद्देश्य 'बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास' अधूरा रह गया है। इससे शिक्षकों की शिक्षकीय अभिवृत्ति और मूल्यों पर भी प्रभाव पड़ा है। उनके अन्दर न कोई सृजनात्मक चिन्तन है और न ही शिक्षक बनने का आत्म सम्मान ।[3]

वैश्विक स्तर पर विकास की रफ्तार और शिक्षा के बहु आयामी स्वरूप ने मानव जाति में नई महत्वाकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं को जाग्रत कर दिया है। विज्ञान–तकनीकी के विकास की तीव्र गति एवं मानव जाति में वैश्विक सम्प्रेषणा के अकल्पित विस्तार ने इस विराट विश्व को समेट कर सभी की पहुँच तक सीमित कर दिया है।[4] आज शिक्षा, मीडिया और व्यवस्थाएँ सार्वभौमिक एवं वैश्विक रूप ले रहें है। एक ऐसी वैश्विक सभ्यता–संस्कृति के विकास के संकेत मिल रहे है, जिसमें समुदाय चेतना पर आधारित विचार, शिक्षा और व्यवस्थाएँ गौण हो जाएंगी। संकीर्णताओं पर आधारित कट्टरता, अंधविश्वास, रूढ़ियाँ, समुदाय–साम्प्रदायिक पहचान अपना अस्तित्व नहीं बचा पायेंगे। आज हर गाँव एक विश्व और विश्व एक गाँव बन रहा है। यद्यपि गति एवं विकास में तालमेल के अभाववश सभ्यता–संस्कृति विध्वंस के नये संकट भी पैदा हुए है।[5] ये इतने भयाभय एवं गहन है कि यकायक यह सन्देह भी होने लगता है कि क्या प्रकृति अपने सन्तुलन में रह भी पायेगी? क्या कहीं धरती रोगग्रस्त होकर मृत्यु का ग्रास तो नहीं बन जायेगी? क्या मानव जाति का अस्तित्व ही तो समाप्त नही हो जाएगा? अतः यह स्पष्ट है कि वैश्विक परिवर्तनों, चारित्रिक एवं मानव मूल्यों के पतन के परिप्रेक्ष्य में आगामी सम्भावनाओं एवं आसन्न संकटों का कठोरता के साथ पैनी दृष्टियों से समीक्षा एवं मूल्यांकन की आवश्यकता है।

मूल्य आधारित शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में राष्ट्रीयता का विकास करना रहा है। संकीर्ण तथा विकृत अन्तर्राष्ट्रीयता ने राष्ट्र–राष्ट्र में, मानव–मानव में विभेद कर दिया है और महायुद्धों की ज्वाला में झोंक दिया जिससे जीवन की निरन्तरता समाप्त हो गई। प्रसिद्ध दार्शनिक **बरट्रेण्ड रसेल ने लिखा है कि "विश्व शान्ति का न होना हमारे युग की सबसे खतरनाक बुराई है, मद्यपान, व्यापारिक बेईमानी या अन्य किसी बुराई की अपेक्षा अधिक खतरनाक है।"** मानव मस्तिष्क युद्ध के लिए उद्यत रहता है अतः मानव–मस्तिष्क को शान्ति के लिए प्रशिक्षित किया जाना अपेक्षित है। यह कार्य शिक्षा से ही सम्भव हो सकता हैं। इस प्रकार वर्तमान सन्दर्भ में मूल्य आधारित शान्ति शिक्षा तथा शान्ति के लिए शिक्षा, दोनों रूपों पर विचार वांछित है। यदि धैर्य एवं गम्भीरता के साथ मानव हित की दृष्टि से सोचा जाये तो यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि युद्ध का न होना अनिवार्यतः शान्ति नही है, शान्ति हो भी सकती है तथा नहीं भी। युद्ध न होने का अर्थ व्यक्तियों में सदैव ही समरसता, मधुर सम्बन्ध हों यह आवश्यक नही है। शान्ति के समर्थकों ने सदैव ही शान्ति लाने या स्थापित करने के प्रयत्नों को सतत् बढ़ाया है, उन्होंने सामाजिक–आर्थिक बुराईयों को मिटाने में योगदान दिया है। गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह की अवधारणा इस सन्दर्भ में मील का पत्थर है। धरती के गर्भ में छिपकर, गोपनीय तरीके से व्यक्ति शान्ति के प्रयत्न करें यह गाँधी जी को कदापि स्वीकार्य नहीं था।

भारतीय मानवशास्त्री तथा मानवतावादी विद्वानों ने मानवीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था को महत्व दिया है। यह केवल मानव के 'ऐहिक जीवन' सिद्धान्त पर विशेष बल देता है, जबकि हमारा भारत ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' मूल्य का एक बड़ा पक्षधर माना जाता है जिसके द्वारा मानव जाति का समग्र रूप में कल्याण हो तथा जिसके मूल से ईमानदारी, सहयोग, समानता, भ्रातृत्व भाव, सहानुभूति, सह अस्तित्व एवं शान्ति मूल्यों का समावेश हो। जिसके द्वारा शोषण रहित मानव समाज तथा युद्ध रहित विश्व समाज की स्थापना की जा सके, तब ही विश्व –शान्ति, विश्व –कल्याण, विश्व –बन्धुत्व, सम्पूर्ण मानव जाति की भलाई

आदि विशिष्ट मूल्यों के संचरण द्वारा विश्व मानव जाति के उत्थान एवं कल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया जा सकेगा। इक्कीसवीं सदी का आगमन हो गया है। ज्ञान व विज्ञान में प्रगति हो रही है। वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकों, चिकित्सकों, साहित्यकारों एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की उपलब्धियाँ सन्तोषजनक रही है। फिर भी मानव के जीवन मूल्यों में आस्था डगमगा गयी है, विश्वास लुप्त हो रहा है तथा नैतिकता का समाज में अन्त–सा प्रतीत होने लगा, यह सब सामाजिक मूल्यों के ह्रास के कारण हुआ है। दूरदर्शन जो शैक्षिक साधनों का एक महत्वपूर्ण साधन है, आज उसी के कार्यक्रमों के दर्शन–श्रवण ने हमारे सामाजिक जीवन को कृत्रिमता की ओर जाने के लिए विवश कर दिया है। इसी से वास्तविक जीवन मूल्यों का पतन होकर मानवीयता कुण्ठित होती जा रही है। इसको रोकने के प्रयास करने होंगे तथा नैतिक मूल्यों रहित मानदण्डों की रचना करनी होगी। सुखद जीवन में भविष्य को सुनिश्चित करने हेतु मानव मूल्यों की शिक्षा अपरिहार्य है। इस हेतु बालक एवं बालिकाओं को भविष्य के लिए तैयार करने हेतु मूल्य परक शिक्षा प्रदान की जाये। जिसने मानव जीवन में मूल्यों की आवश्यकता को नितान्त आवश्यक बना दिया है।

वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों से समन्वित अध्यापक शिक्षा ही विश्व शान्ति की अभिलाषा को साकार कर सकती है। आज के शिक्षक व विद्यार्थी भारतीय संस्कृति, सदाचार और नैतिक मूल्यों को आत्मसात् करने के बजाए भौतिकता के आकर्षण के पीछे भागते दिखाई देते है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रारम्भ से बालकों में अच्छी आदतों, संस्कारों एवं मानवीय मूल्यों की भावनाओं को समावेशित करने का प्रयास किया जाए। शायद इसी आवश्यकता को महसूस करते हुए **महान शैक्षिक विचारक जे. कृष्णमूर्ति एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आधारशीला रखने को कृत संकल्पित हुए जो विद्यार्थी को वास्तविकता का बोध कराते हुए प्रेम, करूणा, प्रज्ञा, संवेदनशीलता व अंतः ज्ञान आदि गुणों से युक्त बनाए। मानवीय मूल्यों से समन्वित शिक्षा की परिकल्पना के द्वारा वह बालकों का व्यक्तित्व निर्माण करना चाहते थे।**[6] बालकों के व्यक्तित्व निर्माण में उन्होंने शिक्षक की भूमिका को महत्वपूर्ण रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार 'शिक्षण' एक महान व्यवसाय है। शिक्षक का मूल दायित्व है कि वह ऐसे विद्यार्थी को जन्म दे जिसमें कोई भय और द्वन्द्व न हो। विद्यालय का वातावरण प्रेम व सहानुभूमि पर आधारित हो। भयमुक्त विद्यालयी परिवेश के माध्यम से शिक्षक विद्यार्थियों में मूल्यों का निर्माण करें। एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों में तभी मानवीय मूल्यों का विकास कर सकता है जब उसके जीवन का आचार–विचार भी मानवीय मूल्यों से आच्छादित हो, इसलिए यदि हम विद्यालयी परिवेश में मूल्योन्मुख शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास करने की बात करते है तो सर्वप्रथम शिक्षकों को मानवीय मूल्यों का बोध कराते हुए उनमें मूल्य–चेतना का विकास करना होगा। जब शिक्षकों में मूल्य प्रतिमान समाज के लिए उच्च कोटि के होंगे तो विद्यार्थियों में भी, जो भविष्य के निर्माता है, संस्कारित मूल्य प्रतिमान की भावनाएँ विकसित होगी। **महर्षि अरविन्द ने भी कहा है – "अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते है। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते है और अपने श्रम से उन्हें सींच–सींच कर महाप्राण शक्तियाँ बनाते है।"**

सुझाव :- इस प्रकार मानवीय मूल्य आधारित शिक्षा को लेकर विश्व में चल रहे विमर्श का विश्लेषण यह बताता है कि शान्ति आधारित मूल्य शिक्षा के लिए पाठ्य सामग्री–अध्ययन विषय वस्तु, अध्ययन शिक्षण प्रक्रिया प्रणाली, शिक्षा से मूलभूत अपेक्षाएँ आदि को निर्धारित और निश्चित करना सदैव से एक संकट रहा है। मूल प्रश्न यह है कि शिक्षा क्या है? और शिक्षा क्यों? अर्थात् शिक्षा का मूल मंतव्य क्या है?[7] इसके लिए शिक्षा, समाज और सम्प्रेषण माध्यमों को भोगोन्माद, लाभोन्माद, कामोन्माद, अस्थिर, अनिश्चित, समस्याकारी कार्य–व्यवहार, आचरण से मुक्त करने की आवश्यकता है। शिक्षक शिक्षा का यह दायित्व है कि सर्वशुभ की मानवीय अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर शिक्षा एवं अध्ययन वस्तु की समीक्षा, विश्लेषण एवं मूल्यांकन करे और ऐसे शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम का विकास करें, जिससे विकास और गति में तालमेल बन सकें, मानवीय आचरण एवं प्रवृत्तियों का विकास हो, सर्वमानव को समस्याओं के समाधान प्राप्त हों, मानव इस धरती पर अनन्त काल तक सुख, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्वपूर्वक जी सके। इसके लिए जरूरी है आचार–संहिताओं, विधि–विधान–संविधान, व्यवस्थाओं और मानवीय कार्य व्यवहार की पहचान कर उसे

शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाए। यही मानवीय मूल्य आधारित शिक्षा की आधारभूत दृष्टि हो सकती है। इसके लिए जरूरी शोध अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाए।

निष्कर्ष :– इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि सार्वभौमिक मानव मूल्यों एवं शान्ति की शिक्षा के लिए सत्य की खोज, प्यार, स्नेह, भाईचारा, मित्रता, सहयोग, समरसता, सौहार्द्र, राष्ट्रप्रेम, सहायता, संवेदनशीलता आदि गुण आज के विद्यार्थियों में विकसित किये जाने ही चाहिए। शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए शान्ति शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना। इससे नकारात्मक भावनाओं का मार्गान्तरीकरण कर उन्हें सही दिशा की ओर मोड़ा जाए, जिससे मानव मन शांत रह सके, शान्ति स्थापित कर सके, अहिंसा का मार्ग अपना सके। अतः शिक्षक यदि सकारात्मक दृष्टिकोण बनाये रखे व अपनी जिम्मेदारी को समझे तो ऐसे अवसरों की कमी नहीं जिनका उपयोग करते हुए छात्रों में सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों के संवर्धन का बेहतरीन प्रयास सम्भव हो सकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. Special Report: The Education Race, by Newsweek, August 18–25, 2011.
2. "Science and Technology Education". Press Information Bureau, Retrieved 2009-08-08.
3. ''भारतीय आधुनिक शिक्षा'' प्रकाशक – एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, अंक 4, अप्रेल 2009, आई.एस.एस.एन – 09725636, पृ. 39.
4. Brush, S. G. (1988). The History of Modern Science: A Guide to the Second Scientific Revolution 1800-1950. Ames: Iowa State University Press.
5. Landa, Manuel de, War in the Age of Intelligent Machines, 2001
6. सक्सेना एन.आर. स्वरूप, शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, प्रकाशक : आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, 2008 पृ. 632–634
7. Vygotsky L. S. (1978). *Mind in society: The development of higher psychological processes*. Cambridge, MA: Harvard University Press. P. 13.

श्रवणबाधित छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्तिगत रणनीतियाँ

धीरज कुमार भारती *
डॉ. आर. एन. शर्मा**

सार :– यह शोध–पत्र श्रवणबाधित छात्र–छात्राओं की कुछ शैक्षिक आवश्यकताओं को संबोधित करता है, क्योंकि इस समूह के लिए विशेष रूप से भाषा अधिग्रहण के संबंध में सीखने की अनूठी जरूरतें हैं। इतिहास के दौरान श्रवणबाधित शिक्षा, मौखिक (भाषण) और मैनुअल (संकेत भाषा) के लिए दो प्रमुख दृष्टिकोण रहे हैं। श्रवणबाधित शिक्षा के क्षेत्र में चिकित्सा पेशेवरों और शिक्षकों के बीच परस्पर विरोधी राय के बावजूद, वर्तमान शोध से पता चलता है कि छात्र–छात्राओं की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार संयोजन का उपयोग करने के लिए लचीलापन और खुलापन भाषा दक्षता बनाने का सबसे अच्छा तरीका है। यह पेपर इन निष्कर्षों का उपयोग शिक्षकों के लिए प्रभावी प्रबंधन रणनीतियों की एक समग्र श्रेणी का सुझाव देने के लिए करेगा, जो श्रवणबाधित छात्र–छात्राओं की शारीरिक, शैक्षणिक, सामाजिक, भावनात्मक और संचारी भलाई को लक्षित करता है।

मुख्य शब्द :– श्रवणबाधित , छात्र–छात्रा, शिक्षा रणनीति, भाषा

परिचय :– श्रवणबाधित इतिहास एक न सुनने वाली दुनिया की कहानी को प्रकट करता है जिसने उन छात्रों की जरूरतों को सुनने की उपेक्षा की है जो श्रवणबाधित हैं। श्रवण हानि का विवरण, इसके कारण और उपलब्ध उपचार शिक्षा और सहायता प्रदान करने के विभिन्न तरीकों में सहायक अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। वर्तमान पत्र शिक्षकों के लिए महत्वपूर्ण प्रबंधन रणनीतियों के साथ–साथ भाषा अधिग्रहण के लिए सर्वोत्तम शैक्षिक विधियों का सुझाव देता है, जो श्रवणबाधित छात्र एवं छात्राओं की शैक्षणिक और सामाजिक समायोजन समर्थन करने के इर्द–गिर्द घूमता है।

श्रवणबाधित छात्र :– श्रवणबाधित समुदाय ऐसे लोगों के विविध समूह से बना है, जो श्रवणबाधित की एक विस्तृत श्रृंखला है। कुछ श्रवणबाधित लोग कम आवृत्तियों पर सुनने में सक्षम होते हैं, लेकिन कुछ श्रवणबाधित लोग उच्च आवृत्तियों और इसके विपरीत सुनने में असमर्थ होते हैं। फिर ऐसे श्रवणबाधित व्यक्ति हैं जो पूर्ण–रूपेण श्रवणबाधित हैं, जिसका अर्थ है कि वे 95 डेसिबल से नीचे की कोई भी ध्वनि नहीं सुन सकते हैं। परिभाषा के अनुसार, 'श्रवण बाधित' किसी भी ऐसे व्यक्ति को वर्गीकृत करता है जो "आंशिक या पूरी तरह से श्रवणबाधित " है। श्रवणबाधित समुदाय के भीतर, ऐसे लोग हैं जो 'मौखिक' हैं (मुख्य रूप से भाषण का उपयोग करते हैं) और ऐसे व्यक्ति जो मुख्य रूप से संवाद करने के लिए सांकेतिक भाषा का उपयोग करते हैं (साथ ही जो दोनों का उपयोग करते हैं)। संचार के ये रूप श्रवणबाधित शिक्षा के मुख्य दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं, और श्रवणबाधित इतिहास के दौरान लंबे समय से बहस और एक दूसरे के खिलाफ टिकी हुई है।

श्रवणबाधित शिक्षा का इतिहास :– श्रवणबाधितों के लिए पहला पब्लिक स्कूल नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डेफ–म्यूट की स्थापना 1760 में पेरिस, फ्रांस में चार्ल्स–मिशेल डी ल'एपी ने की थी। अपने पेरिस घर में स्थित, डी ल'एपी को दो श्रवणबाधित जुड़वां बहनों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त किया गया था। लड़कियों ने संचार के प्राथमिक साधन के रूप में सांकेतिक भाषा का इस्तेमाल किया और डी ल'एपी ने इसे उनसे सीखा। डी ल'एपी ने समझा कि संकेत और हावभाव मानवीय विचारों को व्यक्त कर सकते हैं

***शोध–छात्र , शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**
****सह–आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

बोली जाने वाली भाषा की तरह ही प्रभावी रूप से, और उन्होंने भाषण और अभिव्यक्ति को कम महत्व का माना। सैमुअल हेनिक श्रवणबाधित की 'मौखिक' शिक्षा के अग्रदूत थे। 1778 में, हेनिक ने जर्मनी के लीपज़िग में एक स्कूल की स्थापना की। सांकेतिक भाषा के सख्त विरोध में, हेनिक की पद्धति ने छात्रों को स्पष्ट रूप से बोलने और स्पष्ट करने के लिए सिखाने पर जोर दिया। डे ल'एपी की हेनिकी और उनके अनुयायियों द्वारा भारी आलोचना की गई, क्योंकि वे सांकेतिक भाषा को भाषण और उचित उच्चारण के विकास के लिए एक बाधा मानते थे।

19वीं शताब्दी के अधिकांश समय के दौरान, श्रवणबाधित शिक्षा के लिए मौखिक और मैनुअल दृष्टिकोण के पैरोकारों के बीच विवाद था। 1880 में श्रवणबाधित शिक्षकों के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया था जिसमें चर्चा की गई थी कि कौन सी विधि अधिक प्रभावी थी। मैनुअल (साइन) आधारित शिक्षा के अधिवक्ताओं को कांग्रेस में आमंत्रित नहीं किया गया था और इस प्रकार उनकी संख्या अधिक थी और उन्हें खारिज कर दिया गया था। एक वोट लिया गया और यह निर्णय लिया गया कि श्रवणबाधितों की स्कूली शिक्षा में विशुद्ध रूप से मौखिक पद्धति को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कई दशकों के बाद, 1960 में अमेरिकी सांकेतिक भाषा को स्वीकार किया गया, जिसने दुनिया भर में मैनुअल (साइन) आधारित शिक्षा के आधार को फिर से स्थापित किया। ऑस्ट्रेलिया ने 1980 के दशक में AUSLAN (ऑस्ट्रेलियाई सांकेतिक भाषा) की स्वीकृति प्रदान किया और अब इसे ऑस्ट्रेलियाई पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है।

कोई कह सकता है कि वर्षों से सांकेतिक भाषा और 'मौखिकवाद' ने सह–अस्तित्व सीख लिया है। हालांकि, चिकित्सा उद्योग आम तौर पर सहायक श्रवण उपकरणों की उन्नत तकनीक के संयोजन के साथ मौखिक शिक्षा की वकालत करता है। कुछ समकालीन शिक्षकों को अभी भी डर है कि सांकेतिक भाषा को नियोजित करने से धाराप्रवाह भाषण के विकास में कमी आएगी। हालांकि, ये शिक्षक यह मानने की उपेक्षा करते हैं कि सभी सहायक श्रवण यंत्र हर बच्चे के लिए प्रभावी नहीं होते हैं। यह प्रतिकूल प्रभाव पैदा कर सकता है जहां श्रवणबाधित या सुनने में कठिन छात्रों को संवाद करने के लिए एक भाषा से वंचित कर दिया जाता है और उन्हें अलग–थलग छोड़ दिया जाता है और खुद को व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं।

आज, ऑस्ट्रेलिया में ऐसे कई स्कूल हैं जो श्रवणबाधित शिक्षा को पूरा करते हैं। इनमें से कुछ स्कूलों में एक श्रवणबाधित इकाई है जो उनकी मुख्यधारा प्रणाली का विस्तार है। इन स्कूलों ने मौखिक या मैनुअल शिक्षा पर अपना दृष्टिकोण अपनाया है। श्रवणबाधित बच्चों के माता–पिता को अपने बच्चे के स्कूल को चुनने की स्वायत्तता दी जाती है जिसके आधार पर संचार दृष्टिकोण का उपयोग किया जाता है।

कारण और प्रबंधन :– चिकित्सकीय रूप से बोलते हुए, श्रवण हानि की दो प्रमुख श्रेणियां हैंः प्रवाहकीय हानि और सेंसरिनुरल हानि। प्रत्येक श्रेणी को कान के भीतर क्षति के स्थान से परिभाषित किया जाता है, जो सुनने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। प्रवाहकीय श्रवण हानि तब होती है जब बाहरी कान, टिम्पेनिक झिल्ली (कान का परदा), या मध्य कान के माध्यम से मार्ग के साथ कहीं भी ध्वनि तरंगों का संचालन करने में समस्या होती है। इसके विपरीत, सेंसरिनुरल भी एक क्षति है जो आंतरिक कान या वेस्टिबुलोकोक्लियर तंत्रिका में हुई है। जहां क्षति स्थित है, उसके आधार पर एक व्यक्ति को या तो प्रवाहकीय और संवेदी श्रवण हानि हो सकती है।

श्रवण हानि के कारणों को या तो जन्मजात या अधिग्रहित के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। जन्मजात श्रवण हानि जन्म से मौजूद है, आमतौर पर स्क्रीनिंग या पारिवारिक इतिहास से पता लगाया जाता है (आनुवंशिक या गैर–आनुवंशिक मूल का हो सकता है)। इसके विपरीत, अधिग्रहित श्रवण हानि जन्म से मौजूद नहीं है, लेकिन किसी व्यक्ति के जीवन के दौरान किसी बिंदु पर प्राप्त की जाती है।

जन्मजात श्रवण हानि के कारण (गैर–वंशानुगत) शामिल करना :–

1. मातृ संक्रमण
2. कर्निकटेरस (गंभीर पीलिया)
3. जन्म के दौरान आघात
4. दवा विषाक्तता

निहितार्थ और रणनीतियाँ बहरेपन का बच्चे के शारीरिक, शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कक्षा के संदर्भ में, भाषा अधिग्रहण और शिक्षा में सुधार के लिए प्रभावी रणनीतियों को लागू करने के लिए शिक्षकों के लिए इन अनूठी सीखने की जरूरतों के बारे में जागरूक होना महत्वपूर्ण है।

शारीरिक विकास और क्षमताएं :– शारीरिक विकास के संबंध में, कुछ श्रवणबाधित छात्रों को संतुलन में कठिनाई का अनुभव होता है। यह आंतरिक कान की शिथिलता का परिणाम है। कक्षा के वातावरण में, एक शिक्षक व्यक्ति की शारीरिक क्षमता के स्तर पर गतिविधियों को संशोधित करके इन कठिनाइयों के साथ छात्रों की सहायता कर सकता है। शिक्षकों को उन उपकरणों तक पहुंच भी सुनिश्चित करनी चाहिए जो संतुलन विकसित करने में सहायता करते हैं।

सीखने की चुनौतियाँ :– श्रवणबाधित बच्चों वाले माता–पिता के लिए शैक्षणिक उपलब्धि भी एक चिंता का विषय हो सकती है। अनुसंधान से पता चलता है कि जो छात्र श्रवणबाधित हैं, वे अक्सर निम्नलिखित संज्ञानात्मक क्षेत्रों में कठिनाई का अनुभव करते हैंः भाषा अधिग्रहण, भाषण विकास, संवेदी प्रसंस्करण, साक्षरता विकास (पढ़ना और लिखना) और विस्तारित अवधि के लिए निरंतर ध्यान केंद्रित करना।

सीखने की रणनीतियाँ और परिणाम :– संवाद करने के लिए एक भाषा प्राप्त करने में, श्रवण हानि वाले बच्चे बोलना और हस्ताक्षर करना या दोनों का संयोजन सीखेंगे। वे व्यक्ति, जो विशुद्ध रूप से मौखिक पद्धति का चयन करते हैं, अक्सर उनकी सहायता के लिए श्रवण सहायता उपकरणों की एक श्रृंखला का उपयोग करेंगे (कॉक्लियर या श्रवण यंत्र)। ज्यादातर मामलों में, श्रवणबाधित पैदा होने वाले बच्चे सुनने वाले परिवारों में पैदा होते हैं। नतीजतन, विशुद्ध रूप से मौखिक विधि को अक्सर पसंद किया जाता है। हालांकि, कर्णावर्त प्रत्यारोपण और श्रवण यंत्र की सफलता दर अलग–अलग होती है, और इस दृष्टिकोण को अपनाने वाले सभी बच्चे कुशलता से बोलना और सुनना नहीं सीखते हैं। यह तथ्य छात्र के भाषा अधिग्रहण, शैक्षणिक उपलब्धि और मनोवैज्ञानिक भलाई के संबंध में प्रमुख परिणाम उत्पन्न कर सकता है।

इसी तरह, जो छात्र सांकेतिक भाषा सीखते हैं, वे ज्यादातर कम उम्र में सीखने के संकेत से वंचित हो जाते हैं और जब तक परिवार घर पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रतिबद्ध नहीं होता है, तब तक वे स्कूल की उम्र तक नहीं सीखते हैं, इसलिए उनके आसपास के लोगों को भी यह जानना आवश्यक है। यदि परिवार के सदस्य, सहकर्मी या संबद्ध शिक्षक संकेत के माध्यम से संवाद करने में असमर्थ हैं, तो छात्र अकेले भाषण पर निर्भरता के कारण जोखिम में पड़ जाता है।

वर्तमान प्रतिक्रियाएं :– अतः, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वर्तमान शोध से पता चलता है कि चुनी गई विधि की परवाह किए बिना, विवश भाषा विकास व्यवहार और मनोसामाजिक कठिनाइयों में योगदान देता है। इसके अलावा, "शुरुआती श्रवण उत्तेजना की अनुपस्थिति और भाषा प्राप्त करने में देरी, श्रवण और दृश्य कार्यशील स्मृति, ध्यान और अवरोध जैसे तंत्रिका–संज्ञानात्मक प्रसंस्करण डोमेन को प्रभावित करती है। इसलिए, बोली जाने वाली भाषा के विकास के साथ–साथ संज्ञानात्मक और भावनात्मक नियंत्रण, योजना और संगठन के लिए श्रवण और भाषाई अनुभव तक जल्दी पहुंच आवश्यक है।"

वर्तमान में बाल रोग विशेषज्ञ सिफारिश कर रहे हैं कि श्रवणबाधित बच्चे एक साथ भाषा अधिग्रहण के लिए मौखिक और हस्ताक्षर दोनों तरीके अपनाएं। यह दृष्टिकोण सुनिश्चित करेगा कि श्रवणबाधित वाले बच्चे प्रारंभिक भाषा अधिग्रहण से वंचित न हों और अपने परिवारों, साथियों और शिक्षकों के साथ संचार की खाई को पाटने में सक्षम हों।

समावेशी कक्षाओं के लिए रणनीतियाँ :– यह देखते हुए कि सुनने वाले परिवारों का बड़ा हिस्सा अपने श्रवणबाधित बच्चों को सांकेतिक भाषा नहीं सिखाता है, शिक्षकों के लिए यह समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्रों को कैसे समायोजन किया जाए। कक्षा के वातावरण में, शिक्षण रणनीतियों का उपयोग श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्रों की सहायता के लिए किया जा सकता है।

शिक्षकों के लिए अंतिम चिंता श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्रों की सामाजिक और भावनात्मक समायोजन है। आंकड़े बताते हैं कि मानसिक बीमारी की उच्च दर उन लोगों में होती है जो सुनने वाले व्यक्तियों की तुलना में श्रवणबाधित हैं। परिवार की भाषा और संचार वातावरण एक केंद्रीय तत्व है जो श्रवण बाधित बच्चों के मनोसामाजिक कल्याण को प्रभावित करता है। जब एक श्रवणबाधित व्यक्ति घर के भीतर धाराप्रवाह संवाद करने में असमर्थ होता है, तो उन परिवारों की तुलना में मानसिक बीमारी विकसित होने की संभावना चार गुना अधिक होती है जो कर सकते हैं। यही संचार समस्या भी स्कूल के वातावरण में दुर्व्यवहार की ओर ले जाती है। शोध से पता चलता है कि श्रवणबाधित बच्चों में मानसिक बीमारी स्कूल में प्रतिकूल अनुभवों से दृढ़ता से जुड़ी हुई है। चाहे हस्ताक्षरित हो या बोली जाने वाली, खराब भाषा क्षमता साथियों और शिक्षकों के साथ संबंधों की कठिनाइयों में योगदान करती है। अंततः, इन व्यक्तियों में मानसिक संकट तेजी से बदतर हो सकता है, व्यवहार संबंधी समस्याओं, सामाजिक बहिष्कार और अलगाव में योगदान देता है।

श्रवणबाधितों में सीखने को अनुकूलित करने के लिए रणनीतियांः–

1. एक आधिकारिक सांकेतिक भाषा (ऑस्लान) सिखाना और उसका उपयोग करना।
2. कक्षा सहायता के लिए ऑस्लान भाषा मॉडल का आयोजन करना।
3. बंद कैप्शन वाले वीडियो का उपयोग करना।
4. कक्षा में दृश्य पर जोर दिया जाना।
5. दृश्य संदर्भ के लिए बोर्ड पर निर्देश लिखना।
6. कक्षा में व्यक्तिगत सुनने के उपकरणों (पीएलडी) और एम्पलीफायरों का उपयोग करना।
7. पीएलडी में हस्तक्षेप से बचने के लिए दरवाजे और खिड़कियां बंद करें, और किसी भी अप्रयुक्त विद्युत उपकरण को भी बंद कर देना।
8. सुनिश्चित करना कि कक्षा अच्छी तरह से प्रकाशित हो ताकि छात्र हमें देख सके।
9. होंठ पढ़ने के लिए निकटता आवश्यक है, इसलिए श्रवणबाधित छात्र–छात्राओं को कक्षा में सबसे आगे बैठना चाहिए। पूरे कमरे में बोलने की कोशिश न करना।
10. एक श्रवणबाधित छात्र से बात करने से पहले उसका ध्यान आकर्षित करना – एक कुर्सी पर खड़े हों, जमीन पर थपथपाना, अपना हाथ उनकी दृष्टि की रेखा में हिलाना या लाइट बंद करना और वापस चालू करना।
11. बोलते समय – सरल वाक्यों का प्रयोग करते हुए जोर से और स्पष्ट रूप से बोलना। एक साथ कमेंट्री करने से बचना।
12. हमेशा छात्र द्वारा समझ की जाँच करना।
13. बार–बार ब्रेन ब्रेक होने पर फोकस बनाए रखना।
14. एक व्यक्तिगत शिक्षा कार्यक्रम (आईईपी) विकसित करना जो छात्रों को चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों को लक्षित और विकसित करता है (साक्षरता कौशल पर प्रमुख जोर देना)।

सामाजिक और भावनात्मक विचार – आईईपी :– श्रवणबाधित छात्र–छात्राओं की सामाजिक और भावनात्मक भलाई का समर्थन करने के लिए, शिक्षकों को चाहिए निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्रों को प्रलक्षित करने की रणनीतिः उन्नत भाषा अधिग्रहण, संचार में पारिवारिक वातावरण (प्रोत्साहन और चर्चा के माध्यम से) और सकारात्मक सहकर्मी आधारित संबंध (शिक्षक सुविधा के साथ)। यदि यह प्रक्रिया अभी तक स्थापित नहीं हुई है, तो स्कूल से संबंधित निर्णय लेने में छात्रों और उनके परिवारों को शामिल करने के लिए एक व्यक्तिगत शिक्षा कार्यक्रम (आईईपी) आयोजित करना एक प्रभावी तरीका है।

शिक्षकों को कक्षा में परिवार की भागीदारी और जुड़ाव को प्रोत्साहित करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। इसके अलावा, एक आईईपी शिक्षकों को मौखिक और मैनुअल भाषा विकास दोनों के लिए छात्र– छात्राओं को उजागर करने के महत्व पर चर्चा करने का अवसर देगा। उच्च स्तर की भाषा अधिग्रहण सुनिश्चित करने के कुछ संभावित तरीके हैंः कुशल ऑस्लान सीखना, नियमित भाषण विकृति

कक्षाओं में उपस्थिति सुनिश्चित करना, सहायक श्रवण यंत्रों का उपयोग और बार–बार पढ़ने और लिखने का अभ्यास।

स्कूल में प्रतिकूल अनुभवों से बचने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षक स्कूल समुदाय में श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्रों को शामिल करने पर सक्रिय रूप से ध्यान दें। शिक्षक कुछ बुनियादी सांकेतिक भाषा सीखने और सीखने के संसाधनों को वितरित करके श्रवणबाधित और सुनने में कठिन छात्र–छात्राओं और उनके सुनने वाले साथियों के बीच की खाई को पाटने में मदद कर सकते हैं। इसके अलावा, श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्रों को स्कूल के माहौल के बाहर सामाजीकरण के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। श्रवणबाधित समुदाय श्रवणबाधित छात्र–छात्रओं के लिए लोगों से मिलने और विभिन्न सामाजिक क्लबों और खेल टीमों में शामिल होने का एक शानदार तरीका है।

निष्कर्ष :– कुल मिलाकर, परिवार के सदस्यों और शिक्षकों के लिए श्रवणबाधित शिक्षा और उसके इतिहास के बारे में जागरूक होना बेहद जरूरी है। कम जानकारी वाले शिक्षकों और अन्य पेशेवरों के बीच बोली जाने वाली और हस्ताक्षरित भाषाओं के बारे में पुरातन और गैर–सूचित रवैये के सफल भाषा अधिग्रहण और समग्र कल्याण पर गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इसलिए, यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षक अपने श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्र–छात्राओं की शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक समायोजन का समर्थन करने के लिए रणनीतियों को लागू करें। सुनने की दुर्बलता वाले व्यक्तियों में मानसिक बीमारी से संबंधित हैं, जो उनके आसपास के लोगों की समझ की कमी और खराब भाषा अधिग्रहण के परिणामस्वरूप होती हैं। प्रभावी प्रबंधन रणनीतियों के कार्यान्वयन के माध्यम से, इन दरों को कम किया जा सकता है। शिक्षकों को श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्र–छात्रओं को सुझाई गई रणनीतियों के साथ मौखिक और मैनुअल संचार विधियों में कुशल बनने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए एक वास्तविक प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, कक्षा में उनके सुनने वाले साथियों के साथ समाजीकरण के लिए प्रोत्साहन और समर्थन, श्रवणबाधित और कम सुनने वाले छात्रों की शैक्षणिक और व्यक्तिगत सफलता को बेहतर ढंग से सुगम बनाएगा।

संदर्भ–सूची :–

1. अलेक्जेंडर, ए., लैड, पी., और पॉवेल, एस. (2012), बहरापन आपकी सेहत को नुकसान पहुंचा सकता है। द लैंसेट, 379 (9820), 979–981।
2. फेलिंगर, जे., होल्जिंगर, डी., और पोलार्ड, आर. (2012), बधिर लोगों का मानसिक स्वास्थ्य, द लैंसेट, 379 (9820), 1037–1044।
3. हैरिस, जे., और व्हाइट, वी. (2013), ए डिक्शनरी ऑफ सोशल वर्क एंड सोशल केयर, ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में ऑनलाइन।
4. हम्फ्रीज़, टी., कुशलनगर, पी., माथुर, जी., नेपोली, डी.जे., पैडेन, सी., और रथमान, सी. (2014), बधिर बच्चों के लिए भाषा अधिग्रहण सुनिश्चित करनाः भाषाविद क्या कर सकते हैं। भाषा, 90(2), 31–52.
5. मूर, डी.आर. (2010), द ऑक्सफ़ोर्ड हैंडबुक ऑफ़ ऑडिटरी साइंसः हियरिंग, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क।
6. राष्ट्रीय बधिर बाल समाज, (2016, 22 मार्च)। हल्के बहरेपन वाले बधिर बच्चों को पढ़ाने के लिए टिप्स।
7. पेरियर, ओ. (2013), मूक शिक्षा, सी. आर. रेनॉल्ड्स, के. जे. वेनेस्ट, और ई. फ्लेचर–जेनजेन (सं) में, विशेष शिक्षा का विश्वकोशः विकलांग बच्चों, किशोरों और वयस्कों और अन्य असाधारण व्यक्तियों की शिक्षा के लिए एक संदर्भ (चौथा संस्करण), होबोकेन, एनजेः विली।
8. होबोकेन, एनजेः विली, रोचेस्टर प्रौद्योगिकी संस्थान (रा0)। बधिर और सुनने में मुश्किलः कुछ परिभाषाएँ। 3 अप्रैल, 2017
9. स्मिथ, एम. ए., और शायर, पी. (2013), मौखिक बनाम मैनुअल संचार, सी. आर. रेनॉल्ड्स, के.जे. वेनेस्ट, और ई. फ्लेचर–जेनजेन (स.) में, विशेष शिक्षा का विश्वकोशः विकलांग बच्चों, किशोरों और वयस्कों की शिक्षा के लिए एक संदर्भ और अन्य असाधारण व्यक्तियों (चौथा संस्करण), होबोकेन, एनजेः विली।

आर्थिक उदारवाद और सांस्कृतिक परिवर्तन

डॉ. सुषमा मिश्रा*

प्रस्तावना :– 17वीं शताब्दी का प्रारम्भ उदारवाद की उत्पत्ति के रूप में देखा गया। उदारवाद (Liberalism) वह विचारधारा है जिसके अन्तर्गत मनुष्य को विवेकशील, सूझबूझ और सामूहिक प्रयास करने वाला प्राणी मानते हुए सामाजिक संस्थाओं की उत्पत्ति का कारण माना गया। उदारवाद ने रूढ़िवादिता, पुरानी व्यवस्था, राजशाही, गुलाम मानसिकता आदि को बदलने का काम किया तथा व्यक्तिगत अधिकारों (नागरिक अधिकारों और मानवाधिकारों सहित), लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, भाषण की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता और एक बाजार अर्थव्यवस्था का समर्थन किया।

मुख्य शब्द :– उदारवाद, आर्थिक उदारवाद, प्राइवेटाइजेशन, वैश्वीकरण का संदर्भ।

आर्थिक उदारवाद से तात्पर्य आर्थिक मामले में राज्य के हस्तक्षेप को सीमित करने से है। आर्थिक उदारवाद की शुरूआत एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक में की थी, जहां उन्होंने कहा था कि व्यापार संबंधों को स्वतंत्रता और परिस्थितियों की समानता के ढांचे के भीतर बनाया जाना चाहिए, ताकि बाजार और आपूर्ति के खेल की गतिशीलता और मांग जो अर्थव्यवस्था को नियंत्रित और संतुलित करती है वह आर्थिक गतिविधि की स्वतंत्रता का बचाव करे एवं राज्य की भूमिका कम हो जाए। आर्थिक उदारवाद के साथ ही निजीकरण, वैश्वीकरण, पाश्चात्यवाद, आधुनिकीकरण एवं घोर भौतिकवाद की प्रक्रियाएं चलीं। निजीकरण का अर्थ है कि सरकार द्वारा अपने उपक्रमों, संस्थानों, उद्योगों, सुविधाओं आदि को निजी क्षेत्र की कंपनियों को दे देना या संचालित करने की अनुमति प्रदान करना।[1] वैश्वीकरण या ग्लोबलाइजेशन वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यापार, सेवाओं या तकनीकों का पूरे संसार में वृद्धि, विकास और विस्तार किया जाता है।[2]

1980 के दशक के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था कमजोर थी, लोकलुभावनवाद की राजनीति एवं विकास कार्यों को पूर्ण करने के प्रयत्न में सरकार ने विश्व बैंक या मुद्राकोष के प्रभाव में अत्यधिक ऋण ले लिया। इस ऋण के बोझ तले हमारी अर्थव्यवस्था दबी जा रही थी। भारतवर्ष में निर्यात के साधन एवं सामग्री अत्यधिक कम थी एवं विदेशी मुद्रा की कमी के कारण सरकार द्वारा ऋणों का भुगतान नहीं हो पा रहा था। इसका परिणाम तीव्र आर्थिक संकट के रूप में आया। भारत कर्ज के जाल में बुरी तरह फँस गया। 1990 में यह स्थिति और भी भयावह हो गयी थी। तत्पश्चात् 1991 में भारत ने उदारीकरण का बिल संसद में पास कराकर आर्थिक उदारीकरण को स्वीकार कर अपने बाजार को विश्व के समक्ष खोल दिया जिसके अंतर्गत देश के बाजार अब विदेशी निवेश के लिए खुल गए थे। लाइसेंस राज का खात्मा कर अब निजी कंपनियों को कई क्षेत्रों में निवेश एवं व्यापार करने की अनुमति दी गई। हमारी अर्थव्यवस्था जो की बहुत सुदृढ़ नहीं थी उसे विदेशी निवेश के लिए खोलने पर यह डर था कि देश एक बार फिर बड़ी विदेशी कंपनियों की आर्थिक गुलामी के चंगुल में न फंस जाए। किन्तु यह वो क्रांतिकारी कदम था जिसने भारत के विकास की कहानी में नया अध्याय लिख दिया एवं आज भारत विश्व पटल पर शीर्ष देशों में शुमार है तथा आर्थिक पथ पर अग्रसर है।[3]

भारत में बैंकिंग व्यवस्था उदारवाद के पूर्व चंद सरकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा संचालित होती थी। सरकारी बैकों के दौर में लिक्विडिटी और आर्थिक अवसर सीमित थे। यह स्थिति 1991 के बाद बदली तथा इस क्षेत्र में निजी बैंकों की सहभागिता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। इससे बैंकिंग सेवा का विस्तार हुआ एवं बैंकों की पहुँच देश के ग्रामीण अंचलों तक हो गयी। अब खेती–बाड़ी, पशुपालन, व्यवसाय आदि के लिए आसानी से ऋण उपलब्ध होने लगा। ग्रामीण बैंकों की शुरूआत से भारत की अर्थव्यवस्था कहीं ज्यादा संस्थागत हो सकी और आबादी के बड़े हिस्से को मुख्यधारा में आने में मदद मिली।[4]

आर्थिक उदारवाद आने के पूर्व अस्सी के दशक में दूरदर्शन पर मात्र एक चैनल का प्रसारण किया जाता था। उदारवाद के आने से निजी संचालकों द्वारा अनेक चैनलों की सुविधा चौबीस घंटे प्रदान की जाने लगी। इसी प्रकार टेलीकॉम सेक्टर में भी परिवर्तन देखा गया। सूचना एवं संचार क्रांति में कंप्यूटर के आने से

*** असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।**

सूचना तकनीकी के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आये। संचार साधनों के अत्यधिक प्रसार एवं पर्यटन के संवर्धन ने स्थानों के मध्य की दूरी कों सीमित कर दिया। मीडिया एवं इंटरनेट ने तो लोगों के जीवन में प्रवेश कर के एक क्लिक पर उन्हें 'ग्लोबल विलेज' तथा 'ग्लोकल प्लेटफार्म' से जोड़ दिया। उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनोरंजन के परंपरागत तरीकों को भी प्रभावित किया तथा टेलीविजन के माध्यम ने निजी चैनलों के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति पर आधारित प्रायोजित कार्यक्रमों द्वारा उपभोक्ता के विचारों एवं सोच को बदलने में प्रभावी भूमिका निभाई तथा जिससे अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संस्कृति में अवमूल्यन हुआ। जहाँ सूचनाओं का प्रसार तीव्र हुआ वहीं सांस्कृतिक विविधता को अक्षुण्ण बनाये रखना अत्यंत जटिल हो गया। ऐसा नहीं है कि ये प्रभाव केवल भारतीय संस्कृति पर ही पड़ा, अपितु वैश्विक स्तर पर भी सांस्कृतिक प्रसार एवं सात्मीकरण की प्रक्रिया चली।[5] 1991 की उदारवादी नीतियों के लागू होने से नागरिक उड्डयन का क्षेत्र काफी प्रभावित हुआ। भारतीय बाजार में अचानक से निजी विमानन कंपनियों की बाढ़ आ गई जिससे लोगों का हवाई सफर करना आसान हो गया। देश–विदेश में कही भी पहुंचना सुलभ हो गया और पर्यटन का तेजी से विकास हुआ।[5]

परंपरागत ग्रामीण समाज जहाँ मनुवादी व्यवस्था विद्यमान थी तथा जातिगत भावनाओं से ग्रस्त था। उसकी झलक ग्रामीण पंचायत के कार्यों में, गाँव के विद्यालयों में सामाजिक कार्यक्रमों में एवं अनेकों गतिविधियों में देखने को मिलती थी। वहां निजीकरण के कारण गांवो में भी टेलीफोन पी0 सी0 ओ0 आदि का पदार्पण हुआ जो आज हर व्यक्ति के हाथ में मोबाइल फोन के रूप में परिलक्षित है। अस्सी के दशक से गांवों में भी तेजी से बिजली के कनेक्शन एवं टेलीविजन का प्रसार हुआ। दूरदर्शन के कुछ चैनल, धीरे–धीरे निजी ऑपरेटरों के आने से केबल टेलीविजन में परिवर्तित हो गए। सरकारी बैंकों की पहुँच गाँव के निचले स्तर तक नहीं थी, निजी बैकों के आने से गाँव में भी माइक्रों बैंकिग का उदय हुआ। बाहर से आने वाले इन संसाधनों ने ग्रामीण व्यवस्था एवं समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिए। हर गाँव में निजी स्कूलों एवं अंग्रेजी के स्कूलों की आमद हो गयी। अब शैक्षिक क्षेत्र में सरकारी संस्थानों के साथ में प्राइवेट संस्थानों की संख्या मे भी वृद्धि हुई। शैक्षिक गतिविधियों का अधिकाँश भाग निजी संस्थानों ने कब्जा कर लिया। पहले लोगों को शिक्षा के महत्व के बारे में जानकारी नहीं थी। शिक्षा के विषय में धीरे धीरे चैतन्यता आने लगी। सरकार द्वारा खोले गए स्कूलो में भी जातिगत भेदभाव विद्यमान था। निजीकरण को बढ़ावा मिलने से नए इंग्लिश माध्यम के स्कूलों एवं संस्थनों की संख्या मे वृद्धि हुई। इससे न सिर्फ रहन सहन अपितु विचारधारा मे भी परिवर्तन आ गया। बढ़ती आधुनिकता और पैसों की आवश्यकता नें ग्रामीण अंचल से शहरों की ओर पलायन को बढ़ावा दिया, जिसका प्रतिकूल प्रभाव कुटीर उद्योगों एवं जजमानी व्यवस्था पर पड़ा। शहरों में बढ़ती जनसँख्या, महंगाई एवं रहने की जगह के अभाव ने गंदी बस्तियों को जन्म दिया। परंपरागत समाज जहाँ संयुक्त परिवार के आधार पर चलता था, की जगह नाभिक परिवारों ने ले ली। संयुक्त परिवार प्रणाली समाजीकरण के लिए रीढ़ का कार्य करती थी परन्तु समय के साथ विकास एवं भूमंडलीकरण ने समाजीकरण की प्रक्रिया पर आमूल–चूल प्रभाव डाला, अब समाजीकरण का कार्य जो अधिकांशतः परिवार, पड़ोस, नातेदारों के द्वारा किया जाता था वह अलग–अलग संस्थाओं के माध्यम से होने लगा। पालनाघर आधुनिक संस्कृति की देन है। शहरों में विभिन्न क्षेत्रों में निजी कंपनियों और संस्थानों को अनुमति मिलने से औद्योगीकरण के बढ़ने से प्रदूषण भी बढ़ा। निजीकरण ने कुछ लोागों के हाथ में बहुत सा धन दिया तो कुछ को गरीब और शोषित बना दिया। इस तरह समाज आर्थिक आधार पर दो धड़ों–अमीर एवं गरीब में बंट गया। विश्व बाजार के खुलने से भारतीयों को विदेशों में भी कार्य करने एवं अध्ययन करने का अवसर मिला।[6]

पैसा कमाने की जी तोड़ कोशिश आज समाज की आवश्यकता बन गयी है जिसने एक तरफ नए किस्म के कार्यों का सृजन किया वहीं अनेक व्यवसाय एवं कार्य, महिलाओं के लिए भी सुलभ हुए हैं। काम के घंटे, पार्ट टाईम, जॉब इन्सिक्यूरिटी ने पुनः नए प्रकार के बांण्डेड लेबर को जन्म दिया। जिससे कार्य में बने रहने के लिए नई तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता हुई। एक ओर जहां माइग्रेशन के कारण खेती में मजदूरों का मिलना असंभव हुआ वहीं दूसरी ओर शहरों में आवश्यकता से अधिक लोग आये जिससे लेबर मार्केट का चलन हुआ। तथा यहां कार्य पाने के लिए अलग तरीके के संघर्ष का आरम्भ हुआ। जिसमें युवा तथा तकनीकी जानकारों को काम आसानी से मिला वही बीमार, वृद्ध एवं तकनीकी ज्ञान न रखने वालों के लिए जीवन जीना दूभर हुआ। गरीब और अधिक गरीब हुआ जबकि अमीर मिल मालिक, ठेकेदार, अधिकारी, डॉक्टर आदि वर्ग और अमीर हुए। इस तरह आर्थिक उदारवाद ने अमीर और गरीब के मध्य खाई को और गहरा किया। [7]

राष्ट्र की पहचान उसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है । भारत में जनजातियां आधुनिकीकरण एवं भूमंडलीकरण के दौर में अपनी क्षेत्रीय विविधता एवं ज्ञान परम्परा, जिसमें स्थानीय जड़ी बूटियां, खान–पान, वेशभूषा, एवं कलाएं को भी संरक्षित करने में असमर्थ हुईं। सामुदायिक जीवन में सदस्यों की सक्रिय सहभागिता समुदाय के संगठन की आधारशिला है। सामाजिक–सांस्कृतिक आदर्श एवं मूल्य ही समाज को एकजुट रखते हैं। आर्थिक उदारवाद ने बाजारी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया। साथ ही साथ कृषि आधारित काम न होने एवं तीव्र विकास की होड़ से बेरोजगारी, क्षेत्रवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता, निर्धनता आदि में वृद्धि हुई। जनसंख्या विस्फोट ने विभिन्न क्षेत्रों में पूंजी पर आधारभूत ढांचागत विकास के लिए एवं अर्थव्यवस्था के सुदृढीकरण के लिए काम किया। बहुत तेजी से असंतुलित एवं असंयमित विकास ने सांस्कृतिक अपकर्ष एवं विचलन की संस्कृति को जन्म दिया। सामूहिक व परंपरागत समाजीकृत भावनात्मक लगाव, प्रेम, स्नेह, त्याग की जगह व्यक्तिवादिता की दौड़ ने मैं, मेरा, व्यक्तिगत उत्कर्ष एवं व्यक्तिवादिता की भावना ने ईर्ष्या, संघर्ष, एकाकीपन एवं गलाकाट प्रतियोगिता को जन्म दिया। उपभोक्तावादी संस्कृति ने मूल्यों का अवमूल्यन किया तथा बाजारीकरण ने अधिक लाभ के लिए महिलाओं को वस्तु के रूप में चिन्हित किया। जिसके परिणामस्वरूप तीव्र आर्थिक विकास हुआ जबकि मूल्य , विश्वास, प्रथा, परम्परा आदि की शिथिल गति ने भौतिक संस्कृति एवं अभौतिक संस्कृति के मध्य सांस्कृतिक विलम्बन का कार्य किया।[8]

इस प्रकार आर्थिक उदारवाद ने समाज में आर्थिक असमानता बढ़ाई एवं विचलन की संस्कृति ने समाज में अव्यवस्था, असुरक्षा, भ्रष्टाचार एवं अविश्वास में वृद्धि की। गांव के लोग शहरों की ओर प्रवास किये। चकाचौंध और आधुनिकता ने नगरीकरण, पश्चिमीकरण के प्रभाव में खानपान, बात, व्यवहार, मूल्य एवं संस्कृति को परिवर्तित किया। जहां एक ओर पारम्परिक समाज की सनातन संस्कृति जिसमें खानपान, छुआछूत एवं धार्मिकता की भावना को कम किया वहीं दूसरी ओर सभी जाति, धर्म एवं वर्गों का सामाजिक समावेशन बढ़ा। शिक्षा, मतदान, अचल संपत्ति के अधिकार, जाति, धर्म से उठकर सभी को सुलभ हुए। इस प्रकार परिवर्तनों ने जहां सभी के अधिकारों का संरक्षण किया वहीं राजनैतिक दल ने उन्हें वोट बैंक के नाम पर प्रलोभनों से फिर बांटने का काम किया। [9]

आर्थिक उदारवाद ने संपूर्ण विश्व में आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक एवं सामाजिक उथल–पुथल की। जहां इसने सामाजिक ताने–बाने को प्रभावित किया, वहीं सामाजिक परिवर्तन की गति को भी तीव्र किया तथा पारिवारिक रिश्ते जीवन विधि एवं संबंधों की नई परिभाषाएं एवं जीवनशैली का सृजन किया वहीं आर्थिक गतिविधियों के कारण तीव्र आर्थिक विकास भी हुआ। जीवन मूल्यों, मानदण्ड, रीतिरिवाज परंपरा जो कभी हमारी थाती एवं पहचान थी, उसमें भी भूमंडलीकरण, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, उदारवाद एवं निजीकरण के कारण परिवर्तन आया। नियोजित विकास किसी भी देश के विकास की कुंजी है। आर्थिक उदारवाद ने मानव सभ्यता एवं संस्कृति को न सिर्फ प्रभावित ही किया बल्कि उसे संपूर्ण रूप से परिवर्तित करने में सक्षम रहा।

संदर्भ–सूची :–

1. राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा, ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपरबैक्स, 2010, पृष्ठ–२६, ISBN : 81-7198-092-9.
2. कॉज एंड कॉन्सेप्ट्स ऑफ वेल्थ ऑफ नेशंस (1776) –एडम स्मिथ ISBN : 10-0226763749.
3. Evolution of Liberalism in India-Parth J. Shah: Liberal Times , Volume X / No.4 2002.
4. Currie, Bob. "Governance, Democracy and Economic Adjustment in India: Conceptual and Empirical Problems." Third World Quarterly, vol. 17, no. 4, [Taylor & Francis, Ltd., Third World Quarterly], 1996, pp. 787–807, http://www.jstor.org/stable/3993286.
5. Subrahmanian, K. K. "Technological Capability under Economic Liberalism: Experience of Indian Industry in Eighties." Economic and Political Weekly, vol. 26, no. 35, Economic and Political Weekly, 1991, pp. M87–92, http://www.jstor.org/stable/41498625.
6. Nayyar, Dee
7. pak. (2017). Economic Liberalisation in India: Then and now. 52. 41-48.
8. Venkatanarayanan S. Economic Liberalization in 1991 and Its Impact on Elementary Education in India. SAGE Open. April 2015. doi:10.1177/2158244015579517.
9. उदारीकरण की तानाशाहीः प्रेम सिंह– राजकमल प्रकाशन, प्रकाशित वर्ष : 2006, आईएसबीएन :81–267–1253–8.

पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता
(राजस्थान राज्य के बाड़मेर जिले के विषेश संदर्भ में)

मांगी लाल*

सारांश :– पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की स्वतंत्रता, समानता और उनकी राजनीतिक सहभागिता के बारे में जब हम सोचते हैं तो समाज में महिलाओं की दयनीय स्थिति उभरकर सामने आती है। महिलाओं को सदैव अबला व निर्बल समझकर उसके भीतर छुपी ऊर्जा एवं उसकी क्षमता का सही उपयोग आज तक सही मायने में नहीं किया गया है। भारत में महिलाओं को जिस दृष्टि से समाज द्वारा देखा जाता है और लिंग में अंतर करके उनके साथ भेदभाव किया जाता है, उन्हें पुरूषों के समकक्ष नहीं समझा जाता। स्वतंत्रता के बाद भी पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया। महिलाओं को इस स्थिति से छुटकारा दिलाकर उनकी स्थिति को सम्मानजनक स्तर तक पहुंचाने एवं उनके सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक विकास को गति प्रदान करने तथा उनका सर्वागीण विकास का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से संसद में 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस संविधान संशोधन के द्वारा महिलाओं की पंचायतीराज व्यवस्था में राजनीतिक सहभागीदारी सुनिश्चित की परतुं वास्तव में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पुरूषों की तुलना में अंत्यत न्यून है इसलिए प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान राज्य के बाड़मेर जिले के विशेष संदर्भ में पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता न्यून होने के कारणों का परीक्षण किया गया।

मूल शब्द :– पंचायतीराज, महिला आरक्षण, राजनीतिक सहभागिता, अशिक्षा एवं राजनीतिक अनुभवहीनता।

प्रस्तावना :– भारतीय संस्कृति में महिलाओं की भूमिका सदैव ही अंत्यत महत्वपूर्ण रही है। महिला मानवीय भावों की मंजूषा है उसने परिवार एवं समाज को अपने दिव्य गुणों से प्रभावित ही नहीं किया अपितु एक सभ्य राष्ट्र की प्रगति उस पर अवलंबित है इसलिए नेपोलियन बोनापार्ट ने महिलाओ में अंतर्निहित शक्ति को समझते हुए कहा था कि "Give me a good mother and I will give you a good nation" अर्थात तुम मुझे एक अच्छी मां दो और मैं तुम्हें एक अच्छा राष्ट्र दूंगा इसलिए महिलाओं की प्रत्येक क्षेत्र में सहभागिता होना आवश्यक है।

पंचायतीराज भारत में पुरातन काल से चला आ रहा है। पंचायतें स्थानीय स्तर की वें संस्थाएं हैं जो जनता द्वारा चुनी जाती है तथा जिन्हें राष्ट्रीय या प्रांतीय शासन के नियंत्रण में रहते हुए नागरिकों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अधिकार एवं उत्तरदायित्व प्राप्त होते हैं। अर्थात एक गांव के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं ही प्रबंध करना पंचायतीराज व्यवस्था है। पंचायतीराज व्यवस्था के माध्यम से ही महिला–पुरूष अपनी राजनीतिक सहभागिता सुनिश्चित करते है परतुं राजनीतिक सहभागिता की दृष्टि से पुरूषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति अंत्यत पिछड़ी हुई है। भारत के संविधान में महिलाओं को पुरूषों के समान ही अधिकार प्रदान किए गए फिर भी वास्तविकता यह है कि सदियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्थाओं के दबाव में महिलाएं अभी भी अधिनस्थ अवस्था में जीवन जी रही है और अपने संवैधानिक अधिकारों को प्राप्त करने में सफल नहीं हुई। विशेषकर बाड़मेर जिले जैसे पिछड़े ग्रामीण क्षेत्र में समाज की महिलाओं के राजनीतिक सहभागिता पुरूषों की तुलना में अंत्यत पिछड़ी हुई है। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान राज्य के बाड़मेर जिले की पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं राजनीतिक सहभागिता का वर्तमान परिदृश्य प्रस्तुत किया गया।

पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति को सम्मानीय स्तर तक लाने और उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान में आवश्यक गति तथा दिशा प्रदान करने के उद्देश्य से 73 वें संविधान

*** शोधार्थी (राजनीति विज्ञान विभाग) जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।**

संसोधन अधिनियम एवं राजस्थान पंचायतीराज अधिनियम 1994, संशोधित अधिनियम 1996 के माध्यम से पंचायतों को संवैधानिकता का दर्जा प्रदान किया गया एवं महिलाओं को एक–तिहाई पद देकर उनकी राजनीतिक सहभागीदारी सुनिश्चित की गई। वर्तमान राजस्थान पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण होते हुए भी पंचायतों में निर्वाचित होने के बाद (राजनीतिक प्रक्रिया निर्वाचन एवं बैठकों में भाग लेना) में उनकी स्वतंत्र भागीदारी संतोषप्रद नहीं है। वें अपने संवैधानिक अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों को नहीं समझ पा रही है और ना ही उनका स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग कर रही है।

यद्यपि पंचायतीराज संस्थाओं में भागीदारी होने से महिलाओं का न केवल आत्मिक मनोबल बढा है बल्कि देश के चहुंमुखी विकास में उनकी सक्रिय व प्रभावी भुमिका सराहनीय है। इसी तथ्य को साबित करते हुए संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (UNFPA) ने भी अपनी वर्तमान रिपोर्ट में बताया है कि वर्तमान भारत में पंचायतीराज में महिला आरक्षण व्यवस्था के कारण महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। तथा इस कारण से महिलाओं में नई चेतना, नई सामर्थ्य व आशा की किरणों का संचार हुआ है। पुरूषों की तुलना में महिलाएं राजनीतिक गतिविधियों में अधिक रूचि नहीं रखती है उनकी सक्रियता एवं सहभागिता राजनीतिक क्षेत्र में न्यून ही रहती है इसी कारण महिलाओं के पक्ष में कानून, नीतियों एवं राजनीतिक प्रयासों के बावजूद भी राजनीतिक क्षेत्र में महिला सहभागिता का प्रतिशत आज भी काफी कम है।

राजस्थान का बाड़मेर जिला दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों, विषम आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश एवं प्राकृतिक आपदाओं से हमेशा जुझता रहा है। इसके अलावा इस जिले की शैक्षणिक संरचना भी संतोषप्रद नहीं हैं। इन परिस्थितियों में महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका पुरूषों की अपेक्षा संतोषजनक नहीं रही है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति तो अंत्यत दयनीय व कल्पना से परे है। बाड़मेर जिले में वर्तमान में 1 जिला परिषद, 21 पंचायत समितियां व 689 ग्राम पंचायतें है। अभी हाल ही में सम्पन्न हुए राजस्थान पंचायतीराज चुनाव 2020 में बाड़मेर जिले में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति इस प्रकार सामने आयी है।

क्र.सं.	पंचायतीराज संस्थाएं	पदनाम	कुल संख्या	महिला प्रतिनिधि	महिलाओं की सहभागिता
1.	जिला परिषद	जिला प्रमुख	0	00	00
2.	पंचायत समिति	प्रधान	21	10	47.61
3.	ग्राम पंचायत	सरपंच	689	395	57.32

इस प्रकार राजस्थान पंचायतीराज चुनाव 2020 के परिणाम से ज्ञात होता है कि बाड़मेर जिले में ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतों में महिलाओं की राजनैतिक सहभागिता उच्च स्तर पर रही लेकिन खण्ड़ एवं जिला स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता आज भी संतोषजनक नहीं है।

राजस्थान पंचायतीराज व्यवस्था में पुरूषों की तुलना में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता न्युन होने के निम्नलिखित कारण है–

1. पुरूष प्रधान समाज
2. शिक्षा का अभाव
3. राजनीतिक अनुभवहीनता
4. आरक्षण व्यवस्था में कमियां
5. सामाजिक–आर्थिक पिछड़ापन
6. आत्मबल का अभाव
7. राजनीति का अपराधीकरण

पुरूष प्रधान समाज :– पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था ग्रामीण राजस्थान में पंचायतीराज व्यवस्था में महिला राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करती है। आज भी कुछ परिवार के पुरूष अपनी महिलाओं को पंचायतों में काम करने की अनुमति नहीं देते है क्योंकि उनके अनुसार महिलाओं का स्थान घर की चारदीवारी में है, घर से बाहर जाकर लोगों की पंचायती करने में नही है। बाड़मेर जिले की अधिकतर ग्राम पंचायतों की महिला सरपंचों के समस्त कार्य उनके पति, पिता, ससुर या भाई द्वारा सम्पादित किए जाते है। उनको यह कहकर चुप करवा दिया जाता है कि तुम महिलाओं का काम खाना बनाना और बच्चों की देखभाल करना है। वास्तविकता तो यह है कि बाड़मेर की ग्रामीण जनता भी उनके पति की साख, योग्यता, ईमानदारी एवं

राजनीतिक प्रभाव को देखते हुए मतदान करते है और जितने के बाद महिलाओं को केवल आवश्यक कार्यों में ही अपने साथ ले जाते है। उनके 'हां या ना' के आधार पर ही महिला किसी प्रस्ताव या अन्य प्रशासनिक कार्यों एवं आदेशों पर हस्ताक्षर करती है।

शिक्षा का अभाव :– राजस्थान की पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता न्यून होने का सबसे बड़ा कारण शिक्षा का अभाव है। 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल साक्षरता दर 66.10 प्रतिशत है जो देश में 26 वें स्थान पर आता है। उसमें भी महिलाओं की कुल साक्षरता दर 52.10 प्रतिशत ही है। साक्षरता की दृष्टि से बाड़मेर जिला राजस्थान में 29 वें नंबर पर आता है जहां साक्षरता दर 56.50 प्रतिशत है तो वहीं महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 40.6 प्रतिशत ही है। अतः स्वभाविक है कि अशिक्षित महिलाओं को गुमराह करना सरल होता है। हालांकि पंचायतीराज चुनाव में शैक्षणिक योग्यता को एक आवश्यक शर्त के रूप में बीच में जोड़ा गया लेकिन तत्कालिक सरकार द्वारा पंचायतराज चुनाव में 2020 में शैक्षणिक योग्यता को समाप्त कर दिया गया है।

राजनीतिक अनुभवहीनता :– 73वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित होने के बाद आज की पंचायतीराज संस्थाओं में विपुल मात्रा में महिलाएं भी पंचायतों में आने लग गयी है। जो पहली बार राजनीतिक भागीदारी निभा रही है जो अधिकतर अशिक्षित है अथवा उनके पास जानकारी और राजनीतिक अनुभाव का अभाव जिसके कारण हर छोटे से कार्य के लिए महिलाओं को पुरूष वर्ग पर आश्रित रहना पड़ता है। शोध कार्य के दौरान मैनें सर्वेक्षण व अध्ययन के आधार पर मैनें पाया कि राजस्थान के बाड़मेर जिले की महिलाएं प्रशासनिक नियमों एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ है। उनमें राजनीतिक अनुभव का नितांत अभाव है।

आरक्षण व्यवस्था में कमियां :– पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता न्यून होने का एक कारण आरक्षण व्यवस्था में खामियों का होना है क्योंकि राजस्थान पंचायतीराज चुनाव में 50 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित होते है कितुं अगले चुनाव में वें उस वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित नही रहते, उन्हें बदल दिया जाता है ऐसी स्थिति में पहले वाले चुनाव में निर्वाचित महिला के लिए अपना निर्वाचन क्षेत्र बदलना अनिवार्य हो जाता है ऐसी स्थिति में उन्हें पिछले कार्यकाल में करवाए गए विकास के कार्यों का फायदा नही मिल पाता है। इस व्यवस्था से भी महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता प्रभावित होती है।

सामाजिक–आर्थिक पिछड़ापन :– राजस्थान में महिलाओं को आज भी अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ रहा है क्योंकि इस राज्यों में महिलाएं सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई है। सदियों से गुलामी की जंजीरों से जकड़े रहने के कारण समाज में अनेक कुरीतियों, अंधविश्वास और हमारी सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों के स्थान को संकुचित कर दिया। समाज में व्याप्त पर्दा प्रथा, सति प्रथा, बालविवाह, तथा पुराने रीति–रिवाजों के चलते महिलाएं पंचायतीराज में पूर्ण भागीदारी नहीं कर पाती। बाड़मेर जिले की ग्रामीण महिलाओं को विशेष रूप से कमजोर वर्गों की महिलाओं को अपने परिवार के पालन पोषण के लिए कृषि कार्य अथवा मजदूरी भी करनी पड़ती है जिस वजह से वें पंचायतीराज व्यवस्था में अपनी राजनीतिक सहभागिता नहीं निभा पाती है।

आत्मबल का अभाव :– सामान्यतः महिलाओं में आत्मबल का अभाव होता है। वें शोषण, कुपोषण तथा आसानी से सामाजिक हिंसा की शिकार हो जाती। इनके व्यवहार में आत्मविश्वास की कमी, उदासीनता, निर्भरता, अनुरूपता तथा संगठन का अभाव जैसी दुर्बलताएं पाई जाती है। जिसका लाभ सरकारी अधिकारी और प्रभावशाली लोग उठा रहे है। आत्मबल के अभाव के कारण ही महिलाएं भ्रष्टाचार जैसे अनैतिक कार्यों में समुचित हस्तक्षेप नहीं कर पा रही है।

राजनीति का अपराधीकरण :– पंचायतीराज चुनाव में बढते हुए राजनीति के अपराधीकरण से महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पर एक नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। तथा पंचायतीराज संस्थाओं में निर्वाचित होने के बाद भी महिलाओं के साथ छेड़छाड़ व यौन उत्पीड़न सहित कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

अतः चुनाव में बढती हुई हिंसा व राजनीति के अपराधीकरण के कारण पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता न्यून होने का एक बड़ा कारण है।

निष्कर्ष :– राजस्थान पंचायतीराज व्यवस्था में ग्रामीण सत्ता का केन्द्र अभी तक पुरूष वर्ग के हाथों मे ही रहा है। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण होने से उनकी संख्या में वृद्धि भले ही हुई हो लेकिन वें आज भी पुरूषों के अधिन है। इसलिए महिलाएं स्वयं जागरूक एवं शिक्षित होकर अपने संवैधानिक अधिकारों के महत्व को समझकर यदि उनका समुचित उपयोग करती है और आगे बढकर अपनी भूमिका सशक्त करती है तभी पंचायतीराज व्यवस्था में उनके 50 प्रतिशत आरक्षण का वास्तविक अर्थ साबित होगा। पिछले कुछ दशकों में बाड़मेर जिले की पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता व सहभागिता बढी है जिसे हम चुनावी रैलियों, धरना, राजनीतिक प्रदर्शन आदि में देख सकते है। यह भविष्य के लिए अच्छे संकेत है।

संदर्भ–सूची :–

1. कटारिया, सुरेन्द्र : पंचायती राज संस्थाएं : अतीत, वर्तमान और भविष्य, नेशनल पब्लिकेशिगं हाउस, जयपुर, 2010, पृष्ठ संख्या 34–35।
2. आर्य, विमला : पंचायतीराज में महिलाओं की भूमिका, राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर, 2013, पृष्ठ संख्या 274।
3. महला, एच. एस., : राजस्थान में पंचायतीराज की वर्तमान स्थिति, समस्याएं एवं सुझाव, राजस्थान विकास, मार्च–अप्रैल 1999, पृष्ठ संख्या 7।
4. कुमावत, ललित, : पंचायतीराज एवं वंचित महिला समुह का उभरता नेतृत्व, क्लासिकल पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या 122।
5. मीणा, हरिमोहन, : पंचायतीराज संस्थानों और उनके विकास : राजस्थान के संदर्भ में शोध पत्रिका, सितम्बर 2018, पृष्ठ संख्या 11।
6. राजस्थान पंचायतीराज वार्षिक प्रतिवेदन 2018 से 2021 तक।
7. राजस्थान पत्रिका, दैनिक नवज्योति एवं दैनिक भास्कर बाड़मेर।
8. www.panchaytraj.gov.nic.in
9. www.rajpanchayt.rajasthan.gov.in
10. www.barmer.rajasthan.gov.in

शिमला गाँव (खेतड़ी) के ऐतिहासिक कुओं का सिंचाई में योगदान

देवेन्द्र कुल्हार*

शोध सारांश :– शेखावाटी क्षेत्र में स्थापत्य कला के प्रेमी सेठ–साहूकार, राजा–महाराजाओं ने अपनी स्मृति या पूर्वजों की स्मृति में प्रदेश के विभिन्न भागों में कलात्मक बावड़ियों, तालाबों, झालरों एवं कुँओं का निर्माण करवाया। शेरशाह सूरी द्वारा शिमला गाँव के कुँए भी अपनी विशिष्ट विशेषताओं से युक्त है। शेरशाह ने शिमला गाँव में 308 कुँओं का निर्माण करवाया था। वर्तमान में लगभग 80 कुओं का साक्ष्य मिलता है। ये कुँए 18–19वीं शताब्दियों में खेतड़ी ठिकाने में कृषि व्यवस्था के मुख्य आधार रहे है। इन कुँओं की अपनी ही मूलभूत विशेषताएँ रही है। आज भी इन कुँओं के पास सिंचाई की तकनीक रहट, ढ़ेकली, चड़स आदि का साक्ष्य मिल जाता है।

कूट शब्द :– शेखावाटी, खेतड़ी, शिमला गाँव, कुँए, रहट, चड़स ढ़ेकली।

शेखावाटी क्षेत्र अपनी असाधारण जल प्रबंधन प्रणाली का उत्कृष्ट उदाहरण रहा है। यहाँ के शासक, जागीरदार, व्यापारियों व सेठों ने भी परम्परागत जल प्रबंधन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भौतिक सर्वेक्षण से यह सिद्ध हुआ है कि शेखावटी क्षेत्र के प्रत्येक गाँव में अनेक कुँओं का साक्ष्य मिलता है। शिमला गाँव के ऐतिहासिक कुँए इसी सर्वेक्षण से ज्ञात हुये।

राजस्थान राज्य में सिंचाई के द्वारा कृषि करने का सर्वेक्षण और साहित्यिक अध्ययन कुछ विद्वानों द्वारा किया गया है। इसमें बी.एल. भादानी[1] अनुपम मिश्र[2] मयंक कुमार[3] डॉ. जिब्राइल[4] प्रमुख है। अनुपम मिश्र ने रेगिस्तानी क्षेत्र के कुँओं के निर्माण की तकनीकों और विधियों के बारे में अध्ययन किया है। डॉ. जिब्राइल शेखावटी क्षेत्र की कृषि व्यवस्था व सिंचाई तकनीकी पर अध्ययन किया है। शिमला गाँव के संबंध में इस प्रकार का कोई सर्वेक्षण नहीं हुआ है।

शिमला गाँव की भौगोलिक परिस्थिति को समझने के लिए एक भौतिक सर्वेक्षण आवश्यक था। इसी को ध्यान में रखते हुये सर्वप्रथम शिमला गाँव की वर्तमान काल में मौजूद जलीय इकाईयों का सर्वेक्षण किया। फिर साहित्यिक स्त्रोतों का अध्ययन किया। साहित्यिक स्त्रोतों में टी. प्रकाश[5] प. झाबरमल[6] प्रो. पेमाराम[7] प्रमुख विद्वानों की पुस्तकों का अध्ययन किया।

विश्व की सभी सभ्यताओं ने जल के निकट ही उत्पन्न हुई है और इससे भी सार्वभौम सत्य है जल से जीवन की उत्पत्ति हुई है। राजस्थान में जल की कम उपलब्धता एक समस्या रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका का मुख्य स्त्रोत कृषि व पशुपालन होता है, उसका भी आधार जल है। वर्तमान समय में घटता जल स्तर ने शेखावटी क्षेत्र को डार्क जोन में ला कर खड़ा कर दिया है अगर अब हमने वर्षा के जल का संरक्षण नहीं किया तो यह समस्या विकराल रूप धारण कर लेगी। इस शोध पत्र के माध्यम से शिमला गाँव में किस प्रकार परम्परागत जल स्त्रोत का उपयोग कर कृषि में नया कीर्तिमान स्थापित किया उसका अध्ययन करने का प्रयास किया है।

शिमला गाँव के ऐतिहासिक कुँओं का सिंचाई में योगदान को हम दो भागों में बाँट कर अध्ययन करेंगे। प्रथम, शिमला गाँव और ऐतिहासिक कुँए। द्वितीयः कुँओं से सिंचाई व्यवस्था।

शिमला गाँव और ऐतिहासिक कुँए :– शेखावटी क्षेत्र पर क्रमशः चौहान, जोड, मोहिल, निर्वाण, कायमखानी व राजपूत वंश का शासक रहा है।[8] शार्दूल सिंह के वंशजों ने इस क्षेत्र को समान पाँच भागों में

***शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।**

बाँट लिया था इसी कारण यह पंचपाना कहलाया।[9] शार्दूल सिंह का पुत्र किशनसिंह ने खेतड़ी ठिकाने की स्थापना कि जिसमें 253 गाँव शामिल थे।[10] इन सभी गाँवों में सबसे ऐतिहासिक गाँव था शिमला। शिमला गाँव की स्थापना संवत् 1340 सावन सुदी 10 को हुई थी।[11] बैलगाड़ी की शिमल के आधार पर गाँव का नामकरण हुआ।

स्मिथ महोदय शेरशाह सूरी का जन्म स्थान शिमला गाँव बताते है।[12] जब शेरशाह सूरी हिन्दुस्तान का सुल्तान बना तो शिमला गाँव के मुखिया लोगों को दिल्ली बुलाया। सुल्तान ने गाँव वालों की इच्छा पर गाँव की सुरक्षा के लिये किले निर्माण का आदेश दिया। जब किले का निर्माण कार्य शुरू हुआ तो गाँव के लोगों को महसूस हुआ कि किले पर कोई शासक या जागीरदार अधिकार कर लेगा। इसी कारण गाँव के मुखिया वापस दिल्ली जाकर सुल्तान से किले की जगह कृषि हेतु कुँओं के निर्माण की बात कही। बादशाह ने किले के निर्माण को रूकवा दिया और कुँओं के निर्माण का आदेश दे दिया। गाँव में कुल 308 कुँओं की 'टोई' (निर्माण कार्य आरंभ) हुई आज भी शिमला गाँव में लगभग 100 कुँए इस बात का साक्ष्य उपलब्ध करवा रहे। किले की दिवार के साक्ष्य आज भी देखने को मिलते है।[13]

शिमला गाँव के कुँओं के नाम सागरिया का कुँआ, खारिया का कुँआ, बीरबल का कुँआ, धौला कुँआ, ईसर वाला कुँआ दुलावा वाला कुँआ, बोहरा वाला कुँआ, बोरिया वाला कुँआ, चौलावा वाला कुँआ, लादु वाला कुँआ, चिड़ानिया वाला कुँआ, बाला वाला कुँआ, खरसण्डा वाला कुँआ, पीपनियों वाला कुँआ, गिलोटी वाला कुँआ, बिजोला वाला कुँआ, गौपाल वाला कुँआ[14] आदि प्रमुख है। वर्तमान समय में अनेक कुँओं को नष्ट कर दिया गया है। इनके नाम अब ज्ञात नहीं है।

कुँओं के चित्र–

कुँओं की संरचना एवं प्रमुख विशेषताएँ[15]–

1. प्रत्येक कुँआ स्वच्छ जल का स्त्रोत था।
2. प्रत्येक कुँए पर चार मीनारों का निर्माण मिलता है।
3. कुँए के चारों और चार 'घूण'[16] लगाने का साक्ष्य मिलता है।
4. कुँए के चारों और का भाग 5–7 फीट ऊँचा मिलता है।

5. कुछ कुँओं के समीप घड़ोई[18] का भी साक्ष्य मिलता था।
6. कुँए के ऊपर जाने के लिये सीढ़ियों का प्रयोग होता था।
7. कुँए के निर्माण में पत्थर का प्रयोग होता था जो अरावली पर्वत श्रृंखला का होता था।
8. कुँए से पानी निकालने के लिए सम्भवतः चड़स प्रणाली के प्रयोग मिलता है।
9. कुँए की चार मिनारों में प्रत्येक मीनार में पाँच हिस्सों में विभक्त है जिसमें तीन सामान्य होती है, चतुर्थ में कुछ डिजाइन होती है व पंच जो ऊपर होती है वहाँ गुम्बद के आकार का साक्ष्य मिलता है। गुम्बद के ऊपर आमलख भी मिलता है।
10. प्रत्येक कुँए में चारों दिशाओं में चार ढ़ाणो के साक्ष्य मिलते है जो कुँए से पानी निकालने के बाद इनमें संग्रहण के लिये रखा जाता था।

कुँओं द्वारा सिंचाई पद्धति–

कुँओं से पानी निकालने की सामान्यतः तीन विधियाँ प्रचलित थी। प्रथमः लाव–चड़स सिचांई प्रणाली, द्वितीय रहट/संकिया सिंचाई प्रणाली, तृतीय–ढेकली सिंचाई प्रणाली।

चड़स चमड़े से बना होता है। चड़स को लाव या तेवण के सहारे कुँऐ से खींचा जाता था। कुँए की दीवारों के मध्य एक मोटा पत्थर या लट्टा लगाया जाता था जिस पर एक गोल चकरी घूण होती थी। इसी घूण के ऊपर लाव लगा कर चड़स को कुँए में अन्दर ले जाया जाता था व इसी के माध्यम से बाहर लाया जाता था लाव को बेलों के द्वारा खींचा जाता था। जिस स्थान पर बैल लाव खींचते को उसको फेरा या सारण कहा जाता था। बैलों की जोड़ी में लकड़ी के एक विशेष के ढ़ाचे (जूड़ा) में लाव को लगाया जाता था। चड़स में पानी भने के बाद खाम्भी[19] बैलों को हांकता था। चड़स लाव से बंधी होती थी और लाव घूण पर घूमती थी। जब चड़स पानी से भरकर कुँए के ढ़ाणा के समीप आता तो खाम्भी बेलों को रोक देता था। अब ढ़ाणे में खड़ा गोसी[20] सूण्ड पर लगी पतली रस्सी को खींच लेता था तो चड़स का सारा पानी ढ़ाणा में निकल जाता था। इस प्रकार पुनः चड़स को कुँए में उतरा जाता और वापस खाम्भी बैलों को हांकता था[21] ढाणे जो सामान्यतः कुँए के चारों तरफ होते थे उनमें से नालियों के माध्यम से पानी को एक कुण्ड में संग्रहित किया जाता था। संग्रहित जल का प्रयोग कृषि कार्यों में होता था।

संकिया या रहट जमीन आधारित कुँए से जल उठाने वाला उपकरण था। यह नोरिया का विकसित रूप था। जब अधिक गहरे स्तर से पानी खींचने के लिये तीली पर लगे पात्रों का स्थान रस्सी चेन या पात्र माला ने ले लिया तो यह गियर रहित संकिया कहलाया, आदमी अपने हाथों से इसे घूमाते थे। आगे चल कर गियर युक्त संकिया अस्तित्व में आया। इसमें कुँए तक पहुँचने योग्य गोलाई युक्त दो रस्सियों को लिया जाता था इन रस्सियों के बीच लकड़ियाँ बाँध दी जाती थी और इन लकड़ियों में घड़े बाँध दिये जाते थे, फिर इसे कुँए पर लगी चरखी पर रख देते थे। इस चर्खी के धुरे से एक दूसरी चर्खी जुड़ी रहती थी, जिसके निकट ही खड़े धुरे पर एक अन्य चर्खी होती थी, इस चर्खी को बैल घूमाता था। इसके दाँत चर्खी के दाँत से जुड़े रहते थे। जिसके चलते वह चर्खी जिस घड़े पर बड़े होते थे घूमती थी। इस प्रकार कुँए से पानी निकालता था और पास के एक होद में गिरता था और फिर नालियों के द्वारा गंतव्य स्थान को पहुँचाता था[22]। इसी प्रकार निकाले गये पानी का उपयोग कृषि में होता था।

ढ़ेकली जिसे लाट या लाटा भी कहते है जो कि लीवर के प्रथम श्रेणी सिद्धान्त पर कार्य करती थी। इसमें एक लम्बी बल्ली की धरनी से एक रस्सी बाँधी जाती थी। इस रस्सी के एक सिरे पर बाल्टी बाँधी जाती थी, जबकि दूसरे सिरे को कुँए के ऊपर लटकती हुई बल्ली के एक सिरे से बाँध जाता था। इस बल्ली के दूसरे सिरे से एक प्रतिभार लटकाया जाता था, जो पानी से भरी बाल्टी से थोड़ा अधिक भारी होता था। इस प्रकार भार और प्रतिभार के दोनों किनारों पर होने से बल्ली के मध्य में आलम्ब उत्पन्न होता था। जिससे पानी कुँए से निकलता था[23]।

शिमला गाँव के कुँओं की संरचना को देखकर हम अनुमान लगा सकते है कि कुँओं से पानी निकालने की चड़स पद्धति का ही पालन किया जाता था। इन कुँओं से प्रमुख फसल बाजरा, मोठ, मूँग, ज्वार, गेहूँ, चना, जौ, सरसों, कपास, तम्बाकू, मेथी[24] आदि की सिंचाई की जाती थी।

राजस्थान ही नहीं संपूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में अनिश्चिता भी देखने को मिलती है। वर्तमान समय में शेखावटी क्षेत्र में कुँओं द्वारा भू–जल का दोहन इतना बढ़ गया कि सरकार ने संपूर्ण क्षेत्र को डार्क जोन घोषित करना पड़ा। हमें जल संरक्षण की हमारी पांरपारिक तकनीकों को अपनाकर नई राह का सृजन करना होगा। पूर्वजों ने वर्षा के जल को भी संग्रहित करके कृषि के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रतिमान स्थापित किये थे। इससे जहाँ पानी की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित होती है वहीं भू–जल को भी स्थिर रखने में मदद मिलती है। हमें पुनः सिंचाई के परम्परागत साधनों पर ध्यान देना होगा।

संदर्भ–सूची

1. बी. एल. भादानी, वॉटर हार्वेस्टिंग, कन्जर्वेसन एंड इरीर्गेशन इन मेवाड़ (ए.डी. 800–1700), मनोहर, दिल्ली, 2012
2. अनुपम मिश्र, राजस्थान की रजत बूँदे, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2019
3. मयंक कुमार, मानसून इकोलॉजीज इर्रिगेशन, एग्रीकल्चर एंड सेटलमेंट पैटर्न इन राजस्थान डयूरिंग द प्री–कोलोनियल पीरियड, मनोहर, दिल्ली, 2013
4. जिब्राइल, इकोनमी एण्ड डेमोग्राफिक प्रोफाइल ऑफ अर्बन राजस्थान (एटीन्थ–नाइन्टीन्थ सेन्युरीज) मनोहर, दिल्ली, 2019
   शेखावाटी क्षेत्र में जल प्रबंधन एवं कृषि तकनिकी : फतेहपुर कस्बे के विशेष संदर्भ में एक सर्वेक्षण, शोध पत्र, ग्लोबल रिसर्चर व्यू, वॉल्यूम 2(1) जुलाई–दिसम्बर, 2018 पृ.सं. 23–30
5. टी. प्रकाश, शिमला का इतिहास, इतिहास शोध संस्थान, शिमला (झुंझुंनूं) 1987
6. प. झाबरमल शर्मा, खेतड़ी का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2016
7. पेमाराम, शेखावाटी किसान आन्दोलन का आन्दोलन मिर्नवा पब्लिकेशन, जोधपुर 2017
8. पेमाराम, पूर्वोक्त, पृ.सं. 3–4
9. आर्य, हरफूल, शेखावटी के ठिकानों का इतिहास व योगदान, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1987
10. शर्मा, झाबरमल, खेतड़ी का इतिहास, राजस्थानी गंथागार, जोधपुर 2016, पृ.सं. 2
11. प्रकाश, टी. शिमला का इतिहास, इतिहास शोध संस्थान, शिमला 1987, पृ.सं. 5
12. शर्मा, झाबरमल, खेतड़ी का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2016, पृ.सं. 24
13. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 06.02.2020
14. साक्षात्कार, कृष्ण कुमार, निवासी शिमला
15. भौतिक सर्वेक्षण के आधार पर
16. घूण–लकड़ी से निर्मित गोलाकार जिस पर लाव को रखा जाता था
17. ढ़ाणा–कुँओं से पानी निकालने के बाद निकटतक जल संग्रह स्थान
18. घड़ोई–कुँए के पास बनी कुण्डी
19. खाम्भी–कुँए पर बैल हांकने वाला व्यक्ति
20. गोसी – चड़स को खाली करने वाला व्यक्ति
21. ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी भारत में जल प्रबंधन, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2012, पृ.सं. 195–197
22. जिब्राइल, जल, जीवन और समाज, एनी बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2019, पृ. सं. 418
23. जिब्राइल, पूर्वोक्त, पृ. सं. 417
24. शर्मा, झाबरमल, खेतड़ी का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2016, पृ.सं. 16

शम्से अदब : पद्मश्री शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी

(प्रथम पुण्यतिथि 25 दिसम्बर, 2021)

डॉ. फ़ाज़िल अहसन हाशमी*

पद्मश्री शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी साहित्य जगत में किसी परिचय के मोहताज नहीं, अपने कलाम और कमाल की बदौलत ''साहित्य के सूरज'' (शम्से अदब) है। एक ऐसी तारीख़–साज़ शख़्सियत विद्वता जिसकी पहचान बनीं, अध्ययन एवं आलोचना की नई तकनीक तथा मानक, निर्धारित कर साहित्य के क्षितिज पर कभी न अस्त होने वाला सूरज बन कर चमके और जब रूख़्सत हुए तो सुर्ख़ी क़ायम कर गए।

सूरज हूँ ज़िन्दगी की रमक़ छोड़ जाऊंगा
मैं डूब भी गया तो शफ़क़ छोड़ जाऊंगा

'फ़ारूक़ी' की अस्ल तारीख पैदाइश 30 सितम्बर 1935 है वह ज़िला प्रतापगढ़ के कालाकांकर में पैदा हुए थे जबकि इनके पूर्वज का वतन कोरियापार जिला आजमगढ़ था। बी.ए. पास करने के बाद सन 1953 ई में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम.ए. (अंग्रेज़ी शास्त्र) में प्रवेश लिया और सन् 1955 ई. में प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण हुए। विश्वविद्यालय में लेक्चरर शिप न मिलने पर सतीशचन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय में अंग्रेज़ी अध्यापक के रूप में पढ़ाने लगे। सन् 1958 ई. में आई.ए. एस. (एलाइड) के लिए चयनित हुए तो उन्होंने पोस्टल सर्विसेज को वरीयता दी और उसी विभाग में एक कुशल प्रकाशक एवं सम्मानित अधिकारी के पद से सन् 1994 में सेवानिवृत्त होकर इलाहाबाद (प्रयागराज) आकर बस गए।

सेवा के दौरान उच्च पदों पर आसीन रहते हुए सन् 1968 में 'लफ्ज़ो–मआनी', सन 1973 में 'शेर, ग़ैर शेर और नस्र', सन् 1982 में 'अफ़साने की हिमायत में' सन 1984 में 'तन्क़ीदी अफ़्कार'(साहित्य एकादमी पुरस्कृत), सन 1986 में 'अस्बातो नफ़ी' सन् 1989 में 'तफ़्हीमे ग़ालिब' सन् 1993 में 'अंदाज़े–गुफ़्तुगू क्या है' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं।

सन् 1998 में 'दास्ताने अमीर हम्ज़ा' सन् 2001 में 'उर्दू का इब्तेदाई ज़माना' दिल्ली में प्रकाशित हुई। सन् 1998 में सरस्वती सम्मान पहली बार किसी उर्दू साहित्यकार को प्रदत्त किया गया। पुस्तक– ''शेरे शोर अंगेज़'' जो चार अंकों पर आधारित है इस रचना में 'मीर' के अश्आर की व्याख्या है। फारूक़ी ने 1966 में प्रो. एजाज़ हुसैन व प्रो. एहतेशाम हुसैन के सम्पादन में 'शबख़ून' पर्चा निकाला। सन् 2002 में फारूक़ी साहब को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से डी. लिट्. की मानद् डिग्री प्रदत्त की गयीं।

फारूक़ी साहब के साहित्यिक व्यक्तित्व के बारे में उर्दू साहित्य के आलोचक एवं कवि 'फ़ुज़ैल जाफ़री' ने अपने लेख 'कमान और जख़्म' में लिखा है कि– ''इनकी तसानीफ" और ख़ुसूसन 'तफ़्हीमे ग़ालिब', 'शेर ग़ैर शेर और नस्र', 'तन्क़ीदी अफ़्कार', 'अरूज़ो आहंग', लफ़्जो मआनी, 'शेरे शोर अंगेज़' अंदाज़े" गुफ़्तुगू क्या है, 'अफ़साने की हिमायत में', और 'उर्दू गज़ल के अहम मोड़' वग़ैरह तसानीफ़ का मोतालेआ करने से यह हक़ीक़त अच्छी तरह वाज़ेह हो जाती है कि फारूक़ी में एक ऐसा नक्क़ाद नज़र आता है जिसने महज़ ब्लैंस ;आकस्मिकद्ध तास्सुरात, तअस्सुबात या ख़ुर्दह ख़्यालात को जमा करके तन्क़ीदी मज्मूओं का नाम नहीं दिया बल्कि नेहायत और संजीदगी के साथ तन्क़ीद को एक नई बूतीक़ा तर्तीब देने की कोशिश की है।''(पेज–243)

'फारुक़ी' रवायती किस्म के साहित्यकार व शायर नहीं थे बल्कि अपने अहद (काल) के अदबी पैग़म्बर (साहित्यिक दूत) थे। वह आधुनिकता के उर्दू साहित्य में जनक थे मगर उनकी पहचान ब्लैंस स्पजमतंजनतम बनी। कहीं कहीं तो ऐसी बातें अर्थात आक्रामक तर्ज अपनाया है कि समझने में दुश्वारी महसूस हुई उदाहरण के तौर पर इनके पर्चे 'शबख़ून' में छपने वाले शायर 'अहमद मुश्ताक' को 'फ़िराक़'

***उर्दू विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।**

गोरखपुरी से बड़ा शायर 'असग़र' गोन्डवी और 'जिगर मुरादाबादी' को मामूली फ़न्कार कहा। 'फ़ारुक़ी' की शायरी के चार संकलन– ('गंजे सोख़्ताह', 'सब्ज़ अन्दर सब्ज़', 'चार सिमतों का दरिया', आस्मां मेहराब) प्रकाशित हुए मगर शायरी में फ़ारूक़ी शोहरत नहीं पा सके। बड़े शायर के रूप में उन्हें कुबूलियत नहीं मिल सकी। प्रो. मुज़फ्फ़र हनफ़ी ने अपने लेख 'शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी बहैसियत शायर' में लिखा है कि– ''फ़ारूक़ी के शेयरी मज्मूओं (संकलनों) में लोगों ने 'फ़िराक़' और 'असग़र' से बडे" शायर को तलाश करने की कोशिश की और नाकाम हुए।''(कारवाने अदब– पेज– 109) फ़ारूकी ने उर्दू साहित्य में पाँच बड़े शायरों ;मीर, ग़ालिब, अनीस, इक़बाल, अकबर इलाहाबादीद्ध को मान्यता दी है, एक आलेख में उन्होने लिखा है कि– "मैं अकबर को उर्दू के पाँच सबसे बड़े शायरों में शुमार करता हूँ।"/"अकबर इलाहाबादी नौ अबादियाती नेज़ाम और अहदे हाज़िर"

फ़ारूक़ी के नज़दीक अकबर इलाहाबादी के अलावा चार अन्य बड़े शायर मीर, ग़ालिब, अनीस और इक़बाल थे जिन्हे वह बड़े शायरों में शुमार करते थे। जदीदियत के परचम बरदार फ़ारूक़ी दर्द और जज़बात से भरी शायरी भी करते थे उन्होने अपनी अर्धाग्नी ;रफ़ीके हयातद्ध जमीला फ़ारूक़ी के निधन पर आँसुओं की एक बाढ़ रोके रखा मगर दर्द भरे अश्आर लिखने पर मजबूर हुए

घर दरवाज़े बच्चे सड़कें चिडियाँ क़लम और किताबे अलम
सरी दुनिया है मेरे चार तरफ फिर क्यों मैं तन्हा हूँ
यह लौहे मज़ार तो मेरी है फिर इस पर तुम्हारा नाम क्यों
यह मज़ार ही क्यों मुझे लगता है हर क़ब्र में मैं ही लेटा हूँ
ताक़त किसी में ग़म के सहने की अब नहीं थी
एक दिल फ़ेगार उठा एक दिल फ़ेगार रोया

इन अश्आर में मानवीय वेदना, तन्हाई, एक दूसरे से लगाव का अनोखेपन से इज़्हार है। 'फ़ारूक़ी' निःसंदेह बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी नज़र आते है मगर उनकी शायरी, आलोचना से दबी हुई महसूस होती है। 'फ़ारूक़ी' का एक शेर ये भी देखिए –

''सतह पे ताज़ह फूल हैं कौन समझ सका यह राज़।
आग किधर किधर लगी शोला कहां कहां गया।''

'फ़ारूक़ी' की शायरी को पढ़ने के लिए परिपक्व एवं खुली दृष्टि से अध्ययन करना होगा।

ख़ारे आहन हूं बर्गेज़र हो जाऊं
सूखी खेती हूं, चश्मे तर हो जाऊं
हल्का सा तेरे पांव पे चोट का दाग़
मैं चूम लूं इसको तो अमर हो जाऊं

सत्यता यह है कि 'फ़ारूक़ी' अपने काल के ऐसे महान आलोचक हैं कि अगर इस अहद को फ़ारूक़ी अहद कहा जाय तो ग़लत न होगा। आधुनिक उर्दू साहित्य के जनक मगर हमारे ब्नंस स्पजमतंजनतम की व्याख्या करके इसके सबसे बड़े क़द्रदान बन गए। उनकी साहित्यिक सेवा का काल उर्दू साहित्य में विशेषतः के साथ 'फ़ारूक़ी काल' कहलाएगा। प्रो. निसार अहमद फ़ारूक़ी ने शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी की विद्वता का ज़िक्र इस अंदाज में किया है– ''...कुल्लियाते मीर में 'पहुंचते' लिखा है लेकिन मफ़्हूम का तक़ाज़ह है कि यह लफ़्ज 'भेजते' होना चाहिए–फ़ारूक़ी साहब कहते हैं कि 'तरस्सुल' के मानी आम लुग़ात में नहीं मिलते। यह मदारिस की इस्तेलाह है। 'मीर' ने यह लफ़्ज 'ज़िक्रेमीर' और 'फ़ैज़े मीर' में भी इस्तेमाल किया है। इसका मफ़्हूम है.... यह 'रेसाले' के खानदान से है और 'रेसाला' रब्त को कहते है'' (कारवाने अदब–141)

'शेरे शोर अंगेज़' मीर के कलाम की ऐसी वृहद व्याख्या है जिसमें फ़ारूक़ी ने वर्षों अध्ययन करने के बाद बड़ी गम्भीरता से शायद उर्दू में पहली बार पेश किया है। 'फ़ारूक़ी' का लाज़वाल कारनामा ''कई चाँद

थे सरे आसमां'' नावेल है जो अहमद मुश्ताक के शेर के एक हिस्से को उन्होनें अपने उपन्यास का शीर्षक बनाया, शेर यूं है–

''कई चांद थे सरे आस्मां कि चमक चमक के पलट गये
न लहू मेरे ही जिगर में था न तुम्हारी ज़ुल्फ़ सियाह थी।''

इस उपन्यास में उर्दू के मशहूर शायर 'दाग़' देहलवी की मां 'वज़ीर बेगम' की निजी ज़िन्दगी एवं घटनाओं का ऐसा ऐतिहासिक, विश्लेषण है जिसमें उन्नीसवीं सदी के 'हिन्दोस्तान की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दशा की भरपूर प्रस्तुति है नावेल में कुल 76 अध्याय हैं' एक चरित्र 'नवाब साहब' है जो 'वज़ीर बेगम' से इस अंदाज़ में क्पंसवहनम करते हैं– ''तुमने पूरे महताब की तरह इस पूरे घर को रौशन कर रखा है अंधा ही हो जो तुम्हारी खूबियां न देख पाए। हमारा बस चले तो तुम्हें चादरे महताब की तरह ओढ़ कर सो जाएं, 'सरकार ने मुझे चाँद कहा मेरी तौक़ीर की। लेकिन आलीजाह तो शम्से रियासत और मेहरे अमारत हैं, सूरज के आगे चाँद की कुछ हैसियत नहीं आलीजाह ने ज़रूर सुना होगा, नूरूल क़मर मुस्तफीज़ मिनश्शम्स सूरज अपनी मंज़िल में चला जाएगा और चादरे महताब लिपटी लपेटी धरी रह जाएगी''।

अन्तर्राष्ट्रीय आलोचक अनवर सदीद ने इस नावेल के लिए लिखा है कि– ''शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी के जादूनिगार क़लम से निकला हुआ ऐसा नावेल (बताया) है जिस की नज़ीर उर्दू अदब की तारीख़ में नहीं मिलती।'' सच तो यह है कि फ़ारूक़ी साहब जैसा दूसरा साहित्यिक, व्यक्तित्व उर्दू अदब में नहीं मिलता। बक़ौल मिर्ज़ा ग़ालिब'

''वरक़ तमाम हुआ और मदह बाक़ी है''
सफ़ीना चाहिए इस बहरे बेकरां के लिए ''

(अर्थ :– वरक़– पन्ना, मदह– बड़ाई, बहर– समन्दर, बेकरां– असीमित।)

सन्दर्भ–सूची :–

1. "कमान और ज़ख़्म" –फ़ुज़ैल जाफ़री, जवाज़ पब्लिकेशन्स, मालेगाँव।
2. "शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी बहैसियत शायर"–प्रो. मुज़फ्फ़र हनफ़ी
3. "कारवाने अदब"–प्रो. निसार अहमद फ़ारूक़ी

India's Environmental Policy

(Challenges of 2030 Target)

Dr. Poornima Tripathi*

Severe air quality in Delhi and surrounding region during winters, uneven rainfalls spread across seasons, increasing climate disturbance throughout the country, people in India have already increased their threshold and are now used to it, only adjusting to these conditions' day by day. India is one of the economic performers of the world today but its impressive economic growth conceals the country's deteriorating environmental health. India's Environmental Performance Index rank is 177 out of 180 nations- far below that of other emerging countries like Brazil and China and obviously much below global environmental standards. The Paris promises seems to be even harder.

The relief being, environmental concerns have engrossed political consciousness more seriously in last couple of years. Policy changes are visible across sectors for example the construction, energy and textile. A United Nations report released in 2020 stated that India's per capita emissions are actually 60% lower than the global average. Recently in Glasgow, during COP 26 meeting, India declared that it has installed 100 GW of renewable energy. Prime Minister Narendra Modi said that India is the only country among G20 nations that is progressing rapidly to meet its climate goals. In fact, India has a target of achieving 40% of electric power installed capacity from non-fossil fuel sources by 2030 in its nationally determined contribution (NDC) under the Paris Agreement[1].

Local Environmental Concerns :- Climate change can be a natural process where temperature, rainfall, wind and other elements vary over decades. But unprecedented rapid warming from anthropogenic activities today is primarily due to burning fossil fuels that generate greenhouse gas emissions. This global warming brought about by climate change has uneven effect on lands and countries. Developed countries have better coping mechanism but poor and developing countries struggle within meagre means.

For rapidly growing transitional economies like India environmental challenges range from severe deficiency in environmental amenities like clean water and sanitation that are required for basic human existence, to pollution from the hazardous wastes generated by a modern consumer society. Air quality in Indian cities, particularly those in northern India, has significantly deteriorated over the past few years due to high levels of smoke emanating from traffic, heavy industry and agricultural waste burning. With winters set in, pollution levels in the capital New Delhi often cross the 'unhealthy' 500 mark of the Air Quality Index measurement, sometimes catapulting to '999' AQI in 'severe' category. The effects of worsening air pollution are already being felt in India's health sector, with increasing cases of asthma, pneumonia, stroke and chronic lung and heart diseases. Children and the elderly are particularly vulnerable.

Energy Commitment :- Clean fuel is the only answer to deal with such adverse effects. To keep up with environmental standards, India has been dealing with climate change in an integrated, comprehensive and holistic way. It has set the target of 40% non-fossil fuel energy. One of the means to achieve the target of 40% non-fossil fuel energy is installing 175 GW of renewable energy by 2022. A target of 450 GW of renewable energy by the end of this decade is set up too. Of this, the target of 100 GW has been achieved by India ahead of schedule. In fact, India is set to update its 2030 climate targets under the Paris Agreement. India is considering cutting down almost by half the amount of greenhouse gases produced for every dollar of economic activity by the end of the decade. As referred under the Paris Agreement, India has updated it commitments the Nationally Determined Contributions or NDCs, to, could include commitment to reduce the emissions intensity of the economy by at least 46 to 48 per cent from its 2005 levels. Also, in the G20 summit in 2020, PM Modi said that India aims to restore around 26 million hectares of degraded land by 2030[2].

***Assistant Professor, Political Science, Central Tibbetian Institute, Varanasi**.

These sub-goals would reflect the range of climate actions being undertaken in critical sectors such as electricity, industry, and transport. The subgoals are likely to include sectoral targets for 2030 such as decarbonization of the Indian railways network, at least 30 per cent of all new vehicles sold to be EVs, 450 GW renewable energy capacity. It would include broader policy interventions with some targets such as the National Green Hydrogen Mission's mandatory use by industry of 5 to 10 percent by 2030, beginning with refining and fertilizer production, and then steel. The focus of the NDC update is on the energy sector and economy-wide intensity targets. There is some talk on including the urban forests programme of greening an area of at least 20 hectares in 200 cities across the country[3]. According to the ministry of new and renewable energy, total installed renewable energy capacity in India, excluding large hydro, has crossed the milestone of 100 GW. Target is also to bring Railways of becoming a net-zero emission sector by 2030.

Another critical area is energy security. During his speech in Glasgow, PM Modi underlined the importance of environmental security as important as the national security and announced the setting up of the National Hydrogen Mission. India is not energy independent and spends over ₹12 lakh crores on importing energy. To become energy independent green hydrogen production and exports is one of the objectives of India towards a clean energy transition.

In its Biennial Update Report to the United Nations Framework Convention on Climate Change (UNFCCC) submitted in February 2021, India said it has progressively continued decoupling of economic growth from greenhouse gas emissions. India's emission intensity of gross domestic product (GDP) has reduced by 24% between 2005 and 2016. India is therefore on track to meet its voluntary declaration to reduce the emission intensity of GDP by 20-25% from 2005 levels by 2020.

India's annual renewable energy addition has been exceeding that of coal based thermal power since 2017 and in the last six years, India's installed renewable energy capacity has increased by two and half times and the solar energy capacity has increased by 13 times. It is also estimated that India is likely to achieve second NDC well ahead of schedule[4].

Status of Climate Change Mitigation/Adaptation in India :- Protection of the environment has to be a central part of any sustainable inclusive growth strategy. Population growth, urbanization, and anthropogenic development employing energy-intensive technologies have resulted in injecting a heavy load of pollutants into the environment.

Historically like most countries, climate change mitigation and adaptation in India has primarily been a state or national affair and looked upon in a top-down manner however there has been a growing emphasis on engaging the private sector and civil society in shaping development planning and formulating responses to the climate change issues. India has incorporated disaster risk reduction measures in national development schemes since the 10th erstwhile five-year plan (2002-07) thereby integrating climate change adaptation initiatives with disaster risk reduction measures. The National Action Plan on Climate Change (NAPCC) released in June 2008, aims at protecting vulnerable through inclusive sustainable development and inclusion of civil society and public-private partnerships in the process. However, detail operational guidelines for larger scope of PPP in each sector is required.

Private Sector in India has great potential and competency for bringing innovative solutions and scale to the various models for climate change adaptation shaped by the civil society and/or govt. institutions however their primary thrust thus far has been limited to monetization of the carbon credits. Hence there is a vital need for government to involve them through innovative and alluring partnerships, while on other hand induce them to take it as their prime responsibility[5].

India's environmental problems are well-recognised by the government, which is implementing a wide range of regulations and policies on natural resource conservation, ambient environmental quality and pollution control. The government launched a new initiative in 2014, the Clean India Mission, with the objective to ensure that the entire population has access to adequate sanitation and clean cooking fuel by 2019.

Similarly, the problem of toxic waste is being addressed through legislation. These include a ban on the manufacture and import of toxic substances under the Regulation of Persistent Organic Pollutants Rules 2018, and a 2016 revision of the norms on the handling and disposal of toxic wastes under the Hazardous and Other Wastes (Management and Transboundary Movement) Rules 2008. The

introduction of many new environmental laws in India has followed the ratification of multilateral environmental agreements, which are having a proven role in enhancing the country's environmental institutional capacity. India's initiatives to strengthen its environmental policy and legislative capacity run on parallel tracks: one geared towards global environmental challenges and the other focussed on local pollution problems. For instance, the onus to abate global climate change was felt by the Indian government in the run-up to the post-Kyoto multilateral negotiations, as the potential growth of India's emerging economy is expected to spur carbon emissions.

In 2008, India put together a National Action Plan on Climate Change that paved the way for targeted programs to minimise carbon emissions and improve energy efficiency. India's Ministry of Environment and Forests was renamed the Ministry of Environment, Forests and Climate Change in 2014 to signal that climate change is a national priority. Legislation to address local pollution problems was laid down much earlier, beginning more than four decades ago, with the scope and standards of these laws being revised periodically.

The Deficiencies :- However, not everything is in line. There are factors that contribute to policy deficiencies. Firstly, the imperfect understanding between poverty and environmental degradation often results in propagating liner policies ie concentrating on one side of the problem than the other. Also, greater environmental legislative capacity is not improving India's environmental performance. Polluted air, water and land are perpetuating crises in urban and rural areas across the country. The deterioration of ambient environmental quality stems primarily from increasing particulate pollution, unsanitary solid waste disposal, the release of untreated liquid waste and sewage into rivers, and the excessive use of chemical fertilisers and pesticides. India's pollution problems are further accentuated by the composition of the waste stream, which is shifting towards a greater proportion of non-biodegradable hazardous wastes like plastic and electronic waste.

The poor ambient environmental quality is largely due to the serious shortfall in waste collection and treatment capacities in India. Only 75–80 per cent of municipal solid waste is collected, of which barely 22–28 per cent is processed and treated. The existing capacity of sewage treatment plants of 23,277 million litres per day is grossly inadequate when compared to actual sewage generated of 61,948 million litres per day. Untreated liquid wastes flow freely into freshwater bodies across the country[6]. The number of polluted rivers in India more than doubled during 2008–15 due to the indiscriminate discharge of raw sewage and industrial waste into rivers. The deterioration of water quality has been so severe as to make these river waters unfit for any use. There are signs of an acute water crisis, with contamination increasingly evident in surface water and groundwater. Considering that half of India's morbidity is water-related, water-contamination imposes a high cost on the economy. Apart from the deficient capacity of India's waste treatment and disposal systems, the institutional capacity to monitor and enforce policies is poor and the violation of environmental standards is rampant. In August 2018, the State Minister of Environment acknowledged that hundreds of industries are violating environmental norms. The Ministry now plans to conduct surprise inspections and to begin online monitoring of the emissions of highly polluting large and medium industrial units. Though this is a belated measure, ensuring the continuous compliance of polluting industrial units is the first step towards a cleaner environment in India.

The poor environmental quality in India is not in the least due to a lack of regulations, as an extensive body of environmental legislation has already been built that sets standards for ambient quality, as well as limits on emissions and liquid waste disposal. The robust growth of environmental norms will continue without doubt, but whether these norms will be able to encourage compliance is the main concern and challenge. With greater economic growth and consumption, waste generation in India is escalating exponentially. The government must make greater efforts to implement the rules that

are already in place, enhance national waste treatment and disposal capacities, and aggressively target the compliance of existing environmental regulations[7].

India has several national policies and initiatives in place to address environmental challenges. The 1981 Air Act and 1986 Environmental Policy were among the first significant steps towards strengthening environmental health. The Air Act laid the foundations for the creation of other institutional mechanisms such as the national and state level Pollution Control Boards, while the Environmental Policy recommends several actions to help key emitting sectors minimise pollution.

Despite these policy steps, the number of Indian cities experiencing high pollution levels is increasing and the air quality in some southern cities, which had never experienced high pollution in the past, is now also deteriorating. Thiruvananthapuram in Kerala, Kanpur in Uttar Pradesh, New Delhi there is no respite.

Paris Targets and Some of the Measures taken by India to Control Emissions :- The Paris Agreement is a **legally binding international treaty on climate change**s, adopted by 196 Parties at COP 21 in Paris, on 12 December 2015 with the objective to **limit global warming** to below 2 deg. Celsius, **preferably to 1.5 degrees Celsius**, compared to pre-industrial levels. To achieve this long-term temperature goal, countries aim to **reach global peaking of greenhouse gas emissions as soon as possible** to achieve a climate neutral world by mid-century.

The Paris Agreement is **a landmark** in the multilateral climate change process because, for the first time, a binding agreement brings all nations into a common cause to undertake ambitious efforts to combat climate change and adapt to its effects[8]. India is consistently making efforts to achieve its commitments. The Modi government has repeatedly plugged climate-change related schemes such as national plan on climate change; National clean air programme; Swachch Bharat mission; Pradhan Mantri Ujjwala Yojana; Namami Gange policy, etc, Moreover, India's installed capacity of renewable energy has also increased by 226% in the past five years to over 89 GW now and India has a target of increasing installed renewable energy capacity to 450 GW by 2030.

Besides, following steps have been taken-

- Implementing Bharat Stage (BS) VI norms for reducing vehicular emissions. These are emission control standards put in place to keep a check on air pollution.
- National Solar Mission: It is a major initiative of the Government of India and State Governments to promote ecologically sustainable growth while addressing India's energy security challenge.
- National Wind-Solar Hybrid Policy 2018: The main objective of the policy is to provide a framework for promotion of large grid connected wind-solar photovoltaic (PV) hybrid systems for optimal and efficient utilization of wind and solar resources, transmission infrastructure and land.

All these and many other initiatives helped India in cutting CO2 emissions by 164 million kg.

Conclusion :- It is now commonly acknowledged that though the political economy of the developing countries does not allow neglect of the demands of the poor, and though the developed countries are mainly responsible for global environmental problems, the developing world cannot remain oblivious of its own environmental degradation. In spite of promulgating various acts and instituting ministry for environment and forestry, the record of their implementation has been dismal. There has been a considerable growth in NGO activities in generating environmental awareness. Yet, systematic introduction of environment issues into educational curricula worldwide is awaited[9].

India's population is predominantly young, with 35 per cent of the population estimated to be 15–34 years old. Health impacts on this young population will significantly damage India's long-term political and economic prospects. To ensure not only a reasonable quality of life for its citizens but also the participation of its huge working age population in the economy, India must address its air pollution issues[10].

However, not just air quality, as a populous, tropical developing country, India faces a bigger challenge in coping with the consequences of Climate Change than most other countries. Climate Change is a global phenomenon but with local consequences. There are both external and domestic dimensions to India's Climate Change policy which has been articulated through two key documents. One is the National Action Plan on Climate Change (NAPCC) adopted on June 30, 2008. The other is India's Intended Nationally Determined Commitments (INDC) submitted to the UN Framework Convention on Climate Change (UNFCCC) in October 2, 2015. The NAPCC has an essentially domestic focus.

The INDC is a statement of intent on Climate Change action announced in the run up to the Paris Climate Change summit held in December the same year. The NAPCC incorporates India's vision of ecologically sustainable development and steps to be taken to implement it. It is based on the awareness that Climate Change action must proceed simultaneously on several intimately inter-related domains, such as energy, industry, agriculture, water, forests, urban spaces and the fragile mountain environment. This need for inter-related policy and coordinated action has been recognized, only several years later, in the adoption by the UN of the 17 Sustainable Development Goal (SDG). The National Missions are on Solar Energy, Enhancing Energy Efficiency, creating a Sustainable Urban Habitat, Conserving Water, sustaining the fragile Himalayan Eco-system, creating a Green India through expanded forests, making agriculture sustainable and creating a strategic knowledge platform for serving all the National Missions. The NAPCC acknowledged that Climate Change and Energy Security were two sides of the same coin; that India had to make a strategic shift from its current reliance on fossil fuels to a pattern of economic activity based progressively on renewable sources of energy such as solar energy and cleaner sources such as nuclear energy. Such a shift would enhance India's energy security and contribute to dealing with the threat of Climate Change. Thus a co-benefit approach underlies India's Climate Change strategy. The NAPCC constitutes India's response to Climate Change based on its own resources but recognizes that it is intimately linked to the parallel multilateral effort, based on the principles and provisions of the UNFCCC, to establish a global Climate Change regime. It was India's hope that the ongoing multilateral negotiations under the UNFCCC would yield an agreed outcome, based on the principle of Common but Differentiated Responsibility and Respective Capabilities (CBDR), which would enable developing countries like India, through international financial support and technology transfer, to accelerate its shift towards a future of renewable and clean energy. While India has made significant progress in implementing several of the National Missions, its expectations of a supportive international Climate Change regime based on equitable burden sharing among nations, has been mostly denied.

Prime Minister Modi has been one of the world leaders who has taken a keen interest in Climate Change issues. Under his leadership India decided to adopt a more pro-active, ambitious and forward-looking approach in the run-up to the Paris Climate summit. This is reflected in the country's INDC. It links India's commitment to ecologically sustainable economic development with its age-old civilizational values of respecting nature, incorporating a sense of inter-generational equity and common humanity. The targets India has voluntarily committed itself to are unprecedented for a developing country. The energy intensity of India's growth will decline by 33-35% by 2030 compared to 2005 base year, which means that for every additional dollar of GDP India will be using progressively and significantly lesser amount of energy. There is confidence that based on the achievements of the National Mission on Enhancing Energy Efficiency, this target will be met. India being one of the world's largest emerging economies, which already has a large energy footprint globally, this constitutes a major contribution to tackling global Climate Change. The INDC has set a target of 175 GW of renewable energy by the year 2030 on the strength of the outstanding success of the National Solar Mission. It is reported that this capacity may well be achieved 10 years in advance. The government may raise India's target to 227 GW for 2030. The target of achieving 40% of power from renewable sources by 2030 is likely to be achieved several years in advance. The figure is already 21% as of date. India is actively reducing the component of coal based thermal power in its energy mix. It is not widely known that the country has a very high cess on coal, of the order of Rs.400 per tonne, proceeds from which go into a Clean Energy Fund. India is also committed to not building any new thermal plants which are not of the most efficient ultra-supercritical category.

India played a major role in assuring the success of the Paris Climate summit and Prime Minister Modi's personal intervention in the adoption of the landmark Paris Agreement was

acknowledged by several world leaders. His initiative on the setting up an International Solar Alliance for promoting solar power worldwide was welcomed.

India is advancing on a broad front to ensure a clean energy future for its people, drawing upon its ingrained civilizational attributes and putting in place a wide range of policy interventions under the legal framework of the Energy Conservation Act, covering 15 energy intensive industries and the Energy Conservation Building Code, covering all new urban infrastructure. 32 states of the Indian Union have formulated and begun implementing their own State Action Plans on Climate Change(SAPCC). There is also an active and vibrant civic society which is promoting citizens' awareness of the threat of Climate Change and what each of us can do as individuals to meet this threat. It is hoped that India's leadership in dealing with its own challenges of Climate Change and Energy Security will act as a spur to other countries to raise their own contributions to meeting this global and existential challenge. Failure to do so condemns humanity to an uncertain and possibly catastrophic denouement[11]. We must save ourselves before its too late.

References :-

1. Under the Paris Agreement, India has three quantifiable (NDCs, which include lowering the emissions intensity of its GDP by 33-35% compared to 2005 levels by 2030; increase total cumulative electricity generation from fossil free energy sources to 40% by 2030; create additional carbon sink of 2.5 to 3 billion tons through additional forest and tree cover.
2. https://www.thehindu.com/news/national/pm-raises-indias-target-to-restore-degraded-land-to-26-million-hectares/article29378676.ece
3. Urmi Goswami https://economictimes.indiatimes.com/news/india/india-set-to-update-its-2030-climate-targets-under-paris-agreement/articleshow/87098192.cms?from=mdr
4. https://www.hindustantimes.com/environment/india-only-g20-nation-to-meet-climate-goals-101629061426571.html
5. Compliance dilemmas in Indian environmental policy, 10 October 2018, Aparna Sawhney, Jawaharlal Nehru University https://www.eastasiaforum.org/2018/10/10/compliance-dilemmas-in-indian-environmental-policy/
6. Water Pollution (pib.gov.in)
7. Is India's environmental future under a dark cloud? 20 November 2018, Nandakumar Janardhanan, Jawaharlal Nehru University and Akihisa Mori, Kyoto University https://www.eastasiaforum.org/2018/11/20/is-indias-environmental-future-under-dark-clouds/
8. https://www.un.org/en/climatechange/science/key-findings
9. Assessment of Environmental Policies and Policy Implementation in IndiaV. S. Vyas and V. Ratna Reddy, Economic and Political Weekly, Vol. 33, No. 1/2 (Jan. 10-16, 1998), pp. 48-54 (7 pages)
10. *Is India's environmental future under a dark cloud? 20 November 2018 Nandakumar Janardhanan; Akihisa Mori, East Asia Forum Economics, Politics and Public Policy in East Asia and the Pacific;* https://www.eastasiaforum.org/author/nandakumarjanardhanan/
11. India's Climate Change Policy: Towards a Better Future, November 08, 2019, *Shyam Saran https://mea.gov.in/articles-in-indian-media.htm?dtl/32018/Indias_Climate_Change_Policy_Towards_a_Better_Future.*

Vijay Tendulkar's Delineation of Women in his play *Silence! The Court is in Session*

Dr. Anupam Soni*

Astract:- *Silence! The Court is in Session* by Vijay Tendulkar is a scathing satire on the Indian society. It is a well known Marathi play. Tendulkar wrote this play for *Rangayan* at the behest of his friends Arvind and Sulabha Deshpande. Tendulkar gives an ironical treatment to the judicial system of the country, as the judiciary plays a prominent role in silencing the female voice. The protagonist of the play, being woman, is victimized thoroughly using the grounds of a mock-trial and she strongly encounters all the fake accusations framed against her. This paper explores the suppression of the female voice and the revelation of a new woman who fights against all odds with an unassailable spirit and claims her right to be free.

Keyword:- Oppression, Mock-trial, Judicial system, Injustice, New Woman.

Vijay Tendulkar is a leading contemporary Indian playwright, screen and television writer, literary essayist, political journalist as well as a very well known social commentator. For the past four to five decades he has been the most influential personality as dramatist in the Marathi theatre. He had created a wide range of literature and more than hundred short stories are to his credit. Tendulkar's interest in evils of the society and human responses and reactions to these evils has manifested itself in many works. He had a mixed bag of experiences in life and these experiences found an expression in his writings. By writing *Silence! The Court is in Session,* Tendulkar brought a new era in the Marathi theater. As his fame grew strong, he also faced grave oppositions but this does not affected his passion for writing on most unexpected themes. A lifelong resident of the city of Mumbai, Vijay Tendulkar is the author of thirty full-length plays and twenty-three one act plays.

Vijay Tendulkar's *Shantata! Court Chalu Ahe* is a very renowned Marathi play which was later translated by Priya Adarkar as *Silence! The Court is in Session* in 1978. It is considered as one of Tendulkar's typical writings. With this play, he shifted his gear in the portrayal of characters which projected a state of collision with conventional stereotypic norms and emerging out much stronger than ever after challenging the stereotypical setup of the society. Here Tendulkar has drawn the attention of his readers to a young woman Leela Benare, who is brutally victimized by the ruthless patriarchal society. Tendulkar has used this play to comment on the stratified Indian society on the basis of caste and gender. In words of Maitrayee Chaudhari, "Inequalities and diversities define Indian society. Various pre-colonial social reformer movements, the British state, the nationalist and feminist movement have always had to negotiate with this" [Chaudhari, 19]. Tendulkar has used male voices from every walk of life, representing the patriarchal mindset. Characters like Sukhatme, Balu Rokde, Mr. Kashikar, Gopal Pokshe and Karnic, all come together to represent contemporary judicial system and this ethically corrupt structure.

In *Silence! The Court is in Session*, the action revolves around the character of Ms. Leela Benare, a women who is financially independent and opts out to remain single. This is typical of Tendulkar's dramatic style where women are at the center and it is around them most of the action revolves and this enhance the dramatic intensity of the play. Leela, being educated and independent, refuses to be cowed down by men. Tendulkar highlights the attributes of her character by juxtaposing her against other male characters that are hypocritical and ruthlessly selfish. The play begins with a

***Associate Professor, Department of English, Bundelkhand College, Jhansi, U.P.**

theater group of Mumbai. Leela Benare is member of an amateur group of actors of Bombay who perform different plays catering the needs of public on various occasion. Benare is a young spinster of thirty four years. She has been portrayed as a confident school teacher, proud of her work and independent enough to reject any interference in her way of life.

In school, when the first bell rings, my foot's already on the threshold. I haven't heard a single reproach for not being on time these past eight years. Nor about my teaching. I'm *never* behindhand with my lessons! Exercises corrected on time, too. Not a bit of room for disapproval - I don't give an inch of it to any one! (10)

Benare is very sportive as a woman wants to enjoy her life freely breaking the shackles of conventional laws.

As the play opens, a group of theater artists have arrived in a nearby village to perform mock-trial of American President Johnson, whose new policies on Nuclear weapon are considered to be a grave threat to humanity. They have some leisure time berofe the actual performance of the play so they decide to enact another mock-trial on Leela Benare, in order to give an idea of its structure to Samant, who is novice for the group. This tool of mock-trial is brilliantly used by Vijay Tendulkar to mark a scathing satire on the morally corrupt judicial system. As the plays moves forward this mock-trial reveals out more like a game against Leela Benare, trespassing her personal boundaries. They make accusations against Benare, which are merely assumptions without any solid evidence. The venomous feelings against Benare as an independent woman turned the mock-trial into a game of psychological violence through fake accusations. Leela is alleged to have seduced every male ever entered in her life, be it personal or professional.

The male characters used by Tendulkar in the play, hardly bothers to pay least respect to female characters. They are absolutely cold to the emotions of female characters. For instance, Professor Damle is a legally married man representing a very prestigious profession. He is well aware of the conseques with Leela Benare but he does not paid any heed to the emotions of that girl. Later, his gender identity being a male, gave him the leverage to stand aloof from the moral obligations of his illicit relationship with Leela. Later in her soliloquy towards the end of the play highlights the true character of Damle: "He didn't care about them! He wasn't a God. He was a man, for whom everything was of the body, for the body! That's all!" (118).

In *Silence! The Court is in Session,* Tendulkar also raises a very sensitive issue of child abuse. Through the character of Leela, Tendulkar attempts to highlight darker side of the patriarchal world. Leela encountered sexual exploitation as an immature girl by her own maternal uncle. She was too young physically as well as psychologically, then to even the meaning of sexual intercourse with anyone. She was exploited by her very near relative, which made it difficult for her to share the burden of the act with anyone. For this act, she was humiliated by the society for being immoral at such a young age. But biased patriarchal setup completely ignores to condemn or criticize the moral conduct of Benare's uncle. This incident shook the psychological state of Leela to such an extent that she decides to commit suicide. Later, during her mock-trial, the prosecution uses this attempt of killing herself as a weapon to prove her irresponsible character.

The mock-trial is lead by Sukhatme, who is a lawyer. Though he often showcase his deep respect for woman as mothers, especially when he says "we have acknowledged woman as the mother of mankind".(5) But his actions doesn't match his words, as he never misses a chance to make derogatory comments on women. As soon as the play begins, in the guise of mock-trail, he assassinates Leela's private affairs with an intension to break her psychologically. As a prosecutor he is expected to unveil the truth about the accused in front of the honourable court but on the contrary he has some pre-conceived notions against Leela being a woman and he uses every trick and plan to humiliate her:

SUKHATME.: Mr. Rokde, You went to Professor Damle's house, as night was falling. What did you see there? [*in a deep, cruel voice*] What did you see?
KASHIKAR: [*although he is enjoying it all greatly*], Sukhatme, I feel this is getting onto too personal a level.
SUKHATME: No, no, no, not at all, milord. It's just for the trial; so Mr Rokde--
BENARE : I don't agree. I am telling you! What's all this got to do with the trial?
MRS KASHIKAR : But why are you getting into such a state, Benare? [to Kashikar] Go on.
BENARE: There is no need at all to drag my private life into this. I can visit, whom I like Damle wasn't eating me up.
SUKHATME: What did you see there Rokde? Yes, tell us. Tell us! Miss Benare, listen to me. Don't spoil the mood of the trial. This game is a great fun. Just be patient. Now, Rokde don't be shy-- tell everything you saw. (94)

The last lines of this conversation unmask Sukhatme real intention, to assassinate character of Leela in the garb of a game. She is constantly attacked by male characters by exaggerated accusations on her moral conduct. For instance, she is attacked by Rokde for her visit to Professor Damle's hostel room and in a ways leads the audience to draw an immoral sketch of her character. He doesn't have any evidence against his argument but being a male, no one bothers to question the authenticity of his accusation. This attack of Rokde proves Ms. Benare as a woman of fallen Character.

Tendulkar has portrayed Benare as a young, strong and independent New woman who decides the course of life in her own way. She understands the need of a father for her unborn child in order to make life hassle free in near future. With an intension to get marries, she approaches Ponkshe, who is a clerk in the Central Telegraph Office. He hesitates to accept Benare for her unmarried motherhood. In his opinion, the fault solely lies on the part of a girl and male counterparts need not be questioned.

SUKHATME- What was your answer Mr .Ponkshe? Were you prepared to take a broad view of things for the sake of humanity, and accept the child along with the mother?

PONKSHE. The answer is quite clear.

SUKHATME. You were not prepared, of course.

PONKSHE. No I wasn't. (84)

The journey of trauma reaches its heights when not only her male counterparts of the dramatic group but a female also decide to rupture Leela's dignity by attacking her pride and her independence. Mrs. Kashikar questions her decision of not getting married which, somewhere projects her frustration and unhappiness from her marriage. She says- What else? That's what happens these days when you get everything without marrying. They just want comfort. They couldn't care less about responsibility! Let me tell you – in my time, even if a girl was snub – nosed, sallow, hunchbacked, or anything whatever, she – could – still get married! It is the sly new fashion of woman earning that makes everything go wrong. That's how promiscuity has spread throughout our society. (54)

The above lines signify her stand against financially independent women like Leela. But it is also important to understand that Mrs. Kashikar is also a victim of the same patriarchal system which is targeting Leela. In spite of being married for a long time, she failed to produce kids which had always been brutally criticized by this patriarchal society. Her unsophisticated and restricted life makes her react so violently against Leela.

Mrs Kashikar cannot have admitted ever that the sacred institution of marriage has given her nothing apart from being an easy target to Mr. Kashikar's constant insult. She is an orthodox woman born and brought up in a very stereotypic social structure, where girls from their childhood are taught to consider their husband's supremacy and never dare to retaliate against their oppression. Ignoring her husband's insulting remarks she appreciates his caring nature on the contrary mere by accepting a

string of flowers as a token of his love. Her financial dependency on her husband might be one of the reasons that she agrees to be a part of the patriarchal system of pulling down a strong woman like Leela.

Sukhatme, the lawyer of the mock-trial draws the attention of the court that the charges framed against Leela are grave in nature. She, being a woman, has ashamed the purity and sacredness of motherhood, which calls for severe punishment. She has hopelessly failed in retaining the morality of her character as she is accused of committing infanticide, a heinous crime. Sukhatme further sharpens his attacks by saying she, and only she was responsible for her unwedded motherhood, which is considered as one of the biggest sin. Her intension shows how dangerous such women could be for the society. He draws attention of the jury to the fact that fostering an illegitimate child would be a grave threat to the moral sanctity of their society and culture.

Our society is structured in a format to support and favour only men. Here, this is well evident by the working pattern of the judiciary. Mr. Kahikar, playing the role of the honourable judge of the mock-trial, gives decisions according to his pre-conceived notions against women. He is expected to be unbiased sitting on that position, but his biased working pattern intensifies the pain of Leela Benare. Mr. Kashikar gives her barely ten seconds to defend herself against all those accusations, before he announces final verdict of the court. Leela grabs this opportunity and says- These are the mortal remains of some cultured men of the twentieth century. See their faces – how ferocious they look! Their lips are full of lovely worn-out phrases! And their bellies full of unsatisfied desires. (74).

The final verdict of the court follows the stereotypic pattern of the society, where women are always proven guilty and men are always considered innocent. Mr. Kashikar, being honorable judge of the mock-trial, observes that the cup of Benare's crime is full and she is found of committing most heinous crimes. As a result no testimony of her sins should be allowed to be a danger for coming generations. The court orders life for Benare but death for her unborn child. Tendulkar has very evidently shown how it is always woman who has to pay the price no matter she is guilty or innocent.

This brief analysis of the plays shows that Tendulkar's delineation of woman shows how her female characters are scrutinized ruthlessly by the patriarchal system of the society. Even if male characters were equally wayward in their conduct but they all were not even questioned once. Even Prof. Damle who was equally responsible for the illegitimate child of Leela but the honorable court finds him innocent on the grounds of his gender identity. Tendulkar showcase that the emergence of New woman like Leela will always be crushed by the stereotypic norms of the society but once they find their voice to reject this oppression, they live strongly eve rafter. In this context famous critic L. Rahman comments: "Once Benare finds her voice couched in quotidian language does make no truth-effect…[Rahman, 70] Therefore with a tinge of satire on many established orthodox values of the society, Tendulkar has voiced the unjust system against women.

Refrences:-

1. Chaudhari, Maitrayee. "Feminism in India: The Tale and its Telling", pp 19**. www.jstor.org/stable/23593790**
2. Rahman, L. Tendulkar's Silence! The Court is in Session: A Study in Perspectives. Kolkata books Way Publishers and Distributors, 2010. Pp – 70 .
3. Tendulkar, Vijay**.** Silence! The Court is in Session. New Delhi, Oxford University Press, 1978.

Happiness In The World Of The Visually Impaired : *A Review*

Rumti Das*

Dr. Indrani Ghosh**

Abstract :- Happiness is an essential emotion necessary for the improving the quality of life of every human being. Philosophers and educationists from Aristotle to Rabindranath, have emphasized on the need for happiness in life. It has been often viewed that physical disability can be a big obstacle in the way of happiness. Any type of physical impairment which causes disability poses problems both social as well as emotional. Visual impairment affects one's ability to see the world properly, which can be a reason of stress for them as they have to constantly interact with their visual counterparts.

Based on secondary data this qualitative study explores the emotion of happiness in visually impaired people. The objectives of the study are to: study the issues related happiness of the visual impaired people and know about the concept of happiness among the visually impaired. From various secondary sources the researcher found that vision impairment may affect the happiness but by various activities like reading inspirational book or by any act of kindness visually impaired people may feel happy in their day to day life. Happiness is subjective and depends greatly on the perception of an individual.

Keywords: Happiness, Visual Impairment, Well-being.

Introduction :- Happiness has been defined as "*the experience of joy, contentment, or positive well-being, combined with a sense that one's life is good, meaningful, and worthwhile*" by positive psychologist Sonja Lyubomirsky in her book named 'The how of Happiness' (2007). It is subjective in nature and differs from person to person. No two person experiences equal amount of happiness in the same situation. However the resultant of happiness is well being of the individual experiencing it. Happiness itself is an umbrella term which is interchangeably used with terms like "wellbeing" or "quality of life". 'Happiness is the indicator of the satisfaction level of an individual' (Smitha, 2015). "*Philosopher considered happiness to be the highest good and ultimate motivation for human action*" (Diener, 1984). Studies reveal that 'long term happiness is determined by genetic lottery that occurs at conception' (Lynken and Tellegen, 1996). In recent times happiness has been defined as "*an emotional state, characterized by feeling of joy, satisfaction, contentment, and fulfillment*" (Cherry, 2020).

The world as perceived by those with impairment leading to disability is not the same as those of the abled population. The visually impaired perceive the world in a manner quite different from that of a sighted person. Hence the emotion of happiness is not triggered by the same stimulus for both and the way of response is also not the same for both. Those who do not have impairment often regard the life of impaired persons as loaded with disability and negativity. Most of the research studies conducted on the visually impaired have investigated the negative features of visual impairment in an individual's life such as the harmful influence of visual impairment on individuals' quality of life, self-esteem, physical functioning, socialization, etc. Some of the studies have concluded that vision impairment may increase suicidal risk as well (Matsugma et. al., 2018). Life received in any form must be lived and enjoyed. Happiness is a positive emotion

***Ph.D. Research Scholar, Department of Education, Diamond Harbour Women's University, West Bengal-743368.**

****Assistant Professor, Department of Education, Diamond Harbour Women's University, West Bengal-743368.**

which illuminates the world of both the visual and the visually impaired. The present study investigates this positive feature in the life of the visually impaired individuals.

Objective :- The objectives of present study are to:

- understand the notion of happiness among the disabled population
- study the barriers to happiness of visually impaired people; and
- know about the components of happiness among the visually impaired

Methodology :- To achieve the objectives of the study the researchers have thoroughly reviewed the related literatures and have analyze them. Data has been collected from various secondary sources available over the internet like e-journals, e-articles, websites etc. and have been studied.

Happiness and Disability :- It has been reported that a person born with disability has higher level of happiness than the one who has acquired disability later in life. The level of distress is generally associated with lower level of happiness among disabled people (Terrill et al., 2015). Research studies also show that people with a sensory disability are happier compared to people who have physical disability. People with mental disability have reported the lowest level of happiness (Uppal, 2006). Singh et al. (2004) stated that care giving attitude can help improve the level of happiness among individuals with profound multiple disabilities. Studies have also reflected that women with progressive disabilities seem to be happier than men (Chen & Crewe, 2009). In fact, life satisfaction increases the ability to work and it creates happiness (Wiseman, 2004, Sheferd, 2006). Spirituality also plays an important role in fostering happiness among persons with physical disabilities (Bahari, 2014). According to Ferlis Bahari (2014) persons with physical disabilities have eight sources of happiness namely support from caretakers; support from peers; support from equipment; support from institutions; accessibility; elimination; achievements; and equality. In a later study (Long and Bahari, 2017) it was found that acceptance also played a major role in boosting happiness of persons with visual disabilities but this is not applicable for the individual with other physical disabilities.

Barriers to Happiness of the Visually Impaired :- Visually impaired people like all others have the right to be happy and lead a productive life. However like all others, their happiness is also dependent on a number of factors which are quite different from those of the sighted population. Studies on visually impaired population reveal that blindness and low vision may reduce quality of life (Amini et. al. 2010; Qureshi and Wong 2019). Visually impaired people generally face variety of difficulties in their development and life activity, physical discomfort being the primary one (Sim, 2020). It has also been reported that visually impaired people are exposed to complex environments while coping with physical development, frustration, mental depression and social adaptation (Resch, J.A., Elliott, T.R. & Benz, M.R., 2012). Their vision loss is often accompanied by mental health issues like depression, anxiety, emotional isolation, phobia, frustration and loneliness (Resch, J.A., Elliott, T.R. & Benz, M.R., 2012). This creates a lot of negativity and affects their happiness inversely. British support organization, named 'Action for Blind People', reported that those who have lost eye sight after birth struggle with variety of emotions like shock, sadness, anger, depression, frustration and grief (https://www.nytimes. com /2017/02/20). Vision loss also affects a person's ability to work. It has been found that due to vision lose about 48% visually impaired people moderately or completely cut off the things and people around them (Qureshi and Wong 2019). This leads to the development of a sense of incapability and hence unhappiness. Those who want to study or work face infrastructural barriers. The major infrastructural barriers for visually impaired people are uneven surfaces, parked cars, open gutters, hawkers etc. while the minor issues include crowd, poles etc. These create difficulties in their daily life and living (Arora, A. & Shetty, A. 2014).

Dealing with vision loss is a challenge in itself. The limited accessibility to activities and information, lack of emotional support at diagnostic centers, societal stigma and unemployment are the factors which frequently lead visually impaired individuals to isolation (https://www.letsenvision. com). From early life and throughout adulthood visually impaired

children experience number of barriers in their development, participation in physical activity and the education curriculum (Columna et. al. 2017). Visually Impaired students often become victims of negative attitude (society) as they face problem in communicating with the society at large (Albert, M.M. 2005). Further young visually impaired children can experience lifelong consequences with delayed language, motor, cognitive and social development. School-age children who are visually impaired can experience low educational achievement (https://www.who.int). It has often been noticed that blind or visually impaired children are slower than other children in acquiring learning and developmental skills. They are also slow in learning basic things like walking, speaking, crawling and roll over than the children with normal vision (https://raisingchildren.net.au).

Physical abuse is another barrier towards the happiness of the visually impaired children. They are easy victims due to their visual impairment. Sobsey and Mansell (1994) conducted a study on 220 abused visually impaired children and found that most of them were generally abused by their family members, peers or people close to them. Kvam, M., (2005) found people with visual impairment experienced more sexual-abuse in childhood than the normal children. Kef, S., (2002) conducted a study on 316 visually impaired adolescents in which the result indicated that social networks of visually impaired adolescents are far smaller than their sighted peers. They do not get a chance to share their sorrows with others. Children with visual impairment also feel that they are victim of some sort of evil. As social interaction becomes a burden for them they prefer to live in isolation (Rizwan et. al. 2016).

Components of Happiness of Visually Impaired Children :- Rosenblum et al. (2009) had carried out a research that focused on visually disabled people. In their research study most of the parents of visually disabled people responded that their children were able to accept their differences with others. Research studies also show that visually impaired children are more empathetic and compassionate. They are more descriptive, verbal, more mature and generally grown up faster compared to typical children. In matters related to happiness it was found that self-efficacy, support, and spirituality are three major sources of happiness among visually disabled adolescents (Long & Bahari, 2017).

Self-efficacy is an important component of happiness of visually impaired adolescents because when they attain self-efficacy they are able to perform equally as their sighted peers. This boosts their confidence and enables them to feel at par with others. Self-efficacy can be further separated into five components such as socialization, acceptance, equality, accessibility and achievements. Man cannot live in isolation and hence socialization is an important aspect of human life. Through socialization visually impaired adolescents are able to communicate with their peers (disabled and non-disabled) and take part in different social activities with their friends. This in turn enhances their happiness. The feeling of acceptance also plays a vital role in augmenting the happiness of the visually disabled adolescents. According to Long & Bahari (2017) this acceptance is of two types: acceptance by family and acceptance by peers. Being accepted by all induces a sense of belonging and thus generates happiness. In the world of 'normal' it has been seen that products, services, or infrastructure are designed in a manner that they are accessible to only those without disability. The physically or otherwise disabled are never able to access these to their full potential and reap the benefits. Therefore products, services, or environments should be so constructed that it is accessible for all. Achievement also plays a huge role for the happiness of visually disabled adolescents which in turn furthers self-efficacy.

The happiness of visually impaired adolescents is also dependent on the support and assistance received from society. The most important sources of support include support from family, support from teachers, and support from peers. Long and Bahari (2017) also mentions spirituality as another important component of happiness of the visually impaired adolescents. Spirituality is not a simple concept. *"It referred to the feelings of attachment to something more powerful and also the search for the meaning of life which was experienced universally by human beings"* (Long & Bahari, 2017). For measuring happiness spirituality should not be sidelined specially for those communities which believe in spiritual practices. So, basically happiness of the

visually disabled adolescents is largely dependent on others. The study put forward by Long and Bahari (2017) finds support in the study of Kef (2002) where Kef (2002) deduces that there is a positive association between happiness and social support of visually impaired adolescents. Further studies also show that among the visually impaired students improvement of emotional intelligence may results in improvement of happiness quotient (Madhur & Bhawalkar, 2005). Also sometimes feeling emotionally distress does not necessarily mean that persons with visual impairment are unhappy in life (Matsugma et. al. 2018).

Conclusions :- A number of research studies have been conducted on visually impaired students focusing on their mental ability, stress and other such issues. However the aspect of their happiness has rarely been under the scanner. Therefore this qualitative study will contribute to the understanding of issues and concerns related to the happiness of visually impaired people. Vision impairment may affect the daily life and living of a visually impaired child, in the world of the sighted people, but positive emotions from parents, teachers, peers and others in contact will lead to the unfurling of a happy and productive life. Like others the visually impaired people can also derive happiness through reading inspirational book; act of kindness and gifting art etc. (Steel & Lambert, 2017). Happiness is subjective and depends greatly on the perception of an individual whether sighted or visually impaired.

Reference :-

1. Arora, A., & Shetty, A. (2014). Common Problems Faced By Visually Impaired People. International Journal of Science and Research (IJSR). 2319-7064. 3(10).
2. Bahari, F. (2012). Happiness among people with physical disabilities in Malaysia. International Proceedings of Economics Development and Research: Psychological Sciences and Behaviors. 40. 110-115.
3. Carlsen, L. (2018). Happiness as a sustainability factor. The world happiness index: a posetic-based data analysis. 549-571. Doi: 10.1007/s11625-017-0482-9.
4. Columna., Dillon., Dolphin., Streete., Hodge., Myers., Norris., McCabe., Barreira., & Heffernan, (2017). Physical Activity Participation Among Families of Children with Visual Impairments and Blindness. 41. 357–365.
5. Kef, S. (2002). Psychosocial adjustment and the meaning of social support for visually impaired adolescents. Journal of Visual Impairment & Blindness, 96(01). 22-37.
6. Long, T. J & Bahari, F. B. (2017). Happiness among Visually Disabled Adolescents. Education Science and Psychology. 5(42). 45-60.
7. Matsuguma, S., Kawashima, M., Negishi, K., Sano, F., Mimura, M. & Tsubota, K. (2018) Strengths use as a secret of happiness: Another dimension of visually impaired individuals' psychological state. 13(2). Doi: 10.1371/journal.pone.01923223.
8. Qureshi and Wong (2019). Problems Facing by Visually Impaired People during Interaction with Mobile Applications. 10(11). 29-36.
9. Resch, J.A., Elliott, T.R., & Benz, M.R. (2012). Depression among parents of children with disabilities. Fam. Syst. Health. 30. 291–301.
10. Rovner, B.W. & Casten, R.J. (2002). Activity loss and depression in age-related macular degeneration. American Journal of Geriatric Psychiatry. 10(3). 305–310.
11. Sim,. (2020). Analysis of the Coping Process among Visually Impaired Individuals, Using Interpretative Phenomenological Analysis (IPA). International Journal of Environmental Research and Public Health.
12. Upal, S. (2006). Impact of the timing, types and severity of disability on the subjective wel-being of individuals with disabilities. Social Science & Medicine. 63. 525-539.
13. Zahoor, Z. (2019). Experiences of a visually-challenged student: a qualitative study. The International Journal of Indian Psychology. 7(4). 98-109. Doi:10.25215/0704.011.

The spirit of Resistance in Isabel Allende's *The House of the Spirits*

P. Sarojini*

Abstract:- The present paper analyzes the realistic aspects depicted in the novel *The House of Spirits*. The novel portrays the Latin American women's opposition towards the patriarchal and gender discriminatory society. The women characters reflect the entire culture as well as unique individual feminine gender. The paper explores the patriarchal structures and representation of the Chilean women in Chile. The truth is women are constantly looking for their identities and this helps to create a transformation in their lives and their jobs. This paper not only helps one consider the status of women, but also explores ways to subvert them in the deeply patriarchal culture. The innovative and rediscovering features of women still reflects in each and every actions of women includes in domestic mission or any corporate official job. The foremost thing is that society has to recognize women's true physical and mental strength. Isabel Allende scrutinizes the need of the complete liberty of women in her novel *The House of the Spirits*.

KeyWords:- Patriarchy, feminism, *The House of Spirits*, gender, rediscovery, Gynocriticism.

Introduction :- Isabel Allende's *The House of the Spirits* is a sociological novel as it delineates the socio-political life of the Latin American people. This research paper focuses not only the power of patriarchy but also it projects the courage of the women community. The novel depicts the status of women in Chile with some historical events. Allende's characters prove that once a woman understands her own strength, she can accomplish anything.

The Latin America :- The element of revolution and resistance was very popular in Latin American. Fidel Castro, Hugo Chavez and Ernesto Che Guevara are well known revolutionaries who belong to 20th century. Their revolution made extreme changes in the life style of people in some of the developed parts of Asia. The people of this part are treated as unjust, hegemonic and dictatorial powers like the United States. These treatments prove Allende as a Latin American feminist, which is no exception to the revolutionaries described above. Although often oppressed, Latin American women seems to have more interest and resistance than women in developed countries. Latino female expressed their strong sense of suffering and dissatisfaction in their traditional position in the patriarchal society.

Revolution :- The text's study shows that it is directly associated with the battle of the 1960s feminism revolution in Europe and the US. Two conflicts are being waged at the same moment-the fight between the establishment and the conservatives and the class dispute. The former refers specifically to people and animals, and concludes with devastation, which is clearly violence for no reason. Whereas the latter is a battle for the connection between men and women in which men abuse women in various levels. So the women community calls for peace, commitment and reconciliation. Her main goal is to stay in a healthy household and make a healthy society in all sense. This provides the author with an overview into the complexity of the gender problem. Her novel's feminine universe is illustrated as a pacifist and the force of transformation. Women's attempts to regain the strength of the patriarchy have been seen in a successful way, "I would like

***Ph.D. Research Scholar in English (Full Time), Sri Sarada College for Women (Autonomous), Salem – 636016, Tamilnadu, India.**

to have been born a man, so I could leave too" she said, full of hatred. "And I would not have liked to be a woman", he said. (Bogin 2.19)

The above conversation is between Esteban and his sister, Ferula. They are both educated in the same setting, but have specific ideas that make their minds and personalities different. She confined herself to household chores and felt like living within four walls was like living in a cage. It is well reflected the feeling of women.

Extraordinarily strong virtues :- The author deliberately puts forward that women have extraordinarily strong virtues, including intelligence, spiritual thoughts and imagination. The pregnancy of the female protagonists symbolizes their sense of creativity and capacity. This shows that women have inborn qualities like unique sensitivity, supernatural power of intelligence and understanding. Progressive thinking that predicts the future proves to be better than the mandate. In this novel a woman named Clara expresses this character. Both female protagonists are committed to gender empowerment. They reject the notion of oppression that associates women with inferiority complex and weakness. Even today women are suppressed in every parts of the world. In the novel through the female characters like Clara, Blanca and Alba, Allende violates the concept of patriarchal society.

The most extraordinary characteristic of the women of the Trueba family led to a major change in the peaceful struggle they played to regulate their restrained and restrained litigation system. In Blanca's love affair, Clara is brutally beaten several times. Blanca and Clara reflect on their refusal to acknowledge their wife's superiority by being lonely. Although he caught her attention, she did not let him get close.

Ferula, Esteban's older sister, boycotts her brother by declining to offer him any financial assistance after expulsion out of the house which shows that Allende is full of self-confidence , self-esteem and self-respect. In their own possession, they have care of themselves. Unable to overcome the patriarchal misogyny, Esteban loses the contest of dominance over the female spirits of the house.

Clara creates her own home inside her head where Esteban cannot enter into it. Thus she creates a universe which is far removed from her dominant husband. She connects with the outside world. Her mother, Nivea also creates her own world who was a woman of unwavering integrity and good will. Nivea became more outspoken than Clara because she was interested in the feminist movement. She did not leave the house and did not use any physical force to show resistance. Rejecting and noticing Trueba she goes on to consider the obstacles and the forbidden climate. This type of resistance gives a major blow to the pride of the male dominants like Trueba. The following incident shows Clara's resistance very clearly- Clara never spoke to her husband again. She stopped using her married name and removed the fine gold wedding ring that he had placed on her finger twenty years before, on that memorable night when Barrabas was assassinated with a butcher's knife. (234)

Clara gives freedom to herself by helping the poor and the marginalized people in the Tres Marias. This attitude gives Clara some kind of relief and strength to her character.

Challenging the Oppressive World :- Women are very brave and challenge the rules of the oppressive world. Blanca proves that she is an incompatible woman through her love for Pedro Tercero Garcia, who is the son of a farmer peasant, Pedro Segundo. Blanca goes against her father's values and principles. It refers to the revolutionary socialist Miguel and Alba who goes against the will of Troop. Trueba exerts his dominance not only over the daughters of his

household but also over the rural women in order to retain the woman. He physically abuses them and spoils the lives of young farmers as well. For sexual gratification, he misused his servant's daughter. But, he did not accept that child, because it was not born to a wife who came from his own tribe. According to him, the boy is considered an outcast, even though he belongs to him. The following lines shows the tantrums of Esteban Trueba- Not a girl passed from puberty to adulthood that he did not subject to the woods, the riverbank, or the wrought-iron bed. When there were no more available women in Tres Marias, he began to chase after those from the neighboring haciendas, taking them in the wink of an eye, anywhere he could find a place in the fields, usually at dusk. He did not bother to hide, because he was afraid of no one…. The peasants hid their daughters and clenched their fists helplessly because they could not confront him. Esteban Trueba was stronger, and he had impunity. (81)

By their unfailing bravery, Clara, Blanca and Alba motivate Esteban Trueba. This renders the universe a distorted vision of underestimating women's position. In society, women are by no way less than men. In the end, Esteban acknowledges this to a certain degree. And he feels the reality that people who are self-illuminated cannot be handled. He regulates the woman of his house entirely either through abuse or through prohibitions. He considers them as insane. He is lenient in the life of Alba and also has some little bitterness. They are mindful, though, that the Patriarchy has interfered so deeply in the societal mentality that one cannot break out of it entirely. While Trueba is being changed, it is not a total shift since he still insists that much of the opportunities in women turn on her husband's selection- He had finally come to accept-beaten into it by the tide of his own ideas-that not all women were complete idiot, and he believed that Alba ,who was too plain to attract a well-to-do husband, could enter one of the professions and make her living like a man.(Bogin10.25)

Trueba also shows in such terms the oppressive society and the perspective of a woman's environment who sacrifices rights and dignity by marriage, "He said it was good for men to have a wife, but that women Alba could only lose by marrying." (Bogin11.2)

Conclusion :- Feminism is considered as one of the most significant aspects of the Latin American world. Allende's female protagonists provokes the thinking of the ordinary women in the society. She reveals her experience into sex equality in the way she addresses the topic of feminism. Her novel's women characters were seen as pacifist, but it proved they are the strong force of progress. The woman's attempt to take over the masculine power has been well described. Allende's women characters, however, have better emotions and a high degree of versatility. They battle from the same position in order to get their freedom. Being a woman, Allende is quickly able to see how she can leverage herself as an agent of reform in a highly patriarchal culture.

Reference:-

1. Bogin, Magda. English Translation of *The House of the Spirits by Isabel Allende*; Review by: Sharon Magnarelli Latin American Literary Review, Vol. 14, No. 28 (Jul. - Dec., 1986), pp. 101-104
2. Cisneros, Sandra.*Loose Woman.* Vintage contemporaries,1994.
3. García-Johnson and Ronie-Richele. "The Struggle for Space: Feminism and Freedom in *The House of the Spirits"*Author(s): Source: RevistaHispánicaModerna, Año 47, No. 1 (Jun., 1994), pp. 184-193 Published by: University of Pennsylvania PressStable URL: http://www.jstor.org/stable/30203383.
4. Isabel Allende.*The House of Spirits* translated by Magda Bogin. N.p. 1993.

Religion and Spirituality

Dr. G. Sowbhagya*

Abstract :- This paper provides a concise comprehensive of research on religion and spirituality. The topic of religion and spirituality can make people joyful and even terrifies. Religion and spirituality have played the most crucial role in conceptualizing and promoting peace in Individual life. It has profoundly affected human conscious life and moral behavior for over two thousand years. As we all grow, we begin to question, why we are here, and what is the meaning of our life is., as India is a country where it is very clear to see unity in diversity because people of many religion, race, culture and tradition live together without affecting each other's feelings and believes to their religion. Unity in diversity focuses on the existence of unity even after lots of differences of cultural, social, physical, linguistic, religious, political, ideological, psychological, etc... this paper will explain the differences and similarities between religion and spirituality and will research the religion importance in human life as religion or spirituality.

Keywords:- Religion, Spirituality, Peace, world peace.

Introduction :- Religion has its various restrictions imposed n a person, keeping all human activity confined to specific areas of living with its several do's and don'ts, do this and do not do that. There cannot be any religion without these two mandates imposed on man.

For thousands of years, humanity has passionately pursued the truth with an ultimate answer to life and the universe. This perennial knowledge constitutes the answers to what are often called the soul questions:

Who am I?

What do I want?

What is my purpose?

What is the meaning of life?

What can we know?

Is there a God?

What is the most important thing in my life?

Historically, from the perspective of the soul, there have been two foundational routes to discover these truths: religion and spirituality. Although they have many similarities and there is a relationship between the two, there are differences between religion and spirituality.

Religion and spirituality is the genius of Indian culture which blends in *dharma* the finer components of legality and spiritual values. It is as old as civilization itself and remained a universal feature of human existence. Religion is a matter of belief in supernatural or super human forces. Religion and spirituality beliefs and **practices are far from being uniform. The religious dogmas have influenced and conditioned economic endeavours, political movements, educational tasks, ideological fervours and artistic developments. Religion** and spirituality **is not only the most influential**

***Assistant Professor, Department of Education, Karnataka State Akkamahadevi Women's University, Vijayapur, India.**

sources of social control, but also the most effective guides of human behaviour. It is based on cultural needs of man which has added new dimension not only to human life but also to human development. It is a part and parcel of human society, since ancient period, it has been used to organize the society and to control the societal elements. Religion and spirituality **opinions have differed from the great religious leader down to an ordinary man. There is no consensus about the nature of religion** and spirituality**. Socio-religious philosophers have defined religion in various ways.**

Religion :- The term 'religion', has been derived from the two words're' and 'legere' which means 'to consider or to ponder'. It means that religion deals with an object on which an individual can ponder and mediate. According to this derivation, religion means that which binds men together individually and socially. Hence religion is an integrative force which forges harmony, internal and external, social and individual and physical and spiritual.

According to Galloway and Martineau, defined religion as, "man's faith in a power beyond himself whereby he seeks to satisfy emotional needs and gains stability of life and which he express in act of worship and services"".

Again, "religion is a belief in an ever living God, that is, a divine mind and will ruling the universe and holding moral relations with mankind".

Spirituality :- The word "Spirituality" flows from the Latin term "spiritus" which means "breath" – referring to the breath of life. It is primarily a dynamic, personal and experimental process. If we agree with the meaning "breath", - we will find it always within us. It does not belong to any culture, historical epoch, or belief system. It belongs to us. Compassion, discernment (judgment), high ideas, harmony, joy, knowledge, intuition, kindness, openness, patience, self-responsibility, serenity, tolerance, wisdom and a gentle love – are the attributes of true spirituality.

"Spirituality is the capacity of persons to transcend themselves through knowledge and love, that is, to reach beyond themselves in relationship to others and thus become more than self-enclosed monads."

Spirituality is a dimension of a human being that is actualized as a life project and practice.

India is a nation that is one of the cradles of civilization 5000 years old. Many of our traditions descended from Vedic times. Although most of us believe that we are what we make of ourselves somewhere deep within us are roots that have actually contributed in some way to what we are today-the way we think, our tolerance towards others, or understanding of nature, appreciation of the beauty of the universe or deep-seated philosophies.

Difference between Religion and spirituality

The difference between Religion and spirituality is as follows:-

1. There is no rules to spirituality
2. Spirituality is based only on love and not fear
3. Religion tells you the truth and spirituality lets you discover it
4. Religion separates and spirituality unites
5. There are many religion but only one spirituality
6. Religion makes you dependent whereas spirituality makes you independent

7. Religion is a formal with specific rules and rituals whereas spirituality is a way of loving, accepting and relating to the world and the people around you
8. Religion does not allow you to investigate or question what is being followed whereas spirituality encourages reasoning and questioning all the time.
9. Religion asks you to believe, spirituality asks you to look. Religion has dogmas, spirituality has wisdom teachings. Religion wants obedience, spirituality wants experimentation. Religion speaks of sin and hell, spirituality speaks of karma. Religion wants to comfort you, spirituality wants to liberate you. Religion is external spirituality is internal. Religion wants to convert you. Spirituality wants to inspire you. Religion is an institution, spirituality is journey

Similarities between Religion and spirituality :- Religion and spirituality endeavors to determine human activity in our society and to promote and control their behavior to the benefit of the whole society and its individuals, and to bring for all individuals a good conclusion in the other life. It aims to integrate human attributes, behavior, activity that aims to prepare followers of the Lord, and clarifies the path of goodness for them.

Religion and spirituality are inseparable close and it is sometimes hard to distinguish between the two. However they don not have to be one and the same. A person can be spiritual without being religious. However can a person be religious without being spiritual? Generally it's not possible. Being religious and being spiritual do tend to be in close cooperation with one another.

Religion and spirituality has a definite role to play in people's search for world peace. The moral principles and values contained in the teachings of great religious teachers are essential factors for the reduction and ultimate eradication of greed, hatred, and delusion—which form the root cause of various conflicts and wars, both within and without. Within oneself, these three evil or unwholesome roots bring about great unrest in the mind, resulting in physical outbursts of violence culminating in global warfare

Religion and spirituality :- Religion and spirituality are the two defining factors in the determination of the higher values of life. These two functions of the inner call of a human being correspond to life in the world and life in God. The relationship between the world and God is also the relationship between Religion and spirituality. It is said that God manifested himself as the world. Then equally we may say the spirituality manifest itself as religion.

Each religion manifests some aspects of the same truth, but the emphasis may differ according to the need of man of the period or age or race. India represents a bright future for the world in terms of spiritual awakening. The traditional religious system of India helps to provide an awareness of the way of spirit fullness – believing in sacredness, believing in unity and believing in transformation.

Conceptually spirituality and religiosity are taken as sharing much in common. As religion is institutionized spirituality. There are several religions having different sets of beliefs, traditions and doctrines.

Thus spirituality is typically regarded as a personal relationship with something divine but religion is a social institution which gratifies the need for belonging, social standing, social support and powers. The personal form of religion is spirituality and the practical societal form of spirituality is religion. Religion is concerned with a framework for beliefs, traditions, conduct and rituals; it tends to focus on ideology and rules of faith. Whereas spirituality encompasses an individual's relations to self, to others and to universe as well as the feeling of inner peace,

strength, discipline, interconnectedness and meaning to life. It focuses on experiences and relationships.

Religion and spirituality are intimately interconnected through overlapping concepts, even though these terms are not interchangeable. Where religion is typically more strict and organized, spirituality tends to be defined by each individual on a more personal level. It is viewed as an attribute (much like a personality trait) of an individual. Religion and spirituality are inherently social-psychological phenomena, which develops across the life span, whether dealing with children, adolescents, adults or the aged.

Summary of the paper :- India is a country where it is very clear to see unity in diversity because people of many religion, race, culture and tradition live together without affecting each other's feelings and believes to their religion. Unity in diversity focuses on the existence of unity even after lots of differences of cult

From the above discussion we can summarize the importance of religion and spirituality as follows:

- People get mental peace from religion and spirituality.
- Religion and spirituality explains the causes and remedies of individual sufferings and as such it console people in their junctures.
- The important function that religion and spirituality performs is that it inculcates social virtues in people like truth, honesty, love, discipline etc.
- Religion and spirituality is an important instrument for promotion social solidarity
- Religion and spirituality works as an effective means in strengthening self-confidence of people.

References :-

1. Aggarwal.J.C, (2005). *Education for Values, Environment And Human Rights*. Delhi: Shipra Publications.
2. Allport, G. W. (1950). The individual and his religion, New York, Macmilla
3. Chatterji, P.B. (1971). *Studies in Comparative Religion*, Das Gupta & Private LTD. Calcutta,
4. Encyclopedia of Philosophy: *History of the philosophy of religion.*
5. Ferguson. John, (1986). *Religion and Peace*. Linus Pavling. World Encyclopedia of Peace. Volume: 2. Oxford: Pergamon Press.
6. Irwin, G. F & Alan, K. I (2008). A brief history of Spiritual Discipline. Harper Perrenial.
7. James, W. (1985). The Varieties of Religious Experience, Cambridge, Ma., Harvard University.
8. Kaw, M. K. (2005). Science and Spirituality in the 21st century. Cited in Science and Spirituality. Edited by N.K. Singh
9. Maslow, A. (1970). Religious, Values, and Peak Experiences. Viking Press.
10. Radhakrishnan. S. (1933): *East and West in Religion*. London: George Allen and Unwin Ltd.,
11. Radhakrishnan. S. (1947): *Religion and Society*. London: George Allen and Unwin Ltd.,
12. Stanford Encyclopedia of Philosophy: *Philosophy of Religion.*

Understanding Dementia through the Prism of Literature

Ms. Sarita Agarwal*

Dr. Sangeeta Jhajharia**

Abstract: - Within a hyper cognitivist culture, people with dementia are subjected to acts of stigmatization and objectification that underestimate their personhood. It often robs them off the recognition of their person as a rational dignified self. Through this research paper, the researcher has analysed that a body of research cannot be a vacuum understanding of dementia, but a holistic approach which must recognize ethical and cultural importance of memory which is also the need of day. Further, personal care giving experiences incorporating technological advancements coupled with strategies aptitudes and skills are required to overcome this challenging disease. This paper also identifies the human rights of people with dementia, and how through the so called structures of care present in the society these rights are trampled on.

Keywords: - Dementia, memory, technology, human rights, cultural and ethical importance of memory.

Dementia is a disease of the brain that increasingly damages the brain cells over time. It is characterized by extremely disorienting symptoms like confusion, chaos, short term or long-term memory loss, and difficulties in managing mundane day to day activities. Further, there is a drastic change for the worse in the personality of the individual, in all spheres of life; a person so afflicted with the disease would find it increasingly difficult to carry out social functions of life. More than 24 million people are afflicted with dementia across the world, over time this number is expected to double as cases increase.

After analyzing a number of research papers, it can be determined that dementia is a medical condition which not only requires continuous support and strategy from the government but also continuous awareness among people and care-givers to understand the causes of this disease. One way of understanding dementia, at least for the general populace is to relate the abstract notions surrounding this disease and link it to relatable fiction.

One example of this sort of relatable fiction to understand this human condition is through the dissertation "The man who disappeared: Exploring dementia in short fiction by Siobhan Donnelly."

'The man who disappeared' is a short story cycle establishing the need of more representative form of dementia. By using multiple points of views to present a broader picture of the condition, TMWD focuses on the first hand experiences of the demented character. This collection addresses the fear of lost identity as the characters lose themselves to dementia. However, it also depicts that it is possible for a person with dementia to retain part of their identity. The Inspector is a story of a demented retired food inspector, who is in her sixties, still thinks that she has to pick children up from school and visit eateries to check the quality of food. The care facility where she is put up allows her to live her in an altered reality.

***Ph.D. Scholar, S.L.A.S, Mody University of Science and Technology, Lakshmangarh, Sikar (Rajasthan).**

****Associate Professor, S.L.A.S, Mody University of Science and Technology, Lakshmangarh, Sikar (Rajasthan).**

Though this short story cycle tries to prove that there are multiple dimensions associated with dementia other than loss of self, we find a large research gap here: The stories fail to depict the cultural and ethical importance of memory respective to any society. It also raises eyebrows to, whether it is morally and ethically correct to make a demented person live in an altered reality as suggested in the story 'The Inspector'. The multiple points of views to represent a clear picture of the condition is not enough to address the issues that go hand in hand with it.

The research paper "It Would be Better If She'd Died: Young People with Parents with Dementia Articulating Inadmissible Stories", talks about harrowing tales of people ridden with dementia. It is from the perspective of young people who have to deal with parents that have been afflicted by this same disease. The paper understands the embarrassing aspects of dementia and identifies the ways in which young people become caregivers; it voices the stories of these young caregivers caught with stress and guilty of waiting for their own parents' death. These negative accounts of young people contrast the master narratives of dementia that emphasizes the notion of 'living well'. It represents the huge gap between reality and fiction and it aims at voicing inadmissible stories of young people grappled with caregiving stress and sometimes ashamed of waiting for their own parents' death. However, penning down these negative experiences was difficult for the researcher but it would be a disservice to the research policy development and positive growth if these first-hand experiences are not taken into consideration. In "Dementia fiction, giving voice to an experience beyond language", the author Naomi Kruger underscored the vitality of macro narratives that surround dementia and its patients through cultural stories, stereotypes and language.

The author makes a quite central point that, a lot of caregiving impulses at the individual level are driven by the societal narratives that are used to explain different diseases. One example of this factor is that cancer patients are looked at through a lens of pity and inevitability that drives a lot of care surrounding them. In the same way, there are certain narratives that are attached to being a dementia patient, a lot of these narratives being negative ones. There are certain words which particularly pertain to dementia as a medical illness. For ex. Insane, mad, lost, confused, chaotic, troublesome etc. One has to go beyond these to affect the proper care on patients; this can be done through literature and other things that determine societal outlook.

In "Dementia in the movies: the clinical picture", the researchers have done a qualitative study upon the internet movie database between January 2000 and March 2012, they watched 23 movies, using the search terms "Alzheimer's disease", "senility" and dementia. One stark stipulation that comes through this research is that, although various mental afflictions and symptoms are properly characterized and depicted over the course of time in movies, more debilitating physical symptoms have not been depicted well. A conclusion; that there is a milder and softer portrayal of dementia in movies, because a whole set of actual symptoms are not depicted can be made. An example of this phenomenon is that a number of physical symptoms associated with dementia are not depicted, some of these are as through provoking as 'involuntary salivation' and 'violent assaults'. This goes to show that more gruesome and visible features of dementia are not understood.

In *Robot and Frank* movie set in the near future, an aging ex-convict and thief named Frank Weld lives alone and suffers from increasingly severe mental deterioration and dementia. Frank's son Hunter, an attorney and a family of his own, grows tired of making weekly visits to his father's home, but is reluctant to put his father into full-time care, so he purchases a robot

companion, which is programmed to provide Frank with therapeutic care, including a fixed daily routine and cognition-enhancing activities like gardening.

The movie stirs up the questions like how far the robots are dependable as caregivers of demented people, in the social fabric of our society, where everybody seems to be running. Are robots a better option in the context of aging parents and institutional care? A more metaphorical point raised here is that sometimes caregivers themselves also become like robots, answering the same questions again and again in monotonous voice.

In "The Experience of Lying in Dementia Care" by Anthony G discusses the practice of untruthfulness or lying adopted by care givers in residential aged care. These caregivers lie to the residents with dementia. They need guidance around lying to demented patients. An ethical framework of good/bad based on the theory of virtue was proposed. Personal care assistance, allied health professionals, enrolled nurses were interviewed to collect the data. The findings of this data promoted a communication strategy that emphasized truth telling as a first option and lie as a suitable measure.

This raises the eternal ethical question of whether to present truth as a bitter pill or coated in a sugary lie. Whether it would be appropriate to make the patients live in an altered reality. Next, in the paper "Cultural Representations of Dementia", the authors highlight that the body of research existing around dementia is not a vacuum understanding of dementia but is also a reflection of the cultural understanding of dementia and the facets that accompany it. He writes about the movies Robert and Frank and Still Alice: in the earlier film interesting questions arise about the relationship between memory, identity and humanity, essentially asking the immortal question of "what is it that makes us human?" in the context of dementia. In the same way, Still Alice tries to understand the complications that make up dementia. Lastly, in the film Iris we see a couple and their friends accepting the poignant fact that Iris is happy in a new environment where she is able to be the person she has become, rather than who she was. One over-arching point that the researcher sees here is that even if portrayals and symptoms of dementia are not reflected accurately in mediums like these, the least that can happen is that communities are sensitized to the disease making for more aware and less stigmatized societies.

In the paper "Ethical Care in Dementia", the authors bring to the fore ethical issues surrounding the care of dementia patients. This is largely due to the fact of exceeding cultural and personal importance of memory as it shapes a human being and his interactions with society. At the very least, questions that involve choice-making in the context of telling lies as has been highlighted in Dr. Casey's earlier analysis have to be looked at in the context of the ethics that come with such questions.

Further in the paper "How do elderly spouse care givers of people with Alzheimer disease experience the disclosure of dementia diagnosis and subsequent care?" the authors explore the experiences of care givers concerning the dementia diagnosis, it mentions that 93 percent of such people had their diagnosis openly discussed by their doctor. It is found out that almost all care givers preferred open discussion; some of them feeling that information passed on by the doctors was not adequate enough, feeling lonely coping with the illness and sometimes depression and anxiety were experienced.

In the same vein, the paper "Decision-Making on Behalf of People Living with Dementia: How Do Surrogate Decision-Makers Decide?", the author makes the important point that demented people are incapable of making important decisions about themselves and because of

this, decisions like lifestyle, medical treatment and end of life become the responsibility of the surrogate decision maker. The surrogates can make decisions more effectively only when they know accurately what the person with dementia would have wanted.

In the paper "Human Rights and the Confinement of People Living with Dementia in Care Homes", Linda Steele argues that exceeding confinement of people with Dementia might lead to a situation where the basic human rights of the person are violated. The author argues that one primary reason for this is that it is assumed that people with dementia have no agency and no choice because of a loss of cognitive abilities, leading to a situation where they are treated more like vegetables and less like humans. One common occurrence happens where these people are put in front of the TV for hours and hours at a time without any other stimulation. Hence, it is important to keep in mind the dignity of the individual when making such decisions about care giving as there can be no care without dignity. From the reading of these papers it can be said that there is an exceeding dearth of the understanding of dementia as a disease.

One way to address these structural difficulties is to understand dementia through the medium of literature and other visual mediums so as to sensitize people and give a simpler understanding of this complex disease, that would eventually lead to structural changes like changes in care giving and basic treatment of patients as those who are themselves afflicted with the disease are ill-equipped to make such sweeping changes.

Man is not a machine there are a whole gamut of emotions that come together to make a human being, hence, literature as a window to human emotions goes a long way in understanding the emotional perils of dementia. Due to the dearth of research regarding dementia in social contexts it can be said that there is an urgent need to put a human face and link human experience to the abstract theories of dementia, so that this disease can be humanized to a greater degree.

In an especially insidious disease like dementia, which brings out all kinds of emotions in a person that faces it and the family around the person; the emotional factor has to be taken into account to get a holistic understanding of how this disease operates and literature, is the most effective way to garner such an understanding.

References :-

1. Donnelly, Shibohan. "The man who disappeared: Exploring dementia in short fiction." Dissertation, University of Huddersfield, 2016.
2. Fetherstonhaugh, Deirdre, et al. "Decision-Making on Behalf of People Living with Dementia: How Do Surrogate Decision-Makers Decide?" *Journal of Medical Ethics*, vol. 43, no. 1, 2017, pp. 35–40. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/44606242.
3. Gerritsen DL, et al. "Dementia in the movies: the clinical picture." *Aging Ment Health*, 2014; pp. 276-80. doi:10.1080/13607863.2013.837150.
4. Hall, Mel, and Pat Sikes. "'It would be easier if she'd died': Young people with parents with dementia articulating inadmissible stories." *Qualitative Health Research*, vol. 27, no. 8, July 2017, pp. 1203–1214, doi:10.1177/1049732317697079.
5. Hillman A, Latimer J "Cultural representations of dementia." *PLoS Med*, vol.14 no. 3, 2017, pp. 11-14, doi:10.1632/adfl.43.2.11.
6. Laakkonen, M.L, et al. "How do elderly spouse care givers of people with Alzheimer disease experience the disclosure of dementia diagnosis and subsequent care?" *Journal of Medical Ethics*, June 2008; pp. 427-30. doi:10.1136/jme.2007.021956.
7. Laakkonen, Marja-Liisa and Kaisu Pitkälä. "Ethical Care in Dementia." *BMJ: British Medical Journal*, vol. 339, no. 7725, 2009, pp. 818–819, doi:10.1136/bmj.b3993.
8. *Robert and Frank*. Directed by Jake Schreier, performances by Frank Langella as Frank Weld and Susan Sarandon, Samuel Goldwyn Films, 2012.
9. Steele, Linda, et al. "Human Rights and the Confinement of People Living with Dementia in Care Homes." *Health and Human Rights*, vol. 22, no. 1, 2020, pp. 7–20. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/26923470.
10. Tuckett, Anthony G. "The Experience of Lying in Dementia Care: A Qualitative Study." *Nursing Ethics*, vol. 19, no. 1, Jan. 2012, pp. 7–20, doi:10.1177/0969733011412104.

Development of Science In Ancient India

Dr. Shashi Kant Dwivedi*

Abstract :– India is the land of origin of various Scientific and Mathematical development. In the Ancient India , several discoveries were made in the field of science and mathematics which were very later discovered by the other part of the world . From medicine to mathematics the contribution of Indians is very high. Many modern philosophers and scientists have taken the idea from our ancient religious books and epics for their discoveries and inventions. Ancient India was the hub of knowledge of all disciplines, what is taught to the world today it was discovered by Indians in the Early Vedic Period. This study is a descriptive type of research based on data gathered from Indian ancient books, epics, articles and websites.

Keywords:- Gravitation , plastic surgery , metallurgy , elliptical motion ,electric battery .

Introduction :- India is blessed to be the land of Gods , Saints , Rishi and Muni who made major contribution in the discovery of what we call as "Science" today. Our theories are used as a base for many modern concepts such as weather forecast, Astronomy, Aviation, Mathematics, Physics, Chemistry, Medical Science etc. Takshila which is said to be the world's first university in India in 700 BCE where more than 10,000 students from all over the world studied in more than 60 subjects.

The University of Nalanda built in the 400 BCE has also contributed greatly towards educating the students which later became the developers of various theories in the field of science and mathematics. India had produced some of the great mathematician (Baudhayan,Aryabhatta), physicist (Rishi Bhaskaracharya), astronomer (Varahamihira), chemist (Nagarjuna), Cosmology related (Rishi Kapil), aviator (Bharadwaja), surgery-related (Sushruta), atomic theory related (Rishi Kanada) and many others. Most of their work were texted in Sanskrit language. During British rule, the factual Vedic version was examined, scrutinized, and interpreted according to their capacity, and then they used our research and discoveries according to their need. Much of the ancient texts of India were translated into English, German and other languages and carefully kept in the British libraries. Moreover, the western world ruled over most of the world for a long time, which empowered them to claim superiority in every way, including in the field of knowledge.

The Relevant Theories and Discovery of Ancient Indian Scientists

Aryabhatta :- Aryabhatta was born in 476 CE in Kusumapura(Pataliputra). He was fifth century mathematician, astronomer, astrologer and physicist. He was a pioneer in the field of mathematics. At the age of 23, he wrote Aryabhatiya, which is a summary of mathematics of his time. Aryabhattiya is *primarily an astronomical treatise* written in *121 verses*. Its mathematical section contains 33 verses giving 66 mathematical rules. Aryabhatiya is divided into four chapters : *Gitikapada (13 verses), Ganitapada (33 verses), Kalakriyapada (25 verses)* and *Golapada (50 verses)*. Among other things, Aryabhatiya contains a systematic treatment of the position of the planets in space; the nature of the Solar System; and the causes of eclipses of the Sun and the Moon. The mathematical part of the Aryabhatiya covers arithmetic, algebra, plane trigonometry and spherical trigonometry. It also contains continued fractions, quadratic equations, sums of power series and a table of sines.

*** Associate Professor, Department of Physics, Udai Pratap College, Varanasi.**

Aryabhatta calculated the *closest approximate* ***value of pi*** *till that time*; was the *first known person to solve* ***Diophantine equations***; was *first to explain that moon and planets shine due to reflected sunlight*; and made *major contributions* to the fields of *Trigonometry* and *Algebra*. Aryabhatta was *one of the greatest mathematicians in history* and *a pioneer in the classical age of Indian mathematics and astronomy.*

Aryabhatiya provides simple solutions to complex mathematical problems of the time like *summing the first n integers, the squares of these integers* and *also their cubes*. Furthermore, Aryabhatta *correctly calculated the areas of a triangle and of a circle*. For example in Ganitapadam his writings can be translated as *"for a triangle, the result of a perpendicular with the half-side is the area."* In trigonometry, Aryabhatta gave *a table of sines* calculating the approximate values at intervals of *90°/24 = 3° 45′.* In order to do this he used a formula for *sin(n + 1)x – sin nx* in terms of *sin nx and sin (n – 1)x*. He was also the one to introduce the *versine (versin = 1 – cosine)* into trigonometry.

Even with the lack of any accurate astronomical instruments at the time, Aryabhatta was able to successfully deduce that the *Earth is round* and *revolves around its axis*. Furthermore, he connected this with the existence of the day and night. Aryabhata used a *geocentric model* for the solar system . Such type of theory are discovered in 1609 by Kepler .According to his first law,"All the planets revolve around the sun in elliptical orbits having the sun at one of the foci".But Aryabhatta proposed the same theory back in 5^{th} century .

Aryabhatta correctly explained *how the moons and planets have no light of their own but shine due to the reflection of sunlight*. Furthermore he corrected the flawed belief that eclipses are caused because of the shadows cast by the Earth and Moon and instead *explained the correct causes of eclipses*. The computational model of Arybhatta was so accurate that in the 18th Century, scientist ***Guillaume Le Gentil*** found his calculations regarding the duration of the lunar eclipse of 30th August 1765 to be short by *only 41 seconds!*

Aryabhatta explained how the Earth *moves around its axis* and he also explained how *the apparent movements of stars in the night sky is, in fact, a relative motion that is caused by the rotation of the Earth*. This bashed the popularly accepted view of the time that this was caused by the *rotation of the sky*. All this and more is mentioned in the very first chapter of Aryabhatiya where Aryabhatta calculates the number of rotations of the Earth in a *Yuga* (one of the four eras defined in Hinduism). He writes *"In the same way that someone in a boat going forward sees an unmoving object going backwards, so someone on the equator sees the unmoving stars going uniformly westward. The cause of rising and setting is that the sphere of the stars together with the planets apparently turns due west at the equator, constantly pushed by the cosmic wind."*

Kanad :- Kanad was a sixth century scientist of Vaisheshika School, one of the six systems of Indian philosophy.He founded the Vaisheshika school of Indian Philosophy that also represents the earliest Indian Physics. His name "Kanada" means "atom" . He got the name Kanad, because even as a child, he was interested in very minute particles called "kana(atom)". His original name was Aulukya. Kanda proposed a theory and according to his theory material universe is made up of kanas(atom) which cannot be seen by naked eye (since they are microscopic in nature).

Kanada proposed that everything can be subdivided, but this subdivision cannot go on forever, and there must be *parmanu (*smallest entities) that cannot be divided, that are eternal, that aggregate in different ways to yield complex substances and bodies with unique identity, a process that involves heat, and this is the basis for all material existence.

Kanada's system speaks of six properties (padharthas) that are nameable and knowable. He claims that these are sufficient to describe everything in the universe, including observers. These six categories are dravya (substance), guna (quality), karmana (motion), samaya (time), visesa (particular), and samavaya (inherence). But it is very unfortunate that we only know the atomic theory proposed by JJ Thomson(1897) , Rutherford(1911) , Neil Bohr (1913) etc. Rishi Kanada proposed the atomic theory long back in 6^{th} century.

Baudhayan :- BAUDHAYAN (800 BC – 740 BC) was a great Indian saint, astrologer, philosopher and a great mathematician. Baudhayan was the first one ever to arrive at several concepts in Mathematics, which were later rediscovered by the western world. The value of pi was first calculated by him. What is known as Pythagoras theorem today is already found in Baudhayan's Sulva Sutra, which was written several years before the age of Pythagoras.

BAUDHAYAN's Sulbasutra describes Pythagoras theorem as : "nh?kZprqjJL;k{.k;k jTtq% ikÜzoZekuh fr;Zx~ ekuh p ;r~ i`Fkx~ Hkwrs dq:rLrnqHk;a djksfrAA" A rope stretched along the length of the diagonal produces an area which the vertical and horizontal sides make together.

BAUDHAYAN discovered several other theorems as diagonals of rectangle bisect each other, diagonals of rhombus bisect at right angle, area of square formed by joining middle points of a square is half of diagonal, the midpoints of a rectangle joined forms a rhombus whose area is half of rectangle, etc.

Agastya :- Agastya rishi was one of the greatest Indian rishi who had been mentioned in the oldest books like Mahabharata and Ramayan. Agastya rishi is celebrated author of the verse(chhand)

1.165 to 1.191 in the Rig Veda . He was author of the book Agastya Samhita which was written around 7000 year ago . In this book Agasthya explains the methodology involved in the construction of electric battery. He also described that water could be split into oxygen and hydrogen.One of the Shloka from his books Agastya Samhita is mentioned below -

Shloka in Sanskrit: Samsthapya mrinmayam patram tamrapatram susamskritam | Chadayet sikhigrivena cardrabhih kasthapamsubhih ||

Explanation: . An earthen pot was taken and covered with a clean copper plate. On the copper plate was the copper sulphate above which moist saw dust was placed. On top of all these, zinc amalgam sheet was placed known as Mitra–Varuna. Here Mitra means the cathode and varuna means anode.

Thomas elva edison invented the electric bulb in **January 1879 .** He has admitted that the study of the book "Agastha Sahita" written by Agastha Rishi was full of knowledge about electricity and this helped him a lot during his research and invention .

Nagarjuna :- Nagarjuna was a tenth century scientist. He was Indian Metallurgist and alchemist . Textual masterpieces like "Ras Ratnakar ," "Rashrudaya" and "Rasendramangal" are his renowned contributions to the science of chemistry. Nagarjuna had discovered the alchemy(rasaayan) of transmuting base metals into gold.

This technology is used in making imitation jewelry. In his book, Rasaratnakara, he has discussed methods for the extraction of metals like gold, silver, tin and copper which we call today as metallurgy.He has also contributed in discovering many useful medicines .

Varahamihira :- Varahamihira was an ancient Indian astrologer, born in Kayatha a village in Ujjain Madhya Pradesh . Varahamihira's most famous works were the *Brihat Samhita*, an

encyclopedic work on architecture, temples, planetary motions, eclipse, timekeeping, astrology, seasons, cloud formation, rainfall, agriculture, mathematics and many other topics.He told about the presence of underground water by observing the movement of animals like termites(deemak) ,they go very deep to the surface of water level to bring water to keep their houses wet.

Another important contribution of Varahamihira is the Brihat-Samhita. It covers wide ranging subjects of human interest, including astrology, planetary movements, eclipses, rainfall, clouds even domestic relations, gems, pearls and rituals. Another theory, which has attracted the world of science is the earthquake cloud theory given by Varahmihira in his Brihat Samhita. The thirty second chapter of this samhita is devoted to signs of earthquakes. He has tried to relate earthquakes to the influence of planets, undersea activities, underground water, unusual cloud formation and abnormal behaviour of animals.

Susruta :- Susruta was a well known ancient Indian Physician and surgeon .He has written Susruta Samhita which also forms foundation for Ayurveda . In Susruta Samhita, over 1100 diseases are mentioned including fevers of twenty-six kinds, jaundice of eight kinds and urinary complaints of twenty kinds. Susruta is also regarded as the "father of surgery". He considered surgery as "the highest division of the healing arts and least liable to fallacy" . He studied human anatomy with the help of a dead body. In Susruta Samhita, the method of selecting and preserving a dead body for the purpose of its detailed study has also been described. The dead body of an old man or a person who died of a severe disease was generally not considered for studies. The body needed to be perfectly cleaned and then preserved in the bark of a tree.

Susruta's greatest contribution was in the fields of Rhinoplasty (plastic surgery) and Ophthalmic surgery (removal of cataracts). In those days, cutting of nose and ears was a common punishment. Restoration of these or limbs lost in wars was a great blessing. In Susruta Samhita, there is a very accurate step-by-step description of these operations. Surprisingly, the steps followed by Susruta are strikingly similar to those followed by modern surgeons while doing plastic surgery. Susruta Samhita also gives a description of 101 instruments used in surgery. Some serious operations performed included taking foetus out of the womb, repairing the damaged rectum, removing stone from the bladder, etc.

Today we see there is a lot of talk on exercise and fitness and people are also going to Gym trainers and fitness trainers . Susruta thousand year back spoke and wrote on Exercise and Fitness . Even he was the first physician to prescribe exercise. Susruta prescribed moderate exercise for people in ancient India because it improved the growth of limbs; enhanced muscle stoutness (mass), strength, endurance, tautness (tone), and development; reduced corpulence; increased digestion . He said exercise was also important because it give mental peace, alertness, retentive memory, and keen intelligence. Susruta regarded diabetes and obesity as diseases and included moderate exercise within his treatment . But **Joseph von Mering and Oskar Minkowski** are credited for discovery of diabetes(1889) disease ,although Susruta wrote about diabetes thousands years back . At present , physician are talking a lot about obesity and how it has taken place of diseases , specially among the youth but Susruta wrote about obesity long time back and he even told that exercise could cure it , he also prescribed the ideal diet to deal with the obesity and diabetes .

Over 760 plants are described in his book Susrut Samhita . All parts, roots, bark, juice, resin, flowers etc. were used for curing disease . Cinnamon, sesame, peppers, cardamom, ginger are household remedies even today.

Bhaskaracharya :- Bhaskaracharya was an Indian mathematician and astronomer who was born in 1114 AD in Vijayapura . Bhaskaracharya's father was Mahesvara who was famed as an astrologer. Bhaskaracharya represents the peak of mathematical knowledge in the 12th century. He reached an understanding of the number systems and solving equations which was not to be achieved in Europe for several centuries. Six works by Bhaskaracharya are known and they are: *Lilavati* (The Beautiful) which is on mathematics; *Bijaganita* (Seed Counting or Root Extraction) which is on algebra; the *Siddhantasiromani* which is in two parts, the first on mathematical astronomy with the second part on the sphere ; the *Vasanabhasya* of *Mitaksara* which is Bhaskaracharya's own commentary on the *Siddhantasiromani* ; the *Karanakutuhala* (Calculation of Astronomical Wonders) or *Brahmatulya* which is a simplified version of the *Siddhantasiromani* ; and the *Vivarana* which is a commentary on the *Shishyadhividdhidatantra* of Lalla.

Apart from this one of the most famous work of bhaskaracharya was in the field of Gurutvakarshan Shakti (Gravitation) , he explained the concept and laws of

Gurutvakarshan Shakti (Gravitation) early in 11th century. But 99% of the people only know the concept and laws of Gravitation proposed by Sir Isaac Newton in 1687 in which he said "every object in the universe attracts every other object with force directly proportional to product of the masses and inversely proportional to square of the distance between them and this force act long the line joining the centre of object"

In "Sidhanta Shiromani" Bhaskaracharya gave the law of Gurutvakarshan Shakti(Gravitation) in 1150 AD.6th shloka in Sidhanta Shiromani - "akrsta saktisca mahi taya yat svastham guru svabhimukham svasaktya akrsyate tatpatativa bhati same samantat kva patatviyam khe"

Explanation : Earth attract all the bodies due a force of attraction .This force of attraction is also present between the planets and this allows them to hold themselves firmly in the space .

Conclusion :- Science in Ancient India played a very important role for the development of modern Science . The Science which we see and read today is highly developed but in the Ancient time when there was lack of instruments and technology , at that time the scientist of Ancient India discovered the different theories and methods which is considered of great importance today . Travellers from entire world came in Bharat ,studied and collected enormous knowledge from Vedas , Puranas ,Bhagavad Gita and text written by ancient Indian scientists. Scientists of world have accepted the work of Ancient Indian Scientists . Our ancient science can surely play a pivotal role in shaping our present as well as future development.

References :–

1. Bhagavad Gita
2. Atomic Physics by White H.E.
3. Agastya Samhita
4. Aryabhatiya
5. **Biography from** *Britannica and Wikipedia*
6. *Gravitation ,Chapter vii (Elements of Properties of Matter by D.S Mathur)*
7. Murty, Rani Sadasiva (2018): "An Introduction to Ancient Indian Knowledge Systems", Veda Darsini(An International Refereed Quarterly Research Journal), Issue – I, January, (http://www.svvedicuniversity.ac.in/vedadarshini/volume-1/a3.pdf
8. Vidya, R. (2001): "Science in India: Past, Present and Future", November 18, 2001 (www.folk.uio.no/ravindrv)

Socio-culture Determinants of Female Foeticide in India : A Never Changing Story

Dr. Prashant Dwivedi *

Abstract :- Female foeticide, giving priority to boys and the low value attached to the birth of a girl child, is a deliberate murder of a girl child. These practices take place in areas where cultural values give more importance to the boy than to the girl. Female foeticide has become common in our society today. This foeticide is the result of ancient, complex and orthodox ideologies of man. The inhumanity, immorality and cruelty related to this reprehensible act is the unfortunate reality of our country in the present times. Today, there is a strange irony of our country that despite the efforts made by the Government of India on this serious problem, the incidents of female foeticide are increasing continuously and rapidly in the society. CSO's report completely refutes the claims of the government on the number of female foeticides taking place in many parts illegally and covertly. The status of women in the society, dowry system, male dominated mentality, ancient and worn-out attitudes, superstitions, illiteracy, poverty, wrong use of medical technology, etc. are the main reasons for female foeticide. Female foeticide was encouraged in India in the 1990s with the advent of technological advances such as parental sex determination in the medical field. However, earlier, in many parts of the country girl children were killed soon after birth. In Indian society, girl child is considered as a social and economic burden leading to the belief that it is better to kill them before birth.

Key-Words:- Female foeticide, technology, orthodox attitude, PCPND, Ultrasound, CSO

Introduction :- Indian society is covered by the veil of social evils. These evils are like a web from which it seems difficult to get out. They have played a big role in making Indian society weak and inferior. In fact, many evils exist in our society. Such as dowry system, child marriage, child labour, purdah system, and female foeticide. Female foeticide is taking the form of a serious curse. Foeticide has become a common practice in our society today. These foeticides are the result of ancient, complex and orthodox ideologies of man. The paradigms of the fast-changing Indian society are constantly changing. As man is becoming mature, he is still adopting ancient and orthodox customs and superstitions that might have been irrelevant. Only the way of doing those disgusting acts has changed. Today female foeticide has taken the form of such an inhuman problem which is also the root of many more serious problems. Due to this the number of women is decreasing day by day. In India in 1901 there were 972 females per 1000 males. In 1991 this number dropped to 927. In 2011 census this ratio is very less in some states of India. In states like Delhi, Haryana, Punjab, Rajasthan, the number of women is less than the limit. Kerala is the only state where the number of females per 1000 males is 1058.

Statement of Problem :- Like the western countries, India also suffers from many condemnable acts of humiliation, atrocities and exploitation of women. One of the saddest among them is female foeticide. The inhumanity, immorality and cruelty related to this reprehensible act is the specialty of our country in the present times. The country which we portray as a religion-oriented country, a country of non-violence and spirituality and a country of women's pride and dignity. Today, there is a strange irony of our country that despite the efforts made by the Government of

***Associate Professor, Dr. B.R.A. Govt. Girls PG College, Fatehpur, U.P.**

India on this horrific problem, the incidents of female foeticide are increasing continuously and rapidly in the society. Now the question arises whether female foeticide can be stopped altogether, or it will remain merely a utopian dream. What could be possible ways of putting an end to female foeticide or at least minimizing it?

Objectives of Study :- It is often believed that the main cause of female foeticide is illiteracy or poverty in the country. This is the reason why the sex ratio is impaired in the more educated states, while the sex ratio is more balanced in the backward and uneducated majority states. Therefore, the objective of this study is to establish the fact that chief cause of such female foeticide is the result of social beliefs, traditional beliefs and our underdeveloped thinking. One of the objectives of the study is whether the multi-pronged strategy adopted by the government to stop female foeticide in the country is effective or not. This includes programs to create awareness and take legislative measures as well as to empower women socio-economically.

Review of Literature :- Madhusoodan Tripathi in 'Female Foeticide in India: A Harsh Reality' (2011) provides an in-depth study and analyses of meaning of female foeticide, actual situation of female foeticide in India, reasons of practice of female foeticide, law enforce regarding female foeticide etc. 'Disappearing Daughters: The Tragedy of Female Foeticide'(2007) by Gita Aravamudan uses the tools of investigative reporting to expose the imperatives that drive this horrific phenomenon. The author unravels an appalling story of deeply embedded and destructive patriarchal beliefs, disempowered women who have no claim on their own bodies and the active complicity of a ruthless and callous medical and social system. 'Stop Female Foeticide' (2013) written in clear lucid straight forward and easy-to-grasp language, by Verma, contains details of the Preconception and Prenatal Diagnostic Techniques (Prohibition of Sex Selection). It provides information for NGOs and volunteers working for menace female foeticide social workers. Press Information Bureau, Government of India, Ministry of Health and Family Welfare states that Some of the reasons for female foeticide are son preference, low status of women, social and financial security associated with sons, socio-cultural practices including dowry & violence against women, small family norm and consequent misuse of diagnostic techniques with the intention of female foeticide. Singh, M. K. in 'Kanya BhrunaHatya' (2020) depicts that foeticide has a historical and cultural background. In the past, people believed that a child is better because it would provide manual labour along with carrying forward the family lineage in the future. The son is seen as the property of the family while the daughter is considered as the responsibility.

Methodology :- The study is primarily based on the collection of the secondary data from books, journals, various websites, and different published reports related to the target study, so as to identify, select, process and analyse information about the topic, as the journal prioritizes conceptual research articles rather than ones based on surveys.

Discussion, Findings and Suggestions :- The United Nations has warned that increasing female foeticide in India could create a population-related crisis where fewer women in society could lead to increased sex-related violence and child abuse, as well as increased wife-to-be sharing and then it can lead to the collapse of social values and create a crisis situation. Ultrasound technology progressed in India in 1979, although its spread was very slow. But it started spreading widely in the year 2000. It has been estimated that since 1990, more than 10 million female foetuses have been aborted just because of being a girl.

When families choose to participate in prenatal sex selection through illegal ultrasound or abortion, they negatively impact society. These include increased gender inequality, high sex ratio, loss of life, lack of development, and abuse and violence against women and children.

Families often do not take this spill over into account and result in sex selection and female foeticide, which hurts society as a whole.

Measures and initiatives of the government to prevent foeticide :- The government has taken several steps to curb this evil and bring a change in the mentality of people. The multi-pronged strategy adopted by the government to prevent female foeticide in the country includes programs to create awareness and take legislative measures as well as to empower women socio-economically. Some of these measures are:

- To prevent sex selection before and after conception and to regulate prenatal diagnostic techniques, the government enacted a comprehensive law, the Pre-Conception and Prenatal Diagnostic Techniques (Prohibition of Sex Selection) Act, 1994. It was amended in 2003.
- The government expedited the effective implementation of this law and amended various rules, including sealing and confiscation of unregistered machines and penalizing unregistered clinics. The regulation for the use of portable ultrasound equipment notified only within the registered premises. A Medical Practitioner can perform Ultra Sonography only at a maximum of two Ultrasound Centres within a district. Registration fee increased.
- All the states have been urged by the Ministry of Health and Family Welfare to strictly implement the Act and take steps to stop illegal gender detection methods.
- Urged the Chief Ministers of all the states to reverse the trend of sex ratio and check the neglect of girl child by emphasizing on education and empowerment.
- The Ministry of Health and Family Welfare has asked the States and Union Territories to pay maximum attention to the serious implementation of this Act.
- The Central Monitoring Board was constituted under the PNDT Act and its regular meetings are being held.
- The matter was taken up with the Ministry of Communications and Information Technology to stop the advertisements of gender selection on websites.
- The National Inspection and Monitoring Committee was reconstituted and the inspection of Ultra Sound Diagnostic Facilities was expedited. Surveillance work was done in Bihar, Chhattisgarh, Delhi, Haryana, Madhya Pradesh, Maharashtra, Orissa, Punjab, Uttarakhand, Rajasthan, Gujarat and Uttar Pradesh.
- For the implementation of the law under the National Rural Health Mission, the government is providing financial assistance to the States and Union Territories for information, education and communication campaigns.
- States have been advised to pay special attention to districts/blocks/villages with low sex ratio to find out the reasons, prepare appropriate behaviour change outreach campaigns and effectively implement the provisions of the PC and PNDT Act. The Pre-Conception and Pre-natal Diagnostic Techniques (PCPNDT) Act, 1994 is a federal law passed by the Parliament of India to prevent female foeticide and declining sex ratio in India. Pre-natal sex determination has been banned by this act. Under the Pre-Natal Diagnostic Technique 'PNDT' Act, 1996, there is a ban on the examination of the sex of the baby before birth. In such a case, for the couple or the doctor, or the lab worker who has done ultrasound or ultrasonography, there is the provision of three-to-five-year imprisonment and a fine of 10 to 50 thousand rupees. Every genetic counselling centre, genetic laboratory or genetic clinic engaged in giving counselling or conducting prenatal diagnostic techniques, such as before conception and with the possibility of subsequent sex selection, in Vitro Fertilization (IVF) comes under the purview of the PCCPT Act and is banned.

However, the 2011 census data has proved that all laws related to girl protection are ineffective. The national sex ratio may have increased after 1991, but there is a steady decline in the sex ratio in the age group of 0 to 6 years. The main reason for this is foeticide by conducting sex test. It is estimated that every 6th girl child is killed before birth. According to a non-governmental survey, one crore girls are born in the country every year, out of which about 20 lakhs are killed before birth. That is, 20 lakh female embryos are destroyed every year. According to the Indian Medical Association, about 50 lakh female embryos are destroyed every year in the country. The British medical journal The Lancet reported in early 2019 that nearly 10 million female foetuses have been aborted in the past 20 years.

S/N	According to the 2011 census:
01	Three states with highest child sex ratio (the number of females per thousand males in the age group 0-6) Mizoram 971, Meghalaya 970, Chhattisgarh 964
02	Three states with minimum child sex ratio Haryana 830, Punjab 846, Jammu Kashmir 859
03	2 districts with highest child sex ratio: Lahulspiti, Himachal Pradesh 1013, Tawang, Arunachal Pradesh 1005
04	2 districts with minimum sex ratio: Jhajjar, Haryana 774, Mahendragarh, Haryana 778
05	National average of child sex ratio: 914 girls per 1000 boys

Source- Census of India 2011

According to the Central Statistical Report, about four lakh 81 thousand female foeticides have taken place in India between 2016 and 2020. In this sense, 1000 to 1500 girls are buried every day before they are born in these four years. This report of the Central Statistics Office is enough to show the true picture of the society living in conservatism. The natural ratio is assumed to be between 103 and 107, but higher numbers are referred to as female foeticide. According to the decadal census of India, the sex ratio of children in the age group of 0 to 6 years has increased from 102.4 in 1961 to 104.2 in 1980, 107.5 in 2001, 108.9 in 2011.

Limitations of Study :- Limitation of the study is that of the statistical data. This research paper is largely qualitative and based on theoretical research methodologies. Without survey this article has not for the most part, yielded statistically significant results. Besides, biased views might have been reflected because of the cultural background or personal views of the researcher.

Let Us Sum Up :- It cannot be forgotten that society is made of us. We are the unit of society. If something good or bad happens in the society, it is the responsibility of all of us. Female foeticide is a social issue and not so much a legal one. When society ignores, only then the law has to come forward. In order to keep the sex ratio of the society balanced, a resolution has to be taken to stop this maladaptive tendency. Awareness should be brought that bearing a child is itself a symbol of potency whether it is a girl or a boy. Everyone should strongly believe that bringing up a girl is like bringing up a future mother who has to restructure a family tomorrow. Some things are better understood when practised. It takes time, patience and consistent efforts for bigger changes to occur.

Scope for Future Study :- The limitations of this research paper points towards topics to be addressed in the future, as the shortcomings or the research gap guide for future researchers on a domain that they must consider to save time and avoid repetitive outcomes. Additional tools should be designed to ensure exact findings about the issue of female foeticide and its impacts on Indian society. However, the depth and scope of discussions can be compromised in different

levels compared to scholars with a lot of expertise. Quality research that is in relation to the theoretical development of the study in focus should be done and it must aim towards devising correct methodology and proper survey as female foeticide and subsequent parti pris female-male sex ratio can pose a threat to our society. This will not only increase the social crimes but also increase the atrocities on women.

References :-

1. Aravamudan, Gita. *Disappearing Daughters: The Tragedy of Female Foeticide*. Penguin Books, 2007.
2. Bureau, US Census. "Comparing 2011 American Community Survey Data." *Census.gov*, 8 Oct. 2021, www.census.gov/programs-surveys/acs/guidance/comparing-acs-data/2011.html.
3. Ghosh, Rohini. "Ethical Conflict among Doctors in India: A Cause of High Female Foeticide." *Acta Paediatrica*, vol. 98, no. 2, 2008, pp. 403–404., doi:10.1111/j.1651-2227.2008.01104.x.
4. Mittra, Anwesha. "Anything for a Baby Boy! - Times of India." *The Times of India*, The Times of India, 21 Oct.2011, timesofindia.indiatimes.com/life-style/relationships/love-sex/Anything-for-a-baby-boy/articleshow/7346619. cms.
5. "NFHS 5: क्या भारत में वाक़ई मर्दों के मुकाबले औरतों की संख्या बढ़ गई है?" *BBC News हिंदी*, BBC, www.bbc.com/hindi/india-59429033.
6. "PGD / PGS - a Boon for Couples with Genetic Issues - Times of India." *The Times of India*, The Times of India, 31 May 2019, timesofindia.indiatimes.com/life-style/health-fitness/health-news/pgd-/-pgs-a-boon-for-couples-with-genetic-issues/articleshow/66317243.cms.
7. *Press Information Bureau*, www.pib.gov.in/.
8. Singh, M. K. *Kanyā BhrūṇaHatyā*. Prasanta Publishing House, 2020.
9. Tripāṭhī Madhusūdana. *Female Foeticide in India: A Harsh Reality*. Ancient Pub. House, 2011.
10. Verma. *Stop Female Foticide: The Preconception and Prenatal Diagnostic Techniques*. Jaypee Brothers Medical Publishers (P) Ltd., 2013.
11. Written by AtinukeFalaiyeAtinuke is a law student and writer who is passionate about dismantling oppressive systems. View all posts by AtinukeFalaiye. "Female Foeticide: All Children Should Have Equal Rights to Live." *DocumentWomen*, 21 Sept. 2021, documentwomen.com/female-foeticide/.
12. "कन्याभ्रूणहत्या." *Wikipedia*, Wikimedia Foundation, 10 Mar. 021, hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A 4%95%E0 %A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE_%E0%A4%AD%E0%A5%8D%E0%A4%B0% E0%A5%82%E0%A4%A3_%E0%A4%B9%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE.

Feminine Sensibility in 'The Kept Woman and other stories' by Kamala Das

Dr. Rousonara Begum*

Abstract :- In the beginning of post-independence era a new wave came into the field of Indian English literature. Among these new writers Kamala Das was a significant one. She is often referred to as the icon of Indian feminism who had established herself a strong voice for women. The main focus of her writings is the plight of women and protest against patriarchy. Feminine sensibility and urge for true love is reflected in all the writings-poems, short story, novel, essay, memoir-of Kamala Das. In her large creative work, she has contributed many short stories based on the problem of inequality that exist between men and women in society. As her other literary works, the short story collection entitled 'The Kept Woman and other stories' deals with the theme of feminine sensibility. In the title story 'The Kept Woman' she depicts the tragic life of a woman living with a reputed politician for whom she was only an object of entertainment. 'The Flight' is the story of a sculptor wife who had been cheated by her husband. 'Parboti's Story' deals with the unhappy love affair of a girl who had to marry a widower of her father's best friend for years. Thus in almost all the stories the author depicts feminine sensibility in a very clear way. She realistically portrays the maltreated women characters' agony in her stories. An attempt has been made in this paper to go through the issue of women's inequality and their struggle to have a space in society.

Keywords :- Feminine sensibility, confessional tone, patriarchy, widowhood, sexuality, tradition.

Introduction :- The women writers of India have addressed to gender issues in the regional and national context through their writings where they probe deep into complexity of hegemonic power structure involving patriarchy. In the writings of Mahasweta Devi, Ismat Chughtai, Amrita Pritam, Kamala Markandaya one finds the poignant description of many stories through which they register their protest against oppression. Kamala Das (1934—2009) is one of the significant voices among these writers. Kamala Das is an accomplished poet, novelist, short story writer, essayist, memoirist and a popular columnist as well. Her literary activities have attracted the attention of a wide number of readers.

Kamala Das began writing in her twenties and years afterwards. She was a bilingual writer who writes both in English and Malayalam with equal mastery. She achieved popularity with the publication of the poem 'Summer in Calcutta' in 1965. As recognition to her unique contribution she was awarded many accolades including Sahitya Academy Award in 2003 and Kerala Sahitya Academy Award for fiction 2005. Kamala Das had been serving as the editor of The Illustrated Weekly of India for one year. She had been contributing to the journals and magazines including Imprint, Famina, Poetry East and West, The Illustrated Weekly of India, Opinion, Debonair, Weekly Round Table etc. One of the most prominent female voices of India, Kamala Das, had always been writing with utmost boldness and honesty. Her poetic output consists of three volumes of poetry-Summer in Calcutta (1965), The Descendents (1967) and The Old Playhouse (1974). Young Commonwealth Poets' 65, New Writing in India, Commonwealth Poems of Today are some of the prestigious journals and magazines where her poems appeared. In fact she had made a substantial position in the domain of Indian English Literature by her unique disposition of various issues. Starting her literary career from her young age, this brave writer had actively

***Assistant Professor, Deptt.of English Furkating College. Dist: Golaghat, Assam.**

associated with the problems of society in general and women in particular. Being a born rebel, she was all for a crusade against social inequality. It was her continuous effort to do away with all manmade disparities between man and woman. Her unyielding spirit never allowed her to bow low to any force. In her writings, she incorporates her urge for justice and equality which prove her deep bond with the society. In 'The Kept Woman and other stories' also she had highlighted these issues. This paper tries to focus on the issues of feminine predicament in this book.

Objectives of the study :- The paper is conceived with the objectives of-

- To apprehend the nature of oppression and domination meted out to women in society.
- To explore the general conditions of women in Indian society.
- To investigate the women's representation in different categories such as mother, wife, mistresses, free woman etc.

Methodology :- The present paper is based on both interpretative and analytical methods.

Feminine sensibility in 'The Kept Woman and other stories'

It is the notion of our society that the works and contributions of women are barely recognized and they remain invisible although a huge portion of the total population is constituted by them. Patronizing the traditional way of considering females as lesser man, they are recognized by her feminine qualities such as virtuousness, beauty and submissiveness as a whole. It is the prevailing system of patriarchy that incarcerates women to subordinate role and those violating the notion of social decrees are subject of criticism. It stands as powerful discouragement in a woman's life and also barrier to eliminate her 'self', her separate identity.

In almost all the stories of the collection 'The Kept Woman and other stories' Kamala Das explores various issues of Indian women. 'Kalyani' is the story of a woman who had been trapped by some people on behalf of their leader. In this male dominated world a woman is considered as an object or a property without any emotion and has no right to live a free life. Without any fault of her she had been arrested only for their satisfaction. In addition to this the lady had been ill-treated by her husband to whom she had great faith and hoped to be rescued by him. He said, *I didn't believe even when I got the letter*, said her husband. *Even now when I got a call I thought that somebody was playing a trick. I never thought you were a harlot...*[1] Kalyani's yearning of true love from her husband remained unfulfilled in this way. It is one of the incidents that reflect the real status of women in the society.

The story entitled 'Parboti's Story' deals with the theme of Parboti's love affair with a Muslim boy and effect of India's partition. Parboti loved a boy named Naushad, a car washer. The end of this affair was tragic as Parboti had been married to a widower who was her father's best friend for years. No one paid any attention to her consent. The one and only concern for the parents is to arrange marriage of their daughters in an early age as they are considered as the burden of the family. It was clearly reflected in the speech of Parboti's mother, *What is the use of crying! We have no right to keep our girls at home when they come of age. I too was of your age when your father married me. Then I learnt to live as a wife. You must live as a wife,*[2]

Another important aspect of this story is that Naushad was not so serious and emotional regarding his love. His meagre income compelled him to live apart in spite of Parboti's will to elope with him only the day before her marriage. In consequence the marriage of Parboti had been occurred with the person whom she called as Chacha. 'True Lies' is the story of the hypocrisy of a husband. He had a secrete relation with a girl named Stella. It was discovered by their young child left by his mother for two days with his (child) father. The narrative style of this story is attractive, especially the expression of the feelings or the mental conflict of the child. The boy thinks, *I shall*

tell her about everything that happened while she was gone. I shall tell her that I was made to eat rice with only sour buttermilk that I was made to sleep alone in a dark room, that Stella had come, that at night lots of people had shouted and laughed and opened bottles downstairs.[3] Though the child mentioned the topic of Stella in the midst of his speech, his father tried to convince his wife as it was a lie. This is the story of an innocent wife and a loving mother.

In 'The Flight' the author beautifully narrated the feeling of a sculptor wife who had to become the support of her ailing husband. Towards the end of the story it is seen that the husband had made a relation with the model girl of his wife. With the hypocrisy of the husband, another aspect reflected in this story is the boldness of the author. She is bold enough to open expression about sexuality and gender equality. In this story the sculptor wife says, *I did not deserve the sympathy in his words. Before getting transformed into the bread-winner, I was just a plaything in the hands of my oversexed husband. It was only through a sacrificial offering of my body that I could satisfy him. If I had been paralysed in his place he would not have put up with me for more than a year. He would not have fed and clothed a wife who did not perform her duties in bed...*[4] The stories of Kamala Das reflect her consciousness towards need of love and liberated woman. As her other stories, this story also reflect the free nature of the author:

I used to feel immeasurably happy whenever he praised my beauty in the old days. Such words will help one forget one's dependence on another. But, as I gradually realised, one who is financially supporting one's husband and relatives and servants with a sense of responsibility never needs such praise. I didn't have to make him happy by exposing him to a vision of beauty. No such obligation remained anymore. I thought with pride: I'm free. I'm not a slave. I've become free from traditional duties.[5] Kamala Das considered marriage as a male dominated institution. This view is reflected at the end of the story when the sculptor wife knew her husband's relationship with her model girl she realised that, *...life so far has just been a dream. This flight alone is reality. This flight from the man I had loved once and from the respectable prison of marital life.*[6]

We encounter another male supremacist in the story entitled 'Marine Drive'. The author had introduced him as a successful politician. But this so called educated person also keeps many mistresses for his own pleasure and remains indifferent to his mistress's inner feelings. His indifference and hypocrisy reflect in the following speech of Anasuya, *...They told her that he'd had eldest daughter certified mad and packed her off to a mental asylum after she had fallen in love with a Communist leader; that he had taken out his typist to Poona when she had got pregnant and had killed her, pushing her out of the car down a deep ravine; that a well-known journalist investigating the inside stories of certain smugglers had been killed by his thugs, and so on.* [7] Anasuya wanted not to be left by him. But once she had become pregnant the behaviour of the politician had changed. Her sincere love had been considered by him as the characteristic feminine cunningness. It was only the male chauvinism for which he was indifferent to her love. Such attitudes of male chauvinism remind us the words of Simon de Beauvoir: "One is not born, but rather, becomes, a woman."[8] There is no 'essence' of woman; a woman is 'constructed' by man and society.

'Sedation' is the story of a writer struggling to play her role as a wife and mother. Her emotional depth can be felt in reading this story. *But no writer has any excuse to stay alive after she has stopped writing, and after the gushing flow has weakened to a trickle. When there is no writing done, you begin to feel that you are in a coffin that is sound-proof. You don't even try to*

send out a message then. After all nobody will want to save you for you have become a rind. It is enough if you remain within and moult like a diseased bird.[9]

The title story 'The Kept Woman' is a story about a woman living with a reputed politician in spite of knowing her tragic end. Love doesn't matter for the man who used the woman only as a mere plaything. She tried her best to change his mentality by saying that she was going to marry a young man. But the elderly person remained indifferent to it. She is not as important for him as he is for her. It is his ego or male chauvinism that he said, *I thought you knew that, little one. Ask anyone in this large city what they think of me. All will admit that I am rather extraordinary* (*smiles*).[10]

'A Letter to My Grandmother' is a granddaughter's confession to her grandmother about her various activities of past life. Relevantly she rose some matters related to women such as sufferings of widowhood, sexuality etc. *But once, when a neighbour had come visiting, and the two of you were discussing the plight women widowed early in life you said, not knowing that I was near enough to hear it, that a widow is a mere slave who must serve the lucky ones in the family until death*.[11] Kamala Das rebelled against social conventions and bourgeois morality. She was India's most unconventional woman writer having no regret for her work. It is her boldness in confessing about her extra marital physical relation with her cousin after her marriage. *When I was a new mother and only sixteen and a half, staying in Kerela, away from my husband, a cousin used to pester me for kisses each time he met me alone near a tree or a pillar. I was not averse to this game, being young and neglected by the legal mate*.[12]

Thus the author had successfully articulated a few very relevant issues through the portrayal of various characters. The stories are more or less staged against Calcutta (now Kolkata) or Kerala, it can be regarded as the representation the society at large. The author had proved herself as a master craftsman in portraying the characters of the stories who can leave a permanent mark in the minds of the readers.

Conclusion :- From the above discussion it can be said that through the realistic depiction of the characters in 'The Kept Woman and other stories', Kamala Das had succeeded in making the reader aware about the trauma and subjugation that the women encounter in their lives. Moreover the author focuses on a number of contemporary issues such as gender disparity, sexual inequality, and her individual obsession as well. All the stories in the collection are based around a girl or a woman in varying transitions. The touching stories of this collection go forward with the theme of gender equality and the fight against suppression of women. In her stories women play various roles as unfulfilled wife and beloved, mistress of lustful man, suffering woman etc. Her contribution is much more than literary achievements. In addition to the revolt against exploitation of women Kamala Das inspired the new generation of women reject victimization through her writings. On the whole, 'The Kept Woman and other stories', with its substantial female experiences, curved a place as short story collection having feminine sensibility.

References :-

1. Das, 2011, p.21
2. ibid, p. 67
3. ibid, p. 78
4. ibid, p. 85
5. ibid, p. 85
6. ibid, p 90
7. ibid, p. 102
8. Beauvoir, 1984, p. 295
9. ibid, p. 109
10. ibid, p. 118
11. ibid, p. 149
12. ibid, p. 149

Bibliography :-

1. Das, Kamala. (2011). *The Kept Woman and other stories*, published by Om Books International, Uttar Pradesh, India, Second Reprint.
2. Iyengar, K.R. Srinivas (1985). *Indian writing in English*, New Delhi: Sterling publishers.
3. Beauvoir, Simone de (1984). *The Second Sex* (published in French in 1949, English translation 1984).

Constitutional Provisions for Marginalized Sections in India : A Critical Analysis

Dr. Shailendra K. Tiwary*

Abstract :- Human Rights are basic rights. Human Right sponsor welfare and well-being of every individual. Constitution of India too guarantee basic civil, political, economic, social and cultural rights. Unfortunately people of marginalized section have relatively little control over their lives and resources, which deprives them from development. Present research paper focuses on provisions that have been incorporated in the Constitution of India to protect and promote interests, rights and well-being of the marginalized section. The study concludes that sincere efforts have to be made to rationalize the system to serve interest of more needy among dalits which has led to intra-caste rivalry among them. Few suggestions have also been made considering the situation. The paper is divided in four sections. The first section deals with the concept of human rights; second outlines the marginalized section in Indian society; third with constitutional provisions; fourth deals with an assessment of the constitutional provisions

Key words: Marginalized, Human Right, Constitution, Affirmative action, Education.

.

I. Concept

The concept of human right stands for those minimal rights which every individual must have by virtue of his being member of human society. There is a similarity between human rights and fundamental rights. When human rights are guaranteed by a written constitution these are called fundamental rights. It can be said that human rights are those natural rights of individuals without which no one is able to develop his personality fully.[1] Thereforeevery one should be entitled to have such rights by virtue of being a human person. As Upendra Bakshi has pointed out, a man as a bearer of human right must have an implicit right to be and remain human. He must have a choice in planning his own existence. Kant pointed out he must be treated as an end and never as a means.

Human rights may broadly divided into three categories :

(a) such rights which are necessary to fulfill basic material existence;(b) such rights as are necessary for full development of personality; (c) such economic and social rights which provides the basis of equality and a dignified human existence.

II. Marginalized section of Indian society

The term marginalized section stands for that section which has traditionally been deprived of those rights and privileges which were enjoyed by upper castes in society. It is synonymously used for dalits and backward castes of the Indian society. It was realized even during the colonial rule that without their development it was not possible to establish in India a just society characterized by liberty, equality and solidarity and the concept of the Indian nation cannot be realized in the real sense.

Jyoti Rao Phule stated: “There cannot be the nation worth name unless and until all people of the land such as shudras and ati-sudras, Bhils and fishermen, etc. become truly educated and are

*** Assistant Director, Directorate of Higher Education, U.P., Prayagraj.**

able to think independently for themselves and are unified and emotionally integrated"[2]. Dr. Ambedkar fought for the basic rights of what was called the "Depressed Classes". He submitted a statement concerning the state of education of the depressed classes in Bombay Presidency to the Indian Statutory commission (1928).[3] Again in 1942 in his memorandum submitted to the Governor General he emphasized the importance of their education.[4] He also submitted a memorandum to the Constituent Assembly which was published as 'States and Minorities' (1947) in which he suggested special provisions in the constitution for their rights, particularly their education.[5] The Advisory Committee of the Constituent Assembly accepted the necessity of Constitutional provisions for proper development of the marginalized section of society.

II. Constitutional provisions

At the very outset, it is stated in the preamble that the constitution is oriented to 'secure to all its citizens' social justice. Social justice implies that the state should take special steps to rectify inequality that is inherent in the social structure. It therefore permits discrimination in favor of such groups for a period which have suffered form such structural injustices with a view to over come such injustices. In modern times two approaches of social justice have been outlined: institutional approach and capability approach. The first is associated with the name of John Rawls and next with the name of Amartya Sen.[6]

The institutional approach emphasizes two principles: the liberty principle and the difference principle. Each person should have equal right of liberty; but the social and the political inequalities are to be so arranged as they are both (a) to the greatest benefit to the least advantaged and, (b) fair equality of opportunity regarding offices and positions open to all. A constitution should be framed specifying government and the basic rights of citizens. At this stage the difference principle holds the centre stage. Legislators should enact laws to achive long term social and economic policies in order to maximize the long term interests of the least advantaged.[7]

The capability approach is concerned with the ability of a person that he can achieve. It is concerned with the development of power to do something that emanates from his ability. Its emphasis is more on the development of the capability to achieve some thing than in establishment of an ideal institutions. It is oriented towards realization of something through personal ability. In place of "transcendental institutionalism", it emphasizes "realization -focused comparison". It is in this sense that Amartya Sen has emphasized capability equality in order to achieve social justice.[8]

The Indian Constitution, it may be suggested, attempts to combine both these approaches in order to establish social justice. On the one hand it accepts liberty for all citizens (from Art. 19-21), and it also accepts fair equality for all with a difference principle i.e. reservation for marginalized classes, it also provides for education with particular emphasis in the education of the weaker section of society. Education is of course, a powerful means to improve ability of a person. It is adequate education only that enables a person to choose and to realize his choice. That was the reason why Phule and Ambedkar emphasized necessity of proper education for marginalized section of society.

Art. 15 provides for prohibition of discrimination on grounds of religion, race, caste, sex or place of birth or any of them with the exception that state would have the liberty to make any provision for women and children. But later, by the First Amendment Act 1951, a new clause 4 was added which empowered the state to make any special provision for the advancement of any socially and educationally backward classes of citizen or for the SCs and STs.[9] Art. 16 provided for equality of opportunity in matters relating to employment or appointment to any other office under the state. But in clause 4 it is provided that nothing shall prevent the state form making any

provision for the reservation of appointments or posts in favor of any backward class of citizens which is not adequately represented in the services under the state. A similar policy of protective discrimination is visible in matters concerning elections to the House of the People and with Legislative Assemblies of States. According to Art. 326 these elections are to be held on the basis of adult suffrage; but Art. 330, 332 & 334 provide for reservation of seats in Parliament and State Legislatures for SCs & STs in proportion with percentage of their population in their respective States or Union Territories. After the recommendation of the Backward Commission under the Chairmanship of B.P. Mandal, reservations in public services was made also for other backward castes (OBCs).[10] By the 73[re]and 74[th] Amendment Bills 1992, it was provided that reservations should be made for women also in Panchayati Raj institutions and in urban local bodies.

Together with these institutional provisions the Constitution also provides for development of capability of the marginalized section of society. In Art. 46 it is provided that the state shall promote with special care the educational and economic interest of the weaker sections of the people and shall protect them from injustice and all forms of exploitations. It was from this point of view that the Art. 15 was further amended and by the 93[re]Amendment Act, 2005, a new clause 5 was added to it, which enables the state to make special provisions regarding the admission of weaker section of society to educational institutions.[11] It should not be overlooked that by the 86[th] Amendment Act, 2002, right to education was made a fundamental right (21-A) which provides for "free and compulsory education to all children of the age of six to fourteen years in such a manner as the state may, by law, determine". The Constitution also provides for reservation of seats in certain services for Anglo-Indian community (Art. 336) and for educational grants for their benefits (Art. 337). Moreover, it provides for National Commission for Scheduled Castes (Art. 338), National Commission for Scheduled Tribes (Art. 338A) and a Commission to investigate the conditions of backward classes (Art. 340) to protect their interest and to promote their development.

IV. Assessment

Affirmative action on the part of state is required in reducing discriminatory bias prevalent in society. If any section of society suffers from "poor living" and is not in a position to avail equal opportunity to participate in the functioning of the civil society, then it becomes duty of the state to help that section. Particularly in case of India, where social structure based on caste system is characterized by what is called "graded inequality". In order to establish social justice affirmative action is required. Hence the constitution makers rightly decided to provide for it in the constitution itself and included it in the chapter dealing with fundamental rights.

However, such affirmative actions are enabling actions, which help such section of society which have been victim of discrimination in their own society but should not be treated as permanent feature. If made a permanent feature, it may prove counter productive. It may help to get a job but will not help in making a successful career which requires inter alia capability to compete with others. Such a capability can be acquired only if equal opportunity is available for all. Any idea of permanent reservation is more likely to result in confidence deficit.

Moreover, affirmative action is concerned with reservation in public services and the number of jobs in this category is limited. Comparatively more jobs are available in private sectors which demand competence and capability instead of patronage. For more competence and capability equal opportunity is more helpful than affirmative action.

The Indian perspective presents a bizarre situation. There is on one hand, a demand to continue the reservation which led to frequent constitutional amendments, but, on the other, no

sincere efforts have been made to rationalize the system to serve the interest of more needy among dalits which has led to intra-caste rivalry among them. More benefits are being cornered by the affluent section of the dalits at the cost of those who are categorized as the most backward among the dalits. It is apt to remember that the Karpoori Thakur suggestion that a percentage of jobs reserved for OBCs should exclusively be used for weaker castes among them was not accepted.

Two suggestions made from time to time are worth considering in this respect: first, an economic criterion should be applied in job reservations; second, that school education should be strengthened in order to develop capability of the weaker section of the society. Through 86th Constitutional Amendment Act of the Indian Constitution free and compulsory education has been made a fundamental right for children of the age group 6-14 years. This view should be highlighted that compulsory primary education is a pre condition for affirmative action in higher education. This may be taken as a wider concept of social justice and therefore every attempt should be made to strengthen primary education as the corner-stone of what Prof. Amartya Sen has called capability equality.

References :-

1. The Supreme Court observed in the Golakhnath case (1967) that fundamental rights are the name for what has been traditionally known as natural rights.
2. Joyti Rao Phule, Selected writings Vol. II, P.29 quoted by Gail Omvedt, Economic and Political Weekly, Aug. 2, 1997, p. 1966.
3. Dr. Baba Saheb Ambedkar, Writings and Speeches (hereafter, Writings and Speeches), Vol.3, pp 407-28.
4. Writings and Speeches, Vol.10, pp426ff.
5. Ibid. Vol. I 392ff.
6. John Rawls, A Theory of Justice. (Camb. 1971). Amartya Sen, The Idea of Justice. (Penguin, New Delhi, 2009).
7. Samuel Gorovitz, Rohn Rawls: A Theory of justice in Crespigny and Minogue, (eds.), Comtenporary Political Philosophers (Methuen & Co. Lond).
8. Amartya Sen.
9. The Madras government issued communal G.O. reserving seats for backward communities. It was challenged in court. The Supreme Court held that it was unconstitutional. Madras Vs Champakam AIR 1951 SC226.
10. The Supreme Court upheld it. Indra Sawhni Vs Union of India (1992).
11. The Supreme Court accepted it in the A R Thakur case (2005)

Empowering Women Through Skill Development

Dr. Neeraj Kumar*

Abstract :-

"You can tell the condition of a nation by looking at the status of its women"

– Pt. Jawaharlal Nehru

In today's world, women entrepreneurs are playing very vital role and they have become important part of the global business environment and it's really important for the sustained economic development and social progress. In India, though women are playing key role in the society, but still their entrepreneurial ability has not been properly tapped due to the lower status of women in the society. The main purpose of this paper is to find out the status of women entrepreneurs in India. This paper includes rationale grounds behind the women entrepreneurship. Another main purpose of this paper is to analyze policies of Indian government for women and also to analyze that are those policies adequate for the growth of women entrepreneurship. Main reasons for women to become an entrepreneur, the institutions that are serving the women to put their views into action are also included in this study. On the basis of this study some suggestions are given to encourage spirit of women entrepreneurship to become a successful entrepreneur.

What is Women Empowerment :- Women empowerment can be defined in very simple words that it is making women powerful so that they can take their own decisions regarding their lives and well being in the family and society. It is empowering women to make them able to get their real rights in the society.

Why Need of Women Empowerment in India :- As we all know that India is a male dominated country where males are dominated in every area and females are forced to be responsible for only family care and live in the home including other many restrictions. Almost 50% of the population in India is covered by the female only so the full development of the country depends on the half population means women, who are not empowered and still restricted by many social taboos. In such condition, we cannot say that our country would be a developed in the future without empowering its half population means women. If we want to make our country a developed country, first of all it is very necessary to empower women by the efforts of men, government, laws and women too.

The need of women empowerment arose because of the gender discrimination and male domination in the Indian society since ancient time. Women are being suppressed by their family members and society for many reasons. They have been targeted for many types of violence and discriminatory practices by the male members in the family and society in India and other countries as well. Wrong and old practices for the women in the society from ancient time have taken the form of well developed customs and traditions. There is a tradition of worshipping many female goddesses in India including giving honor to the women forms in the society like mother, sister, daughter, wife and other female relatives or friends. But, it does not mean that only respecting or honoring women can fulfill the need of development in the country. It needs the empowerment of the rest half population of the country in every walk of life.

***S.B.S. Govt. P.G. College Rudrapur, Kumaun University, Nainital.**

Problems in the Path of Women Entrepreneurs in India :– Women in India are faced many problems to get ahead their life in business. A few problems can be detailed as-

Socio-Cultural Barriers :– Family and personal obligations sometimes works as a great barrier for succeeding in business career of women entrepreneurship. Only few women are capable of managing both home and business efficiently, giving sufficient time to perform all their responsibilities in priority.

Training Programs :- Depending upon the needs, duration, skill and the purpose of entrepreneur there are various workshops and training programs available the social & welfare association. Such kinds of programs are really helpful to new and young entrepreneurs who desire to start a small and medium sized business on their own.

Financial Assistance :– Most of the women especially in rural areas are not aware about the financial assistance provided by various institutions. The efforts taken for women entrepreneurs may not able to reach the entrepreneurs in rural and backward areas.

In the recent years, various constitutional and legal rights have been implemented by the government of India in order to eliminate ill practices and gender discrimination against women. However, in order to solve such a big issue, the continuous effort of everyone including women is required. Modern society is being more aware about the women rights which results in the increasing number of several self-help groups, NGOs, etc working in this direction. Women are being more open minded and breaking the societal barriers in order to achieve their rights in all dimensions even after crimes are going side by side.

Some of the acts passed by the Parliament :–

Equal Remuneration Act-1976, Dowry Prohibition Act-1961, Immoral Traffic (Prevention) Act-1956, Medical termination of Pregnancy Act-1971, Maternity Benefit Act-1961, Commission of Sati (Prevention) Act-1987, Prohibition of Child Marriage Act-2006, Pre-Conception & Pre-Natal Diagnostic Techniques (Regulation and Prevention of Misuse) Act-1994, Sexual Harassment of Women at Work Place (Prevention, Protection and) Act-2013, etc in order to empower women with legal rights.

In order to provide safety to women and reduce crime against women in India, government has passed another act Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Bill, 2015 (especially after Nirbhaya case when an accused juvenile was released). This act is the replacement earlier Indian juvenile delinquency law of 2000 (Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2000) in order to reduce the juvenile age from 18 to 16 years in cases of heinous offenses.

Specific Laws for Women Empowerment in India :-

Here is the list of some specific laws which were enacted by the Parliament in order to fulfill Constitutional obligation of women empowerment:

- The Equal Remuneration Act, 1976.
- The Dowry Prohibition Act, 1961.
- The Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956.
- The Maternity Benefit Act, 1961.
- The Medical termination of Pregnancy Act, 1971.
- The Commission of Sati (Prevention) Act, 1987.
- The Prohibition of Child Marriage Act, 2006.
- The Pre-Conception & Pre-Natal Diagnostic Techniques (Regulation and Prevention of Misuse) Act, 1994.
- The Sexual Harassment of Women at Work Place (Prevention, Protection and) Act, 2013.

At present, the Government of India has over 27 schemes for women. Some of these are:

- Assistance to Rural Women in Non-Farm Development (ARWIND) schemes
- Entrepreneurial Development programme (EDPs)
- Indira Mahila Yojana
- Indira Mahila Kendra
- Integrated Rural Development Programme (IRDP)
- Khadi And Village Industries Commission (KVIC)
- Management Development progammes
- Women's Development Corporations (WDCs)
- Marketing of Non-Farm Products of Rural Women (MAHIMA)
- Mahila Vikas Nidhi
- Mahila Samiti Yojana
- Micro Credit Scheme
- Micro & Small Enterprises Cluster Development Programmes (MSE-CDP).
- Prime Minister's Rojgar Yojana (PMRY)
- Rashtriya Mahila Kosh
- Rajiv Gandhi Mahila Vikas Pariyojana (RGMVP)
- SIDBI's Mahila Udyam Nidhi
- SBI's Stree Shakti Scheme
- Trade Related Entrepreneurship Assistance and Development (TREAD)
- Working Women's Forum
- Training of Rural Youth for Self-Employment (TRYSEM)

Conclusion :- In order to really bring women empowerment in the Indian society, it needs to understand and eliminate the main cause of the ill practices against women which are patriarchal and male dominated system of the society. It needs to be open-minded and change the old mind set against women together with the constitutional and other legal provisions.

- Empowerment of women is necessary for socio-economic development.
- Increasing literacy rate among women helps in better development of children.
- Given the opportunities women can excel themselves.
- Gender equality has to be established as a crosscutting issue in international development.

Let us try to eradicate all kinds of gender bias and thus allow **'women'** to be a great entrepreneur at par with men.

References :-

1. Singh Kamala. :(1992), Women entrepreneurs, Ashish publishing house, New Delhi
2. Gordon E. & Natarajan K.: (2007) entrepreneurship development – Himalaya 300 publication house, second revised edition.
3. Baporikar, N. :(2007) entrepreneurship development & project management- Himalaya publication house.
4. http://www.internationalseminar.org/XV_AIS/TS%203/6.%20Mr.%20Amit%20kumar
5. https://mygov.in/task/**women-**empowerment-through-**skill-development**/

Pedagogy for Inclusion: A quest for academic success in higher Education

Alokita Vishal*

Pathloth Omkar**

Ankita Vishal***

Abstract :- Developing inclusive practice demands a welcoming disposition towards diversity, an understanding of learning as a creation of meaning and an assumption that each one pupil is inherently competent. Just as the human species is diverse, the curricula, teaching practices and learning situations must mirror that diversity, instead of expecting pupils to assimilate to existing educational institution and subject structures. Teaching for equity, using teaching practices that presume diversity from the start and building on pupil resources are often considered simply nearly as good teaching for all. Students with disabilities have not been fully welcomed in higher learning Institutions. In our society two things are happening, there are two side of growth one side there is positive growth in increase in number of college and universities, availability of different modes of education, technology etc. and another side growing the inequalities, segregation, isolation, exclusion with students with disabilities. Inclusion is fundamentally grounded in the ideologies of social justice, democracy, human rights and full participation of all. Student success is measured by retention, academic achievement, and on-time graduation. This research study examined how student success was impacted by a student's registration with the campus disability office, use of accommodations, and use of institutional and social support systems. This study explored a new frontier of research that dispels the myth that students with disabilities are a homogenous group. The results of this study can be used to increase knowledge regarding students with disabilities and their success in higher education.

Keywords :- Pedagogy, Inclusion, Students with Disabilities, Higher Education, Support Services, Registration, Accessibility

Introduction :- In India Children with special needs educational responsibility falls under Ministry of Social Justice and Empowerment and the ministry of social justice and empowerment coordinate with all other ministries for their education and employment. Here the segregation starts between normal students and students with disabilities in the institutions of higher learning, where the institutions need to promote all the students equally, the equality is ingrained everywhere, however it is not reflected fully in the teaching learning of students with disabilities. Most of the time institutions are focusing on social and economic inclusion rather than pedagogical inclusion. Student without disabilities are facing the challenges in the transition of high school to college and then a student who are disabled facing double challenge in accessing higher learning institution one side poverty and other side disability is dismantling the capacities of them. Student with disability overlooked in their institution and overcome during this transition, contributing to an achievement gap for these students. There are very few special learning institutions are available in India, which are not enough in catering the needs of students with disability. So the need of inclusive learning institution with inclusive pedagogy is important. This concept reduces the segregation among students when students with disability learn together with student without disability. It reduces the social, economic, cultural and physical barrier.

***Research Scholar, Department of Educational Studies, School of Education, Mahatma Gandhi Central University, East Champaran, Bihar-845 401.**

****Ph.D. Assistant Professor, Department of Educational Studies School of Education, Mahatma Gandhi Central University, Motihari, East Champaran, Bihar-845401**

*****Assistant Professor, Department of Education, Patna University, Patna, Bihar- 800001**

Inclusive practice is being created in classrooms and schools all around the world. However, while schools have separate provision for pupils supported their abilities and therefore the teacher education prepares pupil teachers accordingly, subject teachers are often not educated for inclusive practice and are challenged to transfer the overall recommendations to their practice. General and subject teachers reported that they are doing not the preparation or skills needed to show diverse groups of pupils in inclusive settings (Forlin, 2001; OECD, 2009). This is not something teachers devour from a ready-made manual; rather it's practice that's continuously being developed, as they're responsive towards new pupils, a new class or group of pupils, to the event of pupils and changes in classroom dynamics and new structures.

Inclusive practice happens in the subjects (see Abels & Markic in this book). Science education is vital for everybody and thus it's critical to develop equitable opportunities for pupils from different groups in order that they are able to do and progress within the subject (Boaler, Altendorff, & Kent, 2011; Smith & Leonard, 2005). Traditionally science teaching has been an elite subject; it systematically disadvantages pupils by ethnicity, class and gender; it's skewed within the way it appeals to pupils and provides opportunities; and it produces sharp inequalities that characterize science achievement and participation (Boaler et al., 2011).

The inclusion movement challenges teachers to research their values and beliefs, to review their understandings of teaching, learning, curriculum, and to reinvent their roles as participants in class change. Instead of relegating pupils who don't meet school or classroom requirements (or who otherwise don't fit in) to separate settings, school practices can adapt, improve or create educational environments to deal with pupils' (Guðjónsdóttir and Óskarsdóttir, 2016)

Taking on the challenge of inclusion entails that each one teachers take the initiative to manoeuvre out of their temperature, risking uncertainty while they're exploring new or alternative ways of working, planning and organizing. Seeking collaboration with colleagues to solve the problem, debate and celebrate success, where each contributes through individual strengths and interests will support teachers in this endeavour. The efforts to develop inclusive practice are going to be rewarded with simpler classrooms which will reach and have interaction a broad spectrum of pupils in an equitable way.

Inclusive Pedagogy in Higher Learning Institution :- Pedagogy is an art and science of teaching and inclusive pedagogy provide opportunity to all learners learn together. Pedagogy is that the act of teaching and therefore the ideas, values and beliefs informing, sustaining and justifying that act. In the educational literature the term pedagogy appears to explain the disparate and complex issues of the teaching profession. Three main uses of the term 'pedagogy' can be found in the literature; these are (a) to cover teaching methods, curricula and instructional programs; (b) as an all-embracing term for education in poststructuralist thought; and (c) to precise and address moral education and discourse about teaching and learning (Bruner, 1996). A fundamental statement in the inclusive pedagogy approach is based on rejecting ability labelling as a deterministic notion of fixed ability that has historically underpinned the structure of education (Florian & Spratt, 2013). Therefore, inclusive pedagogy is especially aimed toward accepting practices that represent provision for many with additional or different experiences for a few , because the very act of that specialize in difference strengthens the isolation and marginalization of children and adds to the social construction of disability (Grenier, 2010).

Student's registration with the campus disability office :- Students with disabilities enrolment provide them better chance to get self-reliant or make them independent for smooth functioning of their life. If the academic enrolments get increased then they get more and more chance of education and education is the single tool which helps them in employment and upliftment of life condition. Inclusive pedagogy supports the academic achievements of students with disabilities. Registrations with campus disability office provide many governments and institutional benefits which facilitate their education and retentions. Benefits of registration are in academic like provision of scholarship for them, accommodation facility, relaxation in fees, and relaxation of age in taking admission and also in employment.

Myth students with disabilities are a homogenous group :- In normal school setting generally a similar pedagogy are using and all the student with disabilities are treating equally. But every student with disability

has their own ability, disability, potentials, capacity and motivation. Now it is a time to overcome with the myth they are belong from homogeneous group. Here is need to give equal appreciation and respect to each and every students ability and for this implement inclusive pedagogy which supports to explore their potentialities and also help in reaching highest academic achievement.

Key Areas which supports in the implementation of inclusive pedagogy :- These following areas as important for the development of inclusive pedagogy and practices in higher learning institutions:

- an emphasis on students interest and motivation,
- focus on the classroom environment for diverse groups of pupils,
- adaptation of appropriate strategies for designing curricula and teaching, and
- Collaboration with colleagues and parents for better performance (Ferguson, 2008).

These areas are often arranged by the phases teachers undergo as they prepare, teach and collaborate.

Teaching :- When a teacher use Inclusive pedagogy it's provide equal opportunity to all the students equal participation in classroom interaction and promote their participation in exploring the different knowledge domain. Here learning is a descendant of constructivist learning theories that have defined learning as an "active process in which learners are active sense makers who seek to build coherent and organized knowledge" (Mayer, 2004, p. 14). Strategies are described as emphasizing responsibility and activity on the part of the pupils where they're intrinsically motivated in learning and moving far away from that specialize in the books or the teacher. Through a variety of approaches and technology, the teacher can make the curriculum more captivating and meaningful for pupils in order that they're active agents in their own learning. Common features of pupil-centred teaching approaches include that knowledge is made instead of received, there's emphasis on both individualized work and group processes, learning and assessment are often performed in various ways, pupils are liable for their learning, and therefore the teacher acts as a facilitator creating a framework for pupils to figure within. Following a constructivist viewpoint, the main aim is that pupils are active sense-makers and learning to learn in a sustainable fashion. In reality, pupils are not expected to learn the same, with same speed, or employ the same approach (Wolfe, Steinberg, & Hoffman, 2013).

Universal Design of Learning (UDL) may be a strategy that teachers can use for getting to ensure pupil-centred learning and to make learning opportunities for a various group of pupils (Kurtts, Matthews, & Smallwood, 2009). Traditionally a curriculum is meant with certain pupils in mind, which builds barriers because it excludes others who will then need something different or added to be ready to cope. UDL, however, is a form of inclusive practice that refers to the way instructional material and activities are designed to make content accessible for all pupils and maximise their learning (Rose & Meyer, 2006). Mainly UDL is based on research of the brain, cognitive-social learning theories and ideas of multiple intelligences and learning preferences. One of the most features of UDL is that the curriculum is meant to stress the top product: what the pupil is ultimately alleged to know, be ready to do or understand after having skilled the method. UDL is said to the architectural and style concept of Universal Design (UD) that's oriented towards developing buildings, outdoor spaces, products and devices that assume diversity from the design stage (Hall, Meyer, & Rose, 2012). The common goal of UD and UDL is to design and create with diverse individuals in mind, rather than adding on or refitting later based on individual differences.

Collaborating :- The main area we would like to address concerning the development of inclusive practice is collaboration. Researchers have reported that collaboration is a crucial factor for inclusive schools to become it in reality (Guðjónsdóttir, 2000; Meijer, 2003). Thereby, maintaining that collaboration among teachers, administrators, other professionals, staff, parents and community is one among the key factors for developing education that accommodates for all. Here collaboration refers to how practitioners and others interact and work cooperatively to accomplish a task or series of tasks in and for various situations (Friend, Cook, Hurley-Chamberlain, & Shamberger, 2010). Collegiality refers to the connection between colleagues with a standard purpose where respect and support are practiced. However, collaboration is mostly based on homogeneity and difference is viewed as a problem rather than a resource (Lambert, Collay, Dietz, Kent, & Richert, 1996; Richert, 1997). Most of the time group practice are often 'contrived' and imposed by

authority within a context of hierarchical power and role relationships instead of as aware of questions arising within authentic practice (Hargreaves, 1994). Collaboration and collegiality usually happen during a certain context of a faculty where collaborative actions and collegial relations establish important working conditions for teachers and influence the professional development of teachers and schools (Kelchtermans, 2006). The culture of the varsity and therefore the working conditions regulate and arbitrate teacher collaboration, but also how staff experience and value collegiality.

Conclusion :- The implementation and promotion of Inclusive pedagogy provide a wide range of opportunities to student with disability to get involved in academics and also get chance to make high their academic achievements. Sky has no limit and every person has unique qualities when they get chances to fly and meet with flying colours of their life then defiantly it get possible. Scholastic and co- scholastic development are also possible for students with disability and they also get opportunities to explore their creativities and hidden talent in the forms of art, music, engineering, architect, educationalist, social reformer etc.

References :-

1. Boaler, J., Altendorff, L. & Kent, G. (2011). Mathematics and science inequalities in the United Kingdom: when elitism, sexism and culture collide. *Oxford Review of Education*,*37*(4),457-484. https://bhi61nm2cr3mkdgk1dtaov18-wpengine.netdna-ssl.com/wp-content/uploads/ORE2011final31-3.pdf
2. Bruner, J. S. (1996). *The culture of education.* Cambridge, MA: Harvard University Press. https://www.researchgate.net/publication/259791720_The_Culture_of_Education_by_Jerome_Bruner/link/5ac2594ca6fdcccda65f788f/download
3. Ferguson, D. L. (2008). International trends in inclusive education: the continuing challenge to teach each one and everyone. *European Journal of Special Needs Education*, *23*(2), 109-120. https://doi.org/10.1080/08856250801946236
4. Florian, L. & Spratt, J. (2013). Enacting inclusion: a framework for interrogating inclusive practice. *European Journal of Special Needs Education*, *28*(2), 119-135. http://dx.doi.org/10.1080/08856257.2013.778111
5. Friend, M., Cook, L., Hurley-Chamberlain, D. & Shamberger, C. (2010). Co-teaching: An illustration of the complexity of collaboration in special education. *Journal of Educational and Psychological Consultation*, *20*(1), 9-27. https://doi.org/10.1080/10474410903535380
6. Forlin, C. (2001). Inclusion: identifying potential stressors for regular class teachers. *Educational Research*, *43*(3), 235-245. https://psycnet.apa.org/doi/10.1080/00131880110081017
7. Grenier, M. (2010). Moving to inclusion: a socio-cultural analysis of practice. *International Journal of Inclusive Education*, *14*(4), 387-400. https://doi.org/10.1080/13603110802504598
8. Guðjónsdóttir, H. (2000). *Responsive professional practice: teachers analyze the theoretical and ethical dimensions of their work in diverse classrooms*. Unpublished dissertation. University of Oregon, Eugene. https://www.proquest.com/openview/7badff2fa503b2bd2ad5e5c76a4d2091/1?pq-origsite=gscholar&cbl=18750&diss=y
9. Guðjónsdóttir, H., & Óskarsdóttir, E. (2016). Inclusive education, pedagogy and practice. *Science Education towards Inclusion*, 7-22. file:///C:/Users/Alokita%20Vishal/Downloads/INCLUSIVE_EDUCATION _PEDAGOGY _AND_PRACTIC.pdf
10. Hall, T. E., Meyer, A. & Rose, D. H. (2012). *Universal design for learning in the classroom : practical applications.* New York: Guilford Press. https://www.guilford.com/excerpts/hall3_ch1.pdf?t
11. Hargreaves, A. (1994). *Changing teachers, changing times: teachers' work and culture in the postmodern age.* New York: Teachers College Press. https://books.google.co.in/books
12. Kelchtermans, G. (2006). Teacher collaboration and collegiality as workplace conditions. A review. *Zeitschrift für Pädagogik*, *52*(2), 220-237. DOI: 10.25656/01:4454
13. Kurtts, S. A., Matthews, C. E. & Smallwood, T. (2009). (Dis)Solving the differences. *Intervention in School and Clinic*, *44*(3), 151-159. https://doi.org/10.1177%2F1053451208326051
14. Lambert, L., Collay, M., Dietz, M., Kent, K. & Richert, A. (1996). *Who will save our schools? Teachers as constructivist leaders.* Thousand Oaks, CA: Corwin. https://eric.ed.gov/?id=ED403240
15. Mayer, R. E. (2004). Should there be a three-strikes rule against pure discovery learning? *American Psychologist*, *59*(1), 14-19. https://psycnet.apa.org/doi/10.1037/0003-066X.59.1.14
16. OECD, (2009). *Creating effective teaching and learning environments: First results from TALIS.* Paris: OECD. https://www.oecd.org/education/school/50456114.pdf
17. Rose, D. H. & Meyer, A. (2006). *A practical reader in universal design for learning.* Cambridge, MA: Harvard Education Press. https://eric.ed.gov/?id=ED515447
18. Smith, R. & Leonard, P. (2005). Collaboration for inclusion: Practitioner perspectives. *Equity & Excellence in Education*, *38*(4), 269-279. https://doi.org/10.1080/10665680500299650
19. Wolfe, R. E., Steinberg, A. & Hoffman, N. (2013). *Anytime, anywhere: student-centered learning for schools and teachers*. Cambridge, MA: Harvard Education Press. https://books.google.co.in/books

Role of self-help groups in rural empowerment

(A Review study with special reference to Uttarakhand)

Dr. Reenu Rani Mishra*

Abstract - The success of any country depends on their rural development; now, every country has realized that it is the specific way through which they can grow their basic economy. Rural development of any country is as needed as their necessary action is required. Many of the resources which are critical to the growth & development of the country came from rural areas. Uttarakhand state has more rural hilly areas where rural development is needed. Rural development is connected with rural empowerment & for this, many of the social groups working in the village area for empowering the rural people & these groups are SHG (self-help group). In the last few years, SHG (self-help group) is becoming active in the village area. This research paper aims to determine the impact of SHG (self-help group) in rural empowerment & development. This SHG (self-help group) help rural people to empower their self & support them to make a better future for India.

Keywords – Rural Empowerment, SHG (Self-help group), rural development.

Introduction – Since the five-year plan of the Indian economy has begun. Government is now more focused on rural development because the rural part of the country is the backbone of any country & to develop rural areas. The government has made some special groups to strengthen their economic status. For the last few years, SHG (self-help group is contributing a significant role in rural development. SHG (self-help group) gives the right direction to all the rural people, especially to the women of rural areas & abolish poverty in rural & urban areas. Many people in rural areas are not strongly financial enough to live their life efficiently since when the five-year plan has begun, the government made a plan to improve various sectors of the economy. Development has started from agriculture area & growing with the 800 million tons in the year 20017-18 & increasing growth for 7-8% in the industrial sector annually. Former Prime Minister Jawaharlal Nehru said about rural women that all rural women play a significant role in the nation's development. Also, the mahatma Gandhi, father of the country, said that the nation's development is live in villages, so we have to develop our rural areas of the nations to improve our countries' economies quickly. A woman is a vital part of every family, so empowering the women or growth of the women is needed not only for the family but also for society & for the nation. As per the population census, 2011 Today's women need more economic freedom as we all knew that many of the women in our country are working in top positions like – IAS, RAS, professor, Teacher, bank manager etc. this is the present condition of urban women of our nation. However, the rural women of our country are changed. They are still facing various problems, so the growth of these rural women is needed for the nation. SHG (self-help group) is helping them to improve their confidence, self-respect & their economic status.

Review of literature –

- Dr L. Thara Bhai, C. Karuppiah and B. Geetha. (2020) defined the social mobility of rural women. Also identified the societal norms & regulations for the women.
- Kant K. (2020) has explained the role of rural credit in the development of Rural Areas. The banks and other financial institutions play an important role in the development of rural areas. Although the commercial banks face a lot of issues in rural banking like high cost of operation. Still its needed to develop the rural India.
- Dr J. Sunder & R. Asokan (2018) focused on the women development approach & their thinking about joining SHG (self-help group) & increase their income status & also the level of confidence with this.

***Associate Professor, Department of Economics, S.B.S. Government (P.G) College Rudrapur, (Udham Singh Nagar) Uttarakhand,263153**

- Kim Wilson (2019) identified that who could do rural development with the support of CRS & CCK group these groups are related to SHG (self-help group), which works for rural people & also for their upliftment & their development.
- Erhard, W Kropp, Dr B. S. Suran (2012) –study shows the linkage between SHG (Self-help group) & banking finance study also discussed the involvement of stakeholders in SHG (Self-help group).
- Priya (2006), in their study, define the means of various schemes for rural people. & how it is applicable for rural people, the study also determined that SHGs help in implementing the various government social schemes which are designed for up- liftmen of rural people
- Dasgupta (2000), Emphasis on the working pattern of SHG (Self-help group), how SHG (self-help group) is working for rural people, how it is beneficial for them in from of loan, credit structure, money-saving, education of girl child, education of rural people. Also focused on the positive effect of SHG in rural development & it is the best means to finance rural people for their improvement in minimal interest charges.
- Rasure K.A (2004), this article shows women's empowerment through SHG (self-help group). It is Emphasis that SHG plays a significant role to empower the women of rural areas to work at home & to convince them that they can earn money through this without investing lots of money & effort. The study also motivates rural people to save money, which will help them become curious about the future.
- Silvia (2004) studies the participation of women in SHG (self-help group) & how self-help groups improve the level of standard rural people. SHG self-help group increases the ability of rural people, increases the people's income, and creates awareness towards money saving.
- Jaya (2002), in her paper "Role of SHG (Self Help groups) in empowering of rural women - A study of selected SHGs. in today's scenario, self-help groups are giving opportunities to the rural people & also creating awareness to the rural people towards the drawbacks of the local loan company.
- Nedumaran et al. (2001) conducted a study on how SHGs (self-help groups) work in Tamil Nadu. The study compared the two situations, the condition of rural people or rural women before the SHG (self-help group) applied & the situation after SHG (self-help group) in the village area. This study also focused on how SHG (self-help group) improve the condition of rural people.

SHG (self-help group) – NGO invents a self-help group (non-government organization) that aims to improve rural people's poverty level. Empowered rural people for education, nutritional foods, women empowerment, girls education, purchase some assets like agricultural instruments & also about family planning so they can improve the family's financial condition. Group of 10 – 20 members collectively join together to save a small amount of money & giving the loan to needy or poor people with low-interest charges. This group is somehow connected with micro-financial institutions. These groups also help poor or illiterate women to encourage them to improve their lifestyle give them an economic base for their betterment.

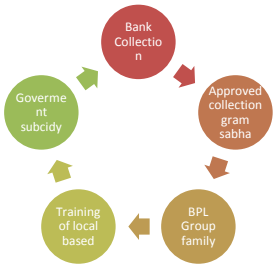

Figure: SHG (self-help group) mechanism

Importance / Need of SHG (self-help group) in rural development – 1.3 billion people around the globe live on the poverty line. Seventy per cent of them are women. For these rural poor people,

poverty does not mean need & scarcity. It means freedom, rights, opportunities for them. So they can live with self-respect, without any dependence. Rural people are not healthy financial enough for purchasing their agricultural assets, educate their girl children. Hence, they need these kinds of groups that help them to improve their economic status. So they can independently earn money without the dependence of any money lender. Due to the illiteracy of rural people money lender charges more interest on borrowed money & this create mental pressure on them sometimes they get suicide due to this mental pressure. Hence, SHG helps them reduce the mental stress of rural people & motivate them to think of new ideas & new employment for them.

Nobel Laureate Amartya Sen. (1993) explains that freedom is to do something without any pressure; according to him, space can do anything in their life without any dependence. The capability of any person depends on self-respect, self-esteem & the characteristics of any person.

Malhotra (2018) defined the various dimensions of women empowerment, which multiple authors already describe, determined that women empowerment have multiple sizes like social, economic, political & psychological dimensions.

Krishna (2019) defined how empowerment or rural development helps rural people to live happily & transform their life. It is by nature a process & outcome.

Uttarakhand - Need of SHG (self-help group) in rural development - Uttarakhand is the 27th State of India; in comparison to other states, Uttarakhand has a 53,483 square km area with a 189 per Sq.km density. The entire district in Uttarakhand is 13, which is divided into Kumaun & Garhwal division.

The Kumaun division has six, and the Garhwal division has seven districts. Details of the division-wise numbers of communities in the State are presented in the below.

- **Kumaun Division –** Almora, Bageshwar, Champawat, Nainital, Pithoragarh and Udham Singh Nagar.
- **Garhwal Division -** Dehradun, Haridwar, Chamoli, Rudraprayag, Tehri Garhwal, Uttarkashi, and Pauri.

All 13 divisions of Uttarakhand district divided into three major zones - upper hills, middle hills & foothills.

- **Upper hills—** Uttarkashi, Chamoli, Rudraprayag, Pithoragarh and Bageshwar.
- **Middle hills —** Tehri-Garhwal, Garhwal, Almora, and Champawat, the hill regions of Nainital and Chakrata tehsil of Dehradun.
- **Foothills —**the remaining area of Dehradun, Haridwar, Udham Singh Nagar and the remaining area of Nainital.

In all the hilly areas of Uttarakhand, SHG (self-help group) is working & giving employment to the rural people, especially rural women. All the members of this group identify the potential of rural people & boost their economic status & encourage them. These areas are not well financially enough & SHG (self- help group) is involved in various small activities like – Prasad making, Pooja material, all the agricultural products seeds packing etc. This table shows the difference between the population of the rural area & the urban area of the Uttarakhand district; it also indicates how much SHG (self-help group) is needed for Uttarakhand rural people. Especially for rural women, SHG (self-help group) is working in the hilly area of Uttarakhand. Some government organizations like NGOs also help the SHG self-help group) to encourage rural people.

S. N.	Particulars	Year-2001	Year-2011	Percentage of the rural population	The population of urban population
1.	No. of district	13	13		
2.	No. of Sub-district	49	78		
3.	No. of Town	86	116		

4.	No. of statutory Town	74	74		
5.	No. of census Town	11	41	2001 – 25.67 2011 – 30.55	2001- 74.33 2011- 69.45
6.	No. of villages	16,826	16,793		
Population		**Total**	**Rural**	**Urban**	
Persons		1011672	70725583	3091169	
Male		5154178	3512456	1641722	
Female		4962574	3513127	1449447	

7.	Decadal population growth 2001-2011	Absolute			Percentage		Total Percentage
		Total	Rural	Urban	Rural	Urban	
	Person	1627403	715308	912095	11.34	41.86	19.17
	Male	828254	367866	460388	11.7	38.97	19.14
	Female	799149	347442	451707	10.98	45.27	19.19
8.	Sex Ration (Female per 1000 males)	963	1000 883				

9.	Literates	Absolute			Literacy Rate		Total Literacy Rate
		Total	Rural	Urban	Rural	Urban	
	Person	6997433	4670901	2326532	77.11	85.20	79.33
	Male	3930174	2629745	1300429	87.62	89.78	88.33
	Female	3067259	2041156	1026103	66.79	80.02	70.70

Source – Census of India 2011 – Provisional population totals – Rural & Urban areas

SHG (self-help group) working in Uttarakhand – Uttarakhand is one of the hilly areas where development is working through SHG (self-help group). According to the sericulture information linkages and knowledge system report, total 123 self-help group is presently working for the development of rural women & for rural people. In all these SHG (Self-help groups) minimum of 11 members are working together. Many of the SHG (self-help group) is connected with silkworms & their's rearing, cloth making, thread making, plantation. Seeds packing etc.

Name of SHG (self-help group) working in Uttarakhand –

1. Ahilya Devi Sewa Sansthan
2. Akhanda Yoga Dham Trust
3. Akhil Bhartiya Pal Baghel Holkar Welfare Samiti
4. Akhil Bhartiya Vikas Parishad
5. Akhil Garhwal Sabha
6. Anand Vikas Society
7. Aas Society
8. Aastha Swasthya Paryavan Avam Vikas Samiti
9. Abc Foundation
10. Adarsh Sewa Sanstha
11. Adarsh Kalyan Samiti
12. Gram Swarajya Mandal
13. Kripal Shikshan Sansthan
14. Sanskar Sewa Samiti

In the below table, we will find the total number of SHG (self-help groups) district wise currently working in Uttarakhand.

S.No.	District Name	Total no of SHGs	SC	ST	Minority	Others	Total numbers
1.	Almora	1980	3494	7	51	9292	12844
2.	Bageshwar	761	1838	49		3070	4957
3.	Chamoli	3024	3863	813	96	15602	20374
4.	Champawat	1139	2018	49	85	6120	8272
5.	Dehradun	2625	4232	1852	2722	16668	25474

6.	Haridwar	3181	15830	177	4791	13632	34430
7.	Nainital	3346	8001	160	642	16201	25004
8.	Pauri Garhwal	4212	5129	35	267	21626	27057
9.	Pithoragarh	1994	4534	1422	14	6817	12787
10.	Rudra Prayag	1072	1069	3	49	5936	7059

Source – Designed, hosted & maintained by national informatics centre, content provided and maintained by the ministry of rural development, Government of India

From this table, we can quickly identify the number of SHG (Self-help groups) for SC, ST, Minority & others.

Challenges faced by SHG (self-help group) in Uttarakhand – The table which we have discussed in the previous topic the total number of SHG (self-help group) from this table we can quickly identify the problems that the members face to convince them to join this group.

1. Lack of Financial support from the government.
2. Lack of training facilities.
3. Lack of education.
4. Lack of interest of rural people.
5. Inadequate supply with raw material.
6. Lack of interest of rural women.
7. Lack of management.
8. Inadequate promotional strategies of government.
9. Physical & Mentally exploitation sometimes creates a problem for rural people, especially for rural women.
10. Possibility of low return
11. Ignorance of rural people towards SHG (self-help group).
12. Misbehave of the local moneylender.
13. Unity among rural people, especially among rural women.

Advantage of SHG (self-help group) for rural people –

1. **Economic Strength** - Poor rural people can improve their financial strength as a part of the SHG group.
2. **Gain Literacy level** - Rural family's can quickly educate their girl child with the help of these groups. So that girl child can soon get a job or can do their work.
3. **Living style** - Rural people can quickly improve their living style or standard with the help of these groups like- way of talking, living etc.
4. **Motivate Rural People** - Encourage rural people to employ themselves in different areas**.** Encourage them to start their work with the help of SHG (self-help group).
5. **Financial Crisis -** Rural people can quickly get their loan in any financial crisis condition like – low rainfall because farmers are dependent on rainfall, lack agricultural subsidies.
6. **Formal & informal credit sources** - SHG reduce the Gap between formal & informal credit sources like there are many local money lenders are available & they always ready to give money to rural people in high-interest rate.
7. **Decision Making** – Rural people can easily participate in decision making in the family. After knowing about money investing or a better education system, they can easily make their family decision better.
8. **Encourage Girl child / Rural Women** - Motivate girl children to live an independent life without any outer or inner pressure, educating them to take their own decision.
9. **Banking Literacy** - Help them to know about banking systems & services.

Conclusion –SHG (self-help group) is now playing a vital role in the economic development of rural people & government also taking active participation in this through various microfinance schemes & income-generating schemes. Uttarakhand is the State where many of the people are living in rural areas & dependent on agriculture & also reliant on local money lenders. For them, SHG (self-help group)

plays a significant role. According to the study, it is justified that SHG (self-help group) empower the self-respect & confidence of rural women & helping rural people to earn money & save it & invest in further development. Many SHG (self-help groups) working in Uttarakhand in various areas like – agriculture, animal husbandry, education, child labour. Human rights, Art & culture etc.

Suggestions – Following suggestions have been made for the rural development:

1. SHGs should focus on rural development & also the development of rural people;
2. Rural people should know about government activities.
3. Anganwadi teachers & SHG members should convince rural people to join SHGs.
4. Government should continuously provide funds to SHGs for educating the children's. & help to empower rural people
5. Government should organize a motivational speech programme for rural people to know about SHGs activities.

References -

- Dasgupta, R. An informal journey through SHGs. Indian journal &agricultural economics 56 (3) (2001).
- Dr L. Thara Bhai, C. Karuppiah and B. Geetha. (2020)*25 'Study on Social Mobility of Women in Madurai, Theni and Sivaganga districts of Tamilnadu.'
- Dr.Erhard Kropp, Dr.B.S. Suran- Linking Banks and Self Help Groups in India- An Assessment, Micro Credit Innovation Department, NABARD, Mumbai
- Kabeer, Naila (2005). Is Microfinance a 'Magic Bullet' for Women's Empowerment? Analysis of Findings from South Asia. *Economic and Political Weekly*. 40 (44/45): 4709–718. ISSN 0012-9976. JSTOR 4417357.
- KANT, K. (2020). Rural banking in India. In *Rural Development In India: A Socio-Economic View* (1st ed., pp. 27-38). Eureka Publications. Retrieved from https://www.researchgate.net/profile/Kamal-Kant 5/publication/344202736_RURAL_BANKING_IN_INDIA/links/5f5b4eee299bf1d43cf9a8d8/RURAL-BANKING-IN-INDIA.pdf
- Kim Wlison (2019) The self-help group bank linkage programme in preventing Rural Emergencies in India, Microcredit Innovations Department, NABARD, Mumbai.
- Krishna. (2019). Measuring Women's Empowerment: Learning from Cross-National Research. In D. Narayan (Ed.), Measuring Empowerment: Cross-Disciplinary Perspectives,89–102. Washington, DC: The World Bank.
- Mahlotra (2018). Promotion of Self Helps Groups under the SHG Bank Linkage Program in India. Paper presented at the Seminar on SHG-bank Linkage Programme at New Delhi, November 25-26, 2002.
- Nedumaran, S., Palanisami, K. and Swaminathan, L.P. Performance and Impact of Self Help Groups in Tamil Nadu. Indian Journal of Agricultural Economics 56 (3) (2001)
- Rasure, K.A. Women Empowerment through-SHG. Facts for you (2002) 40-42.
- Reserve Bank of India, Archived 2008-05-12 at the Wayback Machine
- Sen, A. (1993). Testing the Tools of Development: Credit Programmes, Loan Involvement and Women's Empowerment. World Development, 26(3), 56-68.
- Sunder, J.& Asokan, R. (2018). Regional Variation in Performance of Self Help Groups.

Web sites –

- https://brainly.in/question/5084534
- https://www.censusindia.gov.in/2011-prov-results/paper2/data_files/uttrakhand/4-fig-uttra-2.pdf
- https://www.civilserviceindia.com/subject/General-Studies/notes/role-of-SHGs.htm
- https://www.drishtiias.com/to-the-points/Paper2/self-help-groups-shgs
- https://www.topperlearning.com/answer/bring-out-the-importance-of-self-help-groups-in-rural-areas/j1fnj8ss
- https://www.ukhfws.org/details.php?pgID=mi_15
- https://www.yourarticlelibrary.com/india-2/self-help-group/problems-faced-by-shgs-and-suggestion-to- minimize-it/66720
- https://nrlm.gov.in/shgReport.do?methodName=showShgReportForDistrict&encd=35&stateName=UTTAR AKHAND&reqtrack=NRcFIV0gTFlpXrciVeUuSyaay

Comparative Study of Levels of Aspirations in University Students of Different Social Groups and Sexes

Aishwarya Prakash*

Anita Singh**

Anuradha Rai***

Abstract :- *Level of aspiration is very important factor which affects the achievement of the students , Studies have established that affiliation to particular social groups or belonging to a particular sex can also have deep impacts on the level of aspiration of individuals. In this context, the study aims at measuring the levels of aspirations of first year graduation students of a central university and at determining whether there exists any significant difference between levels of aspiration of students belonging to different social groups i.e. the general, the O.B.C. and the S.C./S.T. category and in students belonging to the two different sexes i.e. the male and the female. The obtained results showed that while there was no significant difference in aspiration levels of students from different social groups, the difference in aspirations of students from different sexes was significant.*

Introduction :- *The word aspiration can be defined as "a desire or ambition to achieve something" (Oxford English Dictionary 1989). The word thus signifies some aim or target and a desire or wish to attain it. The meaning also suggests, rather implicitly, that some effort would be exerted to realize the desired aim. Elaborating further we may state that, aspirations combine or summarize the preferences maintained, the beliefs held, and possibly the constraints acknowledged by an individual about aspects of the future. The key implication is that aspirations can influence an individual's future-regarding behavior.*

Aspirations are multidimensional and many-faceted. They might either be complementary or may substitute each other, are usually formed though social interaction and differ from one society to another. Aspirations can also reflect the extent to which poor people feel that they have control over their future (Bernard, Taffisse and Dercon, 2008: 10). Ray (2003) uses the term 'aspirations' to refer to the 'social grounding of individual desires' (Ray, 2003: 1). Sometimes these low aspirations can lead to underachievement. When this occurs, it is known as an aspiration failure. An aspiration trap occurs when these aspiration failures contribute to persistent underachievement and persistently low future aspirations, perpetuating a negative cycle. As aspirations are socially determined, and hence understanding how failure of aspirations happens requires a careful analysis of societies and cultures. Appadurai (2004) explains that in a connected society, for example, it is 'more possible' to achieve aspirations, while in a polarized society, there are no 'linkages' between the rich and the poor, thus rendering it difficult for poor people to achieve their aspirations.

Polarizations in a society can be on a number of grounds. Existence of different social groups within one society is another important factor that can lead to polarization and social alienation. Numerous have shown that there exists significant level of difference between the aspiration levels of individuals belonging to different racial communities.

---

*Research Scholar, Centre for Development Studies (J.N.U.) Thiruvananthapuram.

** Associate Professor, Harish Chandra P.G. College, Varanasi.

***Associate Professor, Harish Chandra P.G. College, Varanasi.

Boyd (1952) points out that there is significant difference between levels of aspiration of white and black children in the United States. El-Mafaalani (2012) finds that teachers, who can counsel parents about which track to choose, often express pessimism about the higher education potential of students from migrant backgrounds. This frequently leads to migrant parents placing their children on the shorter, technical track. Alsop and others (2006 : 12) report that "women and minority groups frequently underinvest in their human capital because they have been brought up to believe that they cannot do certain things that other people can do. They internalize their second class status in ways that cause them to make choices that perpetuate their disempowered status. More privileged people, by contrast, tend to be more optimistic—and even upwardly biased—about their capacities. As Wilkinson and Pickett (2010 : 40) put it, "the further up the social ladder you are, the more help the world seems to give you in keeping the self-doubts at bay." Dercon and Singh (2013) use data from Ethiopia and India to make important observations. They find that parents tend to have higher aspirations for boys than for girls. Over time, as the children became older, they too assimilate the respective aspirations of their parents. The study found that, eventually, the educational levels of boys and girls reflected these aspirations, with boys attaining higher levels of education. This goes a long way into proving that affiliation to a particular social group has deep impacts on individuals' aspirations

An individual's cognitive window can limit the effect of role models and hence lead to failure of aspirations. An important experience that can help individuals widen their aspiration window is exposure to education. Specially, the opportunity to attain higher education can help individuals broaden their horizons to a very large extent. Exposure to university education can help individuals get over the identities they have built over the years, and assume completely new identities and find a different place for themselves. A place much different than what would have previously been possible for them. The young people of any country or society are the torchbearers of the future. Understanding their outlooks and perception of the world around them is key to understanding what might be in store for us as a society in the future.

Keeping all the above stated in mind, this study was attempted with an aim to study the differences in the levels of aspiration of university students from different social groups.

The objectives of the study are three fold and are as follows :-

- Measuring the levels of aspiration among first year graduation students of Banaras Hindu University, belonging to different social groups and sexes.
- Determining whether there exists a significant level of difference between aspirations of students affiliated to different social groups.
- Determining whether there exists any significant difference between aspirations of students of different sexes.

Methodology :- For the study, a sample of 90 students was drawn from the total population of first year graduation students of Banaras Hindu University. The sample was drawn by the method of stratified random sampling. There were total six strata all of which had equal representation in the sample. Strata were divided on the basis of sex and affiliation to particular social groups (General, OBC and S.C./S.T.). Each stratum had 15 students belonging to a particular sex and caste group, who were selected randomly from the total population which was the total first-year graduation students. Their aspiration levels were measured using a tool developed by Bernard and Taffesse. The tool helped generate an 'Aspiration Index'. The ANOVA statistic was then used on the obtained data to determine whether some significant

difference existed between the levels of aspirations of students belonging to different social groups and different sexes.

Tool For Measuring Aspirations

The study uses a tool developed by Bernard and Taffesse to measure the levels of aspirations of individuals. The tool has been previously used in Ethiopia and Pakistan to measure aspirations on a wide scale. It relies on direct questioning of respondents' aspirations for various dimensions of their lives, with the added feature that the same simple wording is used for each dimension to facilitate later aggregation. We describe these wordings and corresponding scales below.

Important to note, when asked such types of questions directly, individuals are likely to report their general wishes instead of the actual subset of an individual's beliefs, preferences, and capacities that are specifically relevant to behavior regarding the future. In essence, this is akin to the type of overconfidence in probabilistic reasoning reported by Morgan and Henrion (1990). Focusing on expectation, Manski (2004) suggests that individuals first be asked for their assessment of the minimum and maximum level possible for each dimension before being asked about their actual point beliefs. This has the added value of reducing potential anchoring effects related to previous questions. Therefore, respondents were first asked about possible minimums and maximums in their community for each dimension of life in which we seek to measure aspirations.

To further help respondents answer such unconventional questions, visual scales are used, featuring high (but reasonable), medium, and maximum levels obtainable for each dimension in the survey area. Here again, the purpose is merely one of framing the questions; respondents shall be free to report levels higher than those proposed. For dimensions such as income or wealth, these medium and maximum levels are also translated into meaningful examples, helping respondents to translate their aspiration levels into financial values.

In order to gain a keener insight into the respondent's mindset they were also asked if they thought that their aspirations were being limited due to any particular reason and if yes, what was the reason? This was done simply out of curiosity on our part. This question helped us gain an understanding of how the respondent viewed the world around him or her and also helped us make better conclusions based on the collected data.

A further issue was the importance that each respondent allocated to a particular dimension of his or her life outcome. With heterogeneous preferences, some respondents were sure to value social status within their community more than their level of wealth, whereas it may be the opposite for others. Although all respondents may report high aspiration levels for both dimensions, unless forced to reveal their idiosyncratic preferences, the aggregate indicator will not capture these distinctions. Therefore, after providing answers to questions related to each dimension, respondents were asked to weigh each dimension according to the value they attach to it

The weights thus obtained were used in the generation of the aspiration index using the following formula-

$$A_i = \sum_k [(a_i^k - u^k)/\sigma^k]\, w_i^k$$

Where A_i = Aspiration Index

k= dimension of aspiration

a_i^k = Individual's response to question pertaining to particular dimension. u^k = Sample Mean of responses to question pertaining to particular dimension.

σ^k = Standard deviation for responses to particular question w_i^k = Weight individual assigned to particular dimension.

The instrument generated an aspiration index by collecting information related to an individual's aspirations pertaining to four distinct dimensions. These were –

- Income Aspirations
- Educational Aspirations
- Wealth Aspirations
- Social Status Aspirations

All these four dimensions have been elaborated upon here

Income Aspirations :- Income is a very important aspect of an individual's life. A regular income is required to attain even the most basic necessities. In our questionnaire we asked our respondents about their aspired levels of annual income.

Wealth Aspirations :- These were characterized as the monetary value of durable consumer goods. It reflected expenditure patterns (including savings and investments) and summarizes the material 'standard of living'. Respondents were asked to state the level of material assets they aspired to achieve in their life and the then the value of these assets were converted into their monetary value to use in the aspiration index.

Educational Aspirations :- Educational Aspirations are also an important aspect of an individual's life. As we have discussed above, education is one means which can help people overcome their psychological barriers. The respondents were asked to state their educational aspirations in terms of school years**.**

Social Status Aspirations :- Social status in the community appears to be an important aspect of life outcomes. In order to meet the need to collect numerical indicators, I opted for a continuous measure, asking respondents the percentage of their fellow community members who, they aspired, would ask for their advice at times of important decisions.

Results :- When we used the ANOVA statistic on the obtained data, the results showed that there did not exist any significant difference between the levels of overall aspirations of the three groups.

The results obtained for the Over-all aspiration indices were as follows

Groups	*Count*	*Sum*	*Average*	*Variance*
General	30	-28.34295738	-0.944765246	2422.157874
OBC	30	44.04097466	1.468032489	157.5810274
SC	30	55.3116664	1.843722213	114.4709074

As we can see, although variations for all three groups are high, the variation in the general category group tends to be extremely high. This means that the results for the general category students are very highly spread out from the mean. This shows that there is lack of uniformity in the perceptions of general category students, as compared to the other two categories, where there is more similarity in the way the people of a particular group perceive their future life outcomes. This probably is a major reason why there exists no significant difference between the three groups. Such high variations in the general category group, render its mean score meaningless.

Also, we found out that no significant difference existed between the aspiration levels of the three social groups corresponding to the different dimensions either. We shall take a look at the ANOVA scores for the three four different dimensions of aspiration here

The results obtained for the Income aspiration indices were as follows

Groups	*Count*	*Sum*	*Average*	*Variance*
General	30	11.83603	0.394534	2402.114
SC	30	-5.57497	-0.18583	23.7133
OBC	30	9.883053	0.329435	25.95326

Again, the variance in the income aspiration indices for the General Category Group show very high variation while the variance for the other two categories is extremely low in comparison. This shows that there is very little uniformity in the way the people of the general category view their future life expectations with regards to income. This high variance can again be responsible for the no significance of difference between income aspiration indices.

The results obtained for the Wealth aspiration indices were as follows

Groups	*Count*	*Sum*	*Average*	*Variance*
General	30	-20.8847	-0.69616	30.9069
OBC	30	9.207694	0.306923	14.28529
SC	30	24.22485	0.807495	18.58458

The wealth aspiration indices for the three groups do not show any stark differentiation in their variances, but even here, the variance for the general category is higher than the other two categories.

The results obtained for education aspiration indices are as follows

Groups	*Count*	*Sum*	*Average*	*Variance*
General	30	-7.724	-0.25747	0.888025
OBC	30	24.66985	0.822328	69.94255
SC	30	30.77157	1.025719	52.31744

As we can see, the variance for the General Category students here is extremely low, as compared to the other two categories. Although there is no significant difference between the means for the three groups, such high difference in the variance shows some important difference in their perceptions of their future educational outcomes.

The results obtained for social status aspiration indices are as follows

Groups	*Count*	*Sum*	*Average*	*Variance*
General	30	-11.5703	-0.38568	16.11115
OBC	30	0.280375	0.009346	17.06889
SC	30	5.890214	0.19634	19.31719

In case of this dimension, on using the ANOVA statistic, it was found that there exists no significant difference between the means of aspirations of the three groups. As we can also observe, there is not much difference in the variance for the three groups either. This shows that there is not much difference in the social status aspirations for the three groups and affiliation to a particular social group has not affected the individual's view of future life outcomes with regards to social status aspirations.

Conclusion :- From the above-found results and the discussions that followed, we may conclude that although there does not exist any significant level of difference between the overall aspirations or even the aspirations pertaining to particular dimensions of different social groups, the high level of variance which is observed in the aspirations of the general category students, is highly notable. This high degree of variance that exists in 3 out of 4 dimensions of aspirations,

shows a lot of difference in the aspirations within the general category group itself, while the aspiration levels in the other two groups are more uniform.

This shows that the aspirations of the general category students are being affected by variables other than their affiliation to particular social groups, while the uniformity in the aspiration levels of students of the other two groups shows that it is primarily their identity as members of a particular social group which is effecting their aspirations as all members of a particular social tend to have similar levels of aspiration. The reason for the high variation in the general category aspirations can be attributed to a number of factors. According to the obtained data, while answering the question relating to the reason which was limiting their aspirations, most general category students stated the reason as their low family income. This further goes on to establish the existing theory which states that low income is the principal barrier when it comes to formation of aspirations. Diversity in their family incomes, their past life experiences and family backgrounds, can be the principle reason behind the high variance of aspiration indices of general category students. High variation in aspiration indices indicates high variation in all the above stated dimensions of life.

While the variance for the other two groups is comparatively quiet low, which shows that students from the other two groups (S.C/S.T. and OBC) have low diversity even in family incomes, past life experiences and family backgrounds within their particular group. Psychological barriers can turn out be as big as material barriers when it comes to development of societies. Policies need to focus on these as much if not more than what they focus on removing the material constraints to development. If we were to go by the words of Amartya Sen, development is nothing but simply, 'Freedom From Unfreedoms'. The freedom to aspire and to achieve those aspirations is one such freedom which can truly be helpful in development of the poor and deprived sections of the society.

References :-

1. Alsop, Ruth, Mette Frost Bertelsen, and Jeremy Holland (2006): "Empowerment in Practice: From Analysis to Implementation." Washington,DC: World Bank (Directions in Development).
2. Appadurai, Arjun (2004): "The Capacity to Aspire: Culture and the Terms of Recognition." In Vijayendra Rao and Michael Walton, eds.: Culture and Public Action 59–84. Stanford, California: Stanford UniversityPress; Stanford Social Sciences.
3. Bernard, Tanguy., S. Dercon, and A.S. Taffesse (2011): "Beyond Fatalism—An Empirical Exploration of Self-efficacy and Aspirations Failure in Ethiopia". Working Paper CSAE WPS/2011-03. Oxford, UK: University of Oxford, Centre for Studies on African Economies.
4. Bernard,Tanguy and A.S. Taffesse (2012): "Measuring Aspirations: Discussion and Example from Ethiopia" Ethiopia Strategy Support Program Working Paper No. 47
5. Boyd GF (1952): "The levels of aspiration of white and Negro children in a non-segregated elementary school." The Journal of Social Psychology,1952..
6. El-Mafaalani, Aladin. (2012): *BildungsaufsteigerInnen aus benachteiligten Milieus. Habitustransformation und soziale Mobilität bei Einheimischenund Türkeistämmigen*. Wiesbaden: Springer VS.
7. Ibrahim, Solava (2011): "Poverty, Aspirations and Well-Being: Afraid to Aspire and Unable to Reach a Better Life – Voices from Egypt". Brooks World Poverty Institute Working Paper No. 141.
8. Ray, Debraj (2006): "Aspirations, Poverty and Economic Change." In Abhijit V. Banerjee, Roland Bénabou, and Dilip Mookherjee, eds.: Understanding Poverty 409–421. New York: Oxford University Press.
9. *Schindler, Steffen. (2012): Aufstiegsangst? Eine Studie zur sozialen Ungleichheit beim Hochschulzugang im historischen Zeitverlauf. Edited by Vodafone Stiftung Deutschland. http://www.vodafonestiftung.de/meta_ downloads/53423/studie_ hochschulzugang_web.pdf.*
10. *Wilkinson, Richard G., and Kate Pickett. (2010): The Spirit Level. Why Equality is Better for Everyone. London: Penguin Books (Penguin sociology).*

Misconceptions Related with Learning Disabilities among Teaching Professionals

Anuradha Rai*
Anita Singh**
Anupama Rai***

Abstract :- Students with Learning Disabilities (LDs) constitutes the largest category of those who need special education. However, the average teachers and teacher educators have inadequate knowledge about the LDs. This study attempts to analyse the areas of misconceptions about LD learners among teaching professionals which may be helpful in providing them appropriate training. Such training is important as teacher is the crucial factor which affects the early detection of LDs in students and their educational planning towards inclusive settings. The study includes 292 teacher and teacher educators from eastern Uttar Pradesh of India and decipher that there is need to provide knowledge about LDS to all the teachers, especially in the characteristics and identification.

LDs basically pertains to the functional difficulties faced by individuals while reading, writing expressions, and performing mathematical calculations. It makes the largest category, accounting for over half of the students identified for special education (Hallahan, 1998). Government of the United State has placed the 'LDs' in the list of those who require special education the in the act (IDEA 2004), which reads as follows;- "*having mental retardation, a hearing impairment including deafness, a speech or language impairment, a visual impairment including blindness, serious emotional disturbance, an orthopaedic impairment, autism, traumatic brain injury, another health impairment, a specific LDs, deaf- blindness or multiple disabilities, and who, by reason thereof, needs special education and related services"* (Reynolds, 2007 p 428).

This category has acquired important place in India with the provisions of the Rights of Persons with Disabilities (PWD) Act-2016, however, it has acquired relevance only during last few decades (Rama 2000). The prevalence rate is quite alarming in India which ranges from 3.08% (Padhy et al 2016) to 16% (Muthusamy and Shahu 2019; Chacko and Vidhu Kumar 2020). Despite the efforts by the government, the number of LD children or dyslexic in India has increased exponentially (Karande, Sholapur Wala & Kulkarni, 2011). The teachers are the mile stones for the success of any program and therefore their involvement is a must. LDs of the child is not apparent till he or she enters the school especially in third or fourth grade where teachers notice their struggling in learning (Shapiro, 1993; Shaywitz 1998). The classroom teacher should be suitable person who is qualified in early detection of LDS and associated screening procedure (Werts et al. 2007p130). Therefore assessing the knowledge level of teachers regarding LDs (Sarnabhavan et al. 2010; Lingsweran, 2013; Pawar and Mohite, 2014) and its solution remains imperative (Williams et al. 2014). Moreover, to train the pre-service teachers via appropriate curricula, the updated knowledge level of teacher educators is highly needed. However, the paucity

*** Department of B.Ed in Harish Chandra (PG) College, Varanasi, Uttar Pradesh, India**
****Ex Faculty, Regional Centre (MGAHV, Wardha)-Prayagraj (U.P.)**
***** Ex Faculty, Regional Centre (MGAHV, Wardha)-Prayagraj (U.P.)**

of sufficient research-based data has posed hindrances in assessing the actual position of awareness about LD in the teachers.

The study attempts to identify the prevailing misconceptions among teachers and teacher educators regarding LDs and related areas. The definition of the terms used are as follows.

- ***Teacher Educator***: those teachers who have completed and passed the course work of teacher educator training i.e. M.Ed.
- ***Teachers***: those teachers who have completed and passed the course work of teacher training i.e. B.Ed.
- ***Pre service***: those who are not in related jobs. Those who have completed M.Ed. and are doing research work were considered as pre-service teacher educator and those who have completed B.Ed. but are not teaching anywhere, or doing any other course were considered as pre service teachers.
- ***In-service***: those who are performing their job of teaching were considered as in-service teachers/ in-service teacher educator.
- ***Working district***: This study has been carried out on the sample of 4 districts of eastern Uttar Pradesh, these are Azamgarh, Ghazipur, Ballia and Varanasi.

Sampling and Methodology: This study is based on a survey method conducted on 292 respondents where the distribution has been presented in the Table 1.

Table-1: Sample of the Study

Participant	**No of participants from**				**Total**
	Azamgarh	*Ballia*	*Ghazipur*	*Varanasi*	
In-service teachers	11	104	16	48	179
Pre-service teachers	5	8	01	03	17
In-service teacher educators	4	01	9	39	53
Pre -service teacher educators	01	01	0	41	43
Total	21	114	26	131	**292**

Tools used for the study: A tool consisting 45 items for the open-ended questionnaire was developed for the data collection. **Theater,** a group of 20 questions was designed which were open with no restrictions of words or expression language or time limit. Based on the responses 50 the statements were framed for assessing the knowledge level related with various aspects of LDs such as the characteristics, identification procedure and remedial interventions. These were given to three related experts for their suggestions based on which 5 items were removed and certain changes were made to improve the language of the tool. Thus, the final draft of the tool consisted of 45 items in terms of statement to be answered as true false or can't say.

Data Collection Procedure,* analyses and Result*:

The samplings followed the *accidental method* and the collected data were checked with help of stencil where the correct answers were marked as (√) and were scored as 1.

The item wise analysis was done which has been grouped as per areas i.e., 1) the concept 2) identification 3) characteristics 4) remediation/intervention. Percentage of correct responses were obtained for each item and has been presented categorically.

Table 1: ***Percentage of correct responses for concept related statements***

Statements related with Concept of LDs	% of correct Response
LDs is a disorder in basic psychological process.	75%

LDs is inability to learn due to physical problem or illness	33%
LDs is manifested as inability to learn common things.	10%
LDs is a lifelong disorder	13%
LDs is related with organic impairments.	51%
LDs disappears after finishing school.	60%
Intelligence of learning-disabled children is below average.	20%
Learning disabled children have poor visual sight.	63%
Learning disabled students are poor achievers	70%
Poor up bringing is responsible cause for LDs	30%
LDs includes problems that are result of primarily environmental, cultural or economic disadvantage.	23%
LDs is positively related with emotional instability.	12%

The results (Table-1) suggest that the respondents knew that LDs is a disorder in basic psychological process (75%) and that students suffering from this are poor achievers (70%). However, only 10% of the teachers understood that learning disabled students were not disable for learning common things. About ~10% knew that LDs did not disappear after finishing school however only 13 % of them accepted it as a lifelong disorder. This compares with earlier studies (Brook et al 2007), where respondents did not accept LDs as a lifelong disorder and considered as a problem of age group of 15-16 years. However, ~77% of them considered that LDs as inability to learn due to physical problems while 49% felt it was related with organic impairments. Only 23 % of them responded with "no" for the statement which considered LDs was problems as a result of environmental, cultural or/and economic disadvantages. Earlier studies (Brook et al 2007 & Sharma 2011) have reported that ~13% of the teachers considered LD as a consequence of parental spoiling. *Present study reveals that ~80% of the respondents did not know that LDs have at least average level of intelligence, and only 12% of them knew that LDs have adequate emotional stability*. These results are in consonance with the **werts** Culatta and Tompkins (1999) where teachers were often faced with confusion over the definition of LD and difference between slow learner and LD. Rajesh et al (2020) have reported that most of the school teachers 18(60%) had inadequate knowledge on learning disabilities and 11 (36.7%) of them had moderately adequate knowledge, and 01(3.3%) was identified to have adequate knowledge. Bhavya et al (2015) found that majority of teachers (64%) in the sample had average knowledge regarding specific LDs. The identification issues were assessed by analyzing the percentage of correct answers and their results are given in Table-2.

Table 2: ***Percentage of correct responses for identification related statements***

Statements related with Identification	% of Correct Response
Learning disabled students exhibits low score on emotional stability tests.	16%
There is a large discrepancy in the achievement and intelligence score of learning-disabled students.	65%
Generally Teacher is the first person to notice the disability in the child	47%
LDs is identifiable only in adolescence period.	70%
LDs can be identified only through standardized test.	34%
Teachers can use checklist to screen out the suspected LD child	77%
Curriculum Based Assessment is effective in screening the	75%

learning-disabled child.	

The results show ~77% of the teachers were aware about the use of checklist and curriculum-based assessment for identification (75%). However about half of them indicated that teachers were the first person to identify the LD child. These observations imply that LDs may be inability to learn due to physical/ organic /cultural deprivation where these problems could be viewed in terms of organic impairment / physical problems. These are observable by the parents or persons at home much before the child proceed for formal schooling. Table 3 presents the level of knowledge for the statements pertaining to the characteristics of LDs.

Table -3: ***Percentage of correct responses for characteristics of LD s related Statements***

Statements related with characteristics of LDs	**% of Correct Response**
Children with LDs are lazy and spoiled.	51%
Children with LDs have fear tantrums	30%
Learning disabled children performs poor in all non-academic activities	52%
Learning disabled child might have adequate reading skill but poor mathematical skill**.**	61%
Slow and labored reading is very common in learning disabled performance.	62%
Learning disabled child often has good decoding skill.	46%
Learning disabled students can pronounce long words very adequately.	66%
Learning disabled students generally don't write correct spelling.	69%
Reversal of letter in words while writing or reading is one of the feature of LDs	81%
Learned disabled child can write a long length essay.	63%
Learning disable's writing is characterized by mixture of upper lower case letters.	66%
The stories of learning disabled child consist of emotional and logical end.	50%
Learning disabled child do not understand the concept of tens and units in numbers	59%
Learning disabled child can add single digits but often commits errors while calculating with two or more digit number.	72%
Learning disabled child is often confused in tall- short, big small etc.	57%

It shows that the respondents are quite right while answering the characteristics related with reading, writing and mathematics related characteristics. However they lacked knowledge related with the general behaviors of LDs. Only 61 % of them knew that learning disabled child might be good in reading but poor mathematical skill with quite slow reading. They also lacked specific knowledge of dyslexia as only 46% of them knew that learning disabled children generally did not have good decoding skills. Similarly, ~ 65% of them have answered correctly for writing performance of LD students but only 50% have responded correctly for the *the type of content*. The teacher community included in this work appear to lacking knowledge about the understanding of the concepts related with math (59% and 57%) but they know that LD child is poor in mathematical calculations (72%). Despite the correct answers for the awareness towards the reading writing and mathematical problems, it was not sure if they really knew about the dyslexia, dysgraphia or dyscalculia. However, the respondents were aware of the learning

problems exhibited in the normal class rooms which finds supports from earlier studies (Tripathi and Kar 2008). About 70% of the respontents believed that LD students had fear tantrums while 49% of them thought they were lazy and spoiled kids. The correct answer for the knowledge, and related misconception, remediation and intervention for helping the learning-disabled students, has been given in table 4.

Table 4: ***Percentage of correct responses for Remediation / intervention related Statements***

Statements related with characteristics of LDs	**% of Correct Response**
Early intervention can enhance the potential of learning disabled child to catch up to peers.	81%
Ld child can be helped only through specific equipments.	26%
To cope up with their difficulties parental support is essential	93%
CBSE board has given relaxation of extended time fort learning disabled students in exam.	63%
Teacher can develop phonemic awareness skill among learning disabled child without any specific technological aid or equipment.	63%
Parents should send their LD child to specific schools only for proper education	29%
Individualized education plan(IEP) is the description of weakness of learning disabled child	09%
Use of graphic organizer can help learning disabled child	60%
Curriculum adaptation lessens the task difficulty for learning disabled student.	81%
Accommodation of the task / method reduces the amount of learning but of equal difficulty level for special need learner.	66%

It shows that ~81% of them thought the intervention is effective when it was given early while ~90% of them understood necessity of parental support in remediation of LDs. Moreover, ~70% thought that LDs may be treated in specific schools with specific equipment. Teachers had knowledge about the provisions of accommodations and adaptations however, they did not know about the individualized educational plan (IEP) for LDs. Even though the majority of the teachers new about the outcome and treatment of LDs, they were unaware about its concepts and causes which is grossly insufficient for its practical application in the classroom. (C.T. Basim et al 2019) *Therefore the stydy suggests that the teachers have knowledge that the poor performance of the child might be due to LDs but they lack specific knowledge required for identifying or remediating the learning disabled child.*

Conclusions and their Discussion :- Specific LDs is a disorder which is manifested in childhood and is manageable if identified early. However, the invisible disabilities lying within them hinder their attempts and in turn causing many problems including frustration, low self-esteem, anger and hostility etc. The study finds support from Williams et. al. (2013) which says that the teachers are aware of LDs but do not have the exact concept about their special needs and categories. The study advocates that that teachers' training is a must to address the special needs of children (Karande ,2008; Kamala et al, 2013). It is recommended that, the course at M.Ed. level should essentially incorporate content and practical activities related with identification and developing IEPs. The present education system in India has an acute problem in which the existence of Specific

Learning Disabled students in the mainstream schools are agreed upon but no training programmes for the general teachers to identify learning disabilities and to address them (Chatterjee 2003; Myreddyi and Narayana 1999). Earlier studies (Reddy, 2006) have also suggested that that the challenges of achieving full social and educational integration of children with LDs can only be achieved if the associated teachers have appropriate knowledge with positive attitude towards them while handling their competencies.

In addition, suitable strategies, specifically communication skills, should be developed among teacher educators for interacting/collaborating with special educators and parents.

References :-

1. Bhavya, Bhavya.S; Chinnu.C.M;, Christy Elizabeth Joseph; ,Dayona Thomas and Viji Prasad.C (2015)The Knowledge And Attitude Of Teachers Regarding Specific Learning Disabilities Among Children: A Descriptive Approach; International Journal of Recent Scientific Research, 6, 1, pp.2636-2641,
2. Basim Ali C. T., Fysal N., Akhila Thasneem A., Aswathy P. S. (2019) Assessment of knowledge level on LDs among primary school teachers. International Journal of Contemporary Pediatrics vol.6, n.2, p.431-435, ISSN 2349-3291
3. Chacko Deenu and Vidhukumar Karunakaran (2020) The Prevalence of Specific Learning Disorder among School-going Children in Ernakulam District, Kerala, India: Ernakulam Learning Disorder (ELD) Study; Indian J Psychol Med. Vol.42(3): 250–255
4. Padhy, S.K., Goel, S., Das, S.S. et al(2016); Prevalence and Patterns of Learning Disabilities in School Children. Indian Journal of Pediatr 83, 300–306
5. Hallahan D.P.(1998) International perspectives on special education reform. European Journal of Special Needs Education 13 (1) 123-127.
6. Kamala R. and Ramganesh E.(2013) Knowledge of Specific Learning Disabilities among Teacher Educators in Puducherry, Union Territory in India" .International Review of Social Sciences and Humanities. 6, 1 , 168-175
7. Lingeswaran A. (2013) "Assessing knowledge of primary school teachers on specific learning disabilities in two schools in India". Journal Educ Health Promot. 30, 2 Published online Jul 31, 2013.
8. Ponraj, M, and Vadivelu. R. (2017) Awareness of Learning Disabilities Among Secondary Teacher Education Students. International Educational Scientific Research Journal, 3,7, pp 106-111
9. Muthusamy, K., Sahu, J.K (2020). Specific LDs in India: Challenges and Opportunities. Indian Journal of Pediatric 87, 91–92 (2020). https://doi.org/10.1007/s12098-019-03159-0
10. Myreddi V. and Narayan J. (1999) Preparation of special Education Teachers: present status and future Trends. Asia pacific Disability Rehabilitation Journal vol.10(1) https://www.dinf.ne.jp/doc/english/asia/resource/apdrj/z13jo0300/z13jo0304.html
11. Rajesh R, Amritha Thomas, Anju James, Josmy Sebastian, Juley Chacko,Neenu Ashok, Sandhya, Srinidhi, Reeta, Jamuna, Thabithahttp (2020)Assessment of Knowledge Regarding Learning Disabilities in Children Among Primary School Teachers. Journal of Clinical and Biomedical Sciences; 10(2):48-51
12. http://www.jcbsonline.ac.in/Articles/Volume10_Issue2/OriginalArticle01.pdf
13. S. Saravanabhavan and R.C. Saravanabhavan, (2010) Knowledge of LDs among pre-and in-service teachers in India, International Journal of Special Education, 25 p133-139.
14. Shari M.;Vranda, M. N. (2015) Knowledge of Primary School Teachers in Identifying Children with Learning Disabilities. Disability, CBR & Inclusive Development, 26, 3, p68-76.
15. Unni Jeeson C(2012) Specific LDs and the Amended "Persons With Disability Act "Indian journal of Pediatric 49: 445-447
16. Varsha K. S. and Parasuramana Gomathy (2019) Study on Knowledge and Perception Regarding Learning Disabilities in Children among Primary School Teachers in Thiruvallur District. International Journal of Innovative Science and Research Technology, 4, 9 p512-516
17. Werts, Margret G.;Culatta, Richard .A.,Tomkins James R.(2007)"Fundamentals of Special Education: what every teacher need to know"3rd edition PHI Learning Privat Limited , New Delhi
18. Wilson, C. P., Gutkin, T. B., Hagen, K. M., & Oats, R. G. (1998). General education teachers' knowledge and self-reported use of classroom interventions for working with difficult-to-teach students: Implications for consultation, prereferral intervention and inclusive services. School Psychology Quarterly, 13(1), 45–62.

New Media and its Relation to Political Communication

Dr. Amita*

Introduction :- The emergence of New Media has started a new kind of communication among government and common people. It differentiates from mass, traditional and industrial media in many aspects such as quality, reaches, frequency, usability, immediacy and permanence. New media is an important means of communication where people create, share, exchange and comment content among themselves in virtual communities and networks. New media also employ mobile and web-based technologies to create highly interactive platforms via which individuals and communities share, create, discuss, and modify user-generated content. It provides opportunities to communicate between organizations, communities and individuals.

New media such as mobile phones, Internet, websites, computer multimedia, social media etc. have played a major role in episodes of contentious political action. Through new media, the government has changed its form into E-governance. It is useful in a way that it provides direct interaction, response, feedback from the public. On the other hand, new media is an important tool for activists seeking to replace authoritarian regimes and to promote freedom and democracy, and they have been lauded for their democratizing potential.

What is New Media :- The term "new media" came into prominence in the mid-1990s, usurping the place of "multimedia" in the fields of business and art. Unlike its predecessor, the term "new media" was not accommodating: it portrayed other media as old or dead; it converged rather than multiplied; it did not efface itself in favour of a happy if redundant plurality. The singular plurality of the phrase ("new media" is a plural noun treated as a singular subject) stemmed from its negative definition: it was not mass media, specifically television. It was fluid, individualized connectivity, a medium to distribute control and freedom. Although new media depended heavily on computerization, new media was not simply "digital media": that is, it was not digitized forms of other media (photography, video, text), but rather an interactive medium or form of distribution as independent as the information is relayed.[1]

Many observers tend to write about 'new media' such as networked computing and telecommunications as if they had been recently discovered in their fully developed state. Huhtamo (1999: 97) wrote that: 'One of the most common features of many techno-cultural discourses is their lack of historical consciousness.' These new media are not a completely new phenomenon. Marvin (1988: 3) wrote that: 'New technology is a historically relative term. We are not the first generation to wonder at the rapid and extraordinary shifts in the dimensions of the world and human relationships it contains as a result of new forms of communication.'[2]

Characteristics of New Media :- New media inexpensive and accessible to enable anyone to publish or access information, compared to industrial media, which generally require significant resources to publish information. Some differences between new media and Mass media are:

Reach: Mass media use a centralized framework for organization, production & dissemination of content, whereas the nature of new media is decentralized and distinguished by multiple production & utility points.

***Assistant Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Banaras Hindu University, Varanasi.**

Accessibility: The tools of production of the mass media are either government-owned or privately owned, while new media tools are available for use by people at little or no cost.

Usability: Mass media requires a specialized set of skills & training for its usage. New media does need the skills of being aware of basic usage of computer & internet, hence can be used by anyone with access to the new media.

Immediacy: The mass media uses a longer time, which could be anywhere from a day to a few months, new media has a distinct advantage over the mass media as it is capable of accommodating instantaneous replies.

Define Political Communication: Robert E. Denton and Gary C. Woodward describe political communication in the form of intentions of its senders to influence the political environment. In their words "the crucial factor that makes communication 'political' is not the source of a message, but it's content and purpose"[3]. Brian McNair provides a similar definition by saying that political communication is "purposeful communication about politics"[4]. Political communication is a sub-field of political science and communication that deals with the production, dissemination, procession and effects of information, both through media and interpersonally, within a political context.[5] The term political communication is used to refer both to a set of practices and a well-developed interdisciplinary field of research. Although closely tied to political science, the theory and practice of political communication are truly interdisciplinary, drawing from varied traditions in political sociology, political psychology, public opinion research, political marketing and advertising, campaign strategies and management, rhetorical studies, and media studies.[6]

Relationship between New Media and Politics :- This study can be discussed under the following broad headings:

1. New media political communication through government.
2. New media political communication through people.

New media political communication through government :- New media creating new pathways between citizens and government to access information and services. The government is using new media for becoming more transparent, participatory and collaborative in democracy.

E-governance: E-governance means the application of ICT to transform the efficiency, effectiveness, transparency and accountability of the exchange of information and transaction between Government and Citizens.

Government to Citizens (G2C): It includes Basic citizens services such as online registration of birth/death/marriage certificates, Health care, education services, filing of income taxes etc. Example– www.india.gov.in.

Government 2 Business (G2B): It includes Dissemination of policies, memos, Government rules and regulations, Business information, Application forms, renewing licenses, registration, payment of taxes. Example-www.Business.gov.in

Government 2 Employee (G2E): It Includes Online conferences for employees, Online training, Employee information etc. Example- www.egovonline.net

Government 2 Government (G2G): It is the transaction between the central/national and local governments and between government departments and agencies and organisations. Example-www.egovstandards.gov.in

Election campaign:- Digital media played a large role in campaigning and voter mobilization for most political parties. New Media created new ways of political activating and encouraging social

media users in political activities ranging from joining their political groups by Tweeting Short Messages on Twitter, Facebook Status Update, Expressing Supports through Blogs, Videos on YouTube, Group Hangouts on Google+, 3D Technology and others. This widespread usage of digital media was facilitated by the fact that over half of India's 900 million eligible voters have access to the Internet and social media. The country has more than 300 million Facebook users and over 200 million WhatsApp users than any other country. Many have termed the 2019 election the "WhatsApp election." Furthermore, millions of people in India use other media platforms, such as the regional language portal ShareChat and the worldwide popular TikTok. Parties are using various tools of new media to propagate their messages, policies, manifesto, plans, etc. Standard tools like Facebook, YouTube, Twitter and WhatsApp have become the pillars of political communication strategy. Every major political party has tried to use all the available new media tools. Here are some examples:

Facebook Pages

Bhartiya Janta Party

Ek hi Viklap Modi, vote for change, I Support Narendra Modi, Narendra Modi for PM, Mission 272+, NationWithNaMo2019, myfirstvoteformodi2019, bkmkb2019

Indian National Congress

Indian youth congress -Indian National congress -Congress India -Youth for Congress -NSUI

Aam Aadmi Party

AAP for Hope -India against corruption -Arvind Kejriwal for Hope -IITian AAP

Twitter

Bhartiya Janta Party

#abkibaarmodisarkar #mission272+ #Immodi #BJP2014 #Bharatiyajantaparty #ModiMeinHaiDum #MyFirstVoteForModi #IsBaarNaMoPhirSe

Indian National Congress

#voteforRG #VoteforRahulGandhi #voteforcongress #indiancongressparty #congress2014 #congressagainstcorruption

Aam Aadmi Party

#Vote for AAP #Arvindkejriwal4change #AAPpopularity #Thunderclap #Aapforhope #Indiaagainstcorruption

YouTube

www.youtube.com/user/BJP4India
www.youtube.com/user/congresspartyindia
www.youtube.com/AAP

Websites

www.bjp,org
www.bjpdelhi,org
www.inc.in allindiacongress.com
www.aamaadmiparty.org

New media political communication through people :- New media has created a new type of politics that can be called participatory politics.

What is Participatory Politics? :- Participatory political acts include starting a new political group online, writing and disseminating a blog post about a political issue, forwarding a funny political video to one's social network, or participating in a poetry slam.[7] MacArthur Research Network on Youth and Participatory Politics questioned 3,000 young people, ages 15-25, on how they use the Internet, social media, and engage in politics.[8] Participatory political acts can:[9]

- Reach large audiences and mobilize networks, often online, on behalf of a cause;
- Help shape agendas through dialogue with, and provide feedback to, political leaders (on- and offline); and
- Enable participants to exert greater agency through the circulation or forwarding of political information (e.g., links) as well as through the production of original content, such as a blog or letter to the editor.

New Media, New Movement :- In the recent move of the people of Arab countries like Egypt, Tunisia and Libya against their governments, new media played an important role in the huge agitation campaigns against the rulers. Paolo Gerbaudo writes in his book 'Tweets and the Streets' (2012), about new protest movements of the 21st century. From the Arab Spring to the 'indignados' protests in Spain and the Occupy movement, Paolo Gerbaudo examines the relationship between the rise of new media and the emergence of new forms of protest. Gerbaudo argues that activists' use of Twitter and Facebook does not fit with the image of a 'cyberspace' detached from physical reality. Instead, new media is used as part of a project of re-appropriation of public space, which involves the assembling of different groups around 'occupied' places such as Cairo's Tahrir Square or New York's Zuccotti Park.

New media has provided an opportunity for many activists, most of them young people, to express their views and promote their activism to a larger audience. Protestors are using sites such as Twitter and Facebook to help organize and get the word out about their cause. As one Egyptian activist succinctly tweeted during the protests there, "We use Facebook to schedule the protests, Twitter to coordinate, and YouTube to tell the world."[10] Seeing the effect of social media, CNN has declared that current revolutions in Tunisia, Egypt are "Twitter revolution".

India's fight against corruption :- New media played a major role in India's fight against corruption. In this burning issue the role of Facebook, Twitter, YouTube and blog become a powerful tool to the people. New media has hugely supported for anti-corruption movement led by Anna Hazare in India. Initiated by campaign organizers, the India Against Corruption team, Facebook profile badges, missed call campaigns and petitions (most notably on online campaign site Avaaz (where over 6.17 lakh have registered support) entered the scene. In 140 characters, #janlokpal, #annahazare and the less gracious #meranetachorhain began to trend on Twitter. YouTube shows up around 2,000 video results, a lot of which are amateur videos shot by participants.[11] More than 205,555 people on the Facebook community 'India Against Corruption' joined hands to support the movement.[12]

How New Media is Beneficial to Politicians and Political Organisation :-

Spread of message: The potential of new media to reach a wider audience in a short time period.

Control of the message: Unlike the mass media where political parties have control of the message, new media gives everybody a voice.

Niche publications: New media allows politicians and political organisations to reach a specific audience.

Space: New media provide chance to communicate the message on many platforms increasing in this way reach.

Visual representation: New media allow to use a diverse range of visuals to make the message more appealing to the audience and impel them to share it.

The message stays in the public eye for longer: The information could stay forever in the webspace.

Time limit: The twenty-four-hour news coverage is one of the positive sides of new media. Political organisations could provide the audience with information at any time and keep in touch with it.

Accelerate word of mouth: The ability to make a message or a video viral is one of the most appreciated characteristics of new media.

Conclusion :- In terms of distribution and substance, the usage of digital media in the 2019 Indian general election campaign was outstanding. The BJP's use of a varied range of platforms, as well as its highly structured dissemination of messages across several layers of communication, was significant. The party employed a top-down, centrally controlled approach to disseminate messages via social media and texting platforms. This also had an impact on the agenda. Traditional media covered topics that were debated on social media. Democracy is taking its new shapes in the age of the cyber world. In this world, every citizen has a tool to express themselves globally with a local flavour. New media have become a vital platform for mobilizing people globally as well locally.

Political parties will rely even more on social media for campaigning and voter mobilisation in the future. A new multi-stakeholder discussion is required to address the harmful consequences of fake news or poor-quality public discourse, as well as to increase the capacity for enlightening voters. Cooperation among political parties, technology businesses, and civic society, as well as participation by the Electoral Commission, is critical.

References :-

1. Wendy Hui Kyong Chun & Thomas Keenan ed. *New Media Old Media: A History and Theory Reader*, New York: Routledge, 2006, 01.
2. Leah A Lievrouw, Sonia Livingstone, *Handbook of New Media*, London: SAGE, 2006.
3. R.E. Denton, Woodward G.C. *Political Communication in America*, New York: Praeger, 1998. p.11.
4. B, McNair, *An Introduction to Political Communication*, London: Routledge, 2003. p.24.
5. Cram101 Textbook Outline, *e-Study Guide for: Political Communication*, 2012.
6. George Thomas Kurian ed. *The Encyclopaedia of Political Science*, Washington: CQ Press, 2011, p. 1235.
7. Participatory Politics: New Media and Youth Political Action, http://dmlcentral.net/sites/dmlcentral/files/resource_files/ypp_survey_body_cover.pdf.
8. MacArthur Foundation, http://www.macfound.org/press/publications/study-finds-young-people-using-new-media-participatory-politics/ (accessed Sep08, 2014).
9. Participatory Politics: New Media and Youth Political Action, http://dmlcentral.net/sites/dmlcentral/files/resource_files/ypp_survey_body_cover.pdf
10. Facebook, 2011 Egyptian revolution,*http://www.facebook.com/note.php?note_id=178909622156703&comments* (accessed on Oct 26,2014)
11. Deepa Kurup, The Hindu, How Web 2.0 responded to Hazare, *http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/article1685984.ece* (accessed on Oct 5, 2014).
12. Facebook, India Against Corruption,*http://www.causes.com/causes/579073-india-against-corruption* (accessed on Oct 21,2014).

Stress Management Through Yoga And Yogic Dietary Considerations

Dr. Pratap Chandra Debnath*

Abstract: In this article it has been discussed in brief regarding the stress management through Yoga and Yogic dietary considerations. Mental stress is an acclimatized or adopted complicated reaction. Personal heroic anxieties, feelings are the characteristics of this stress. There are two types of mental stress - good and bad. Through a healthy lifestyle, we can reduce our mental stress. Practicing Yoga, we can attain positive health, mental constancy, mental fulfillment and also mental growth. Thus, by practicing Yoga regularly we will be able to reduce the mental stress. In our life there are five components of Yogic path. These are - i) Food (Āhāra), ii) Relaxation (Vihāra), iii) Conduct (Āchāra), iv) Thinking (Vichāra), and v) Behavior or Action (Vyāvahāra). Our nervous system is irritated or troubled by rich and non-vegetarian food. Ghee, butter, cow-milk etc. light poly unsaturated fatty acidic foods keep our nervous system calm and healthy. So, always we should take vegetarian and fatty acidic food to keep our body disease free, calm, and healthy. Then it has been concluded by saying that, if we follow all these Yogic practices and diet, then we will be able to control our mental stress, and also we will be able to manage our positive health.

Keywords: Mental Stress, Yoga, Āsana, Prāṇāyāma, Dhyāna, Diet, Health, Lifestyle.

Introduction: Stress or mental stress is an acclimatized or adopted complicated reaction. Personal heroic anxieties, feelings are the characteristics of this stress. Exceeding psycho-physiological, psycho-social and organic environmental features are the peculiarity of this mental stress. According to Patañjali's Yoga-Sūtra - mental stress is a psycho-physiological disequilibrium experience, which is caused by the detection of emendation of one's mind, which is derived by our adversity or calamity of existentialism, and it is outspread by our social environment and psycho-physiological reactionary artifacts. ("Vyādhi styāna saṁśaya pramāda-ālasya-avirati bhrāntidarśana-alabdha-bhūmikatva-anavasthitatvāni citta-vikṣepāḥ te antarāyaḥ" – Patañjali, Yoga-Sūtra, 1.30).

Stress Management Through Yoga:- There are various types of emotion which we face in various situations. These emotions can be divided into two - positive and negative. Happiness, anger, satisfaction, despair, depression etc. - these emotions can be modified into negative from the positive. We get more expectation from people and environment around us than ourselves. From these expectations we can be more refreshed. But, there are some functions, through which we depressed or despaired or acerbated. Actually all these are happened due to our experience of positive and negative emotions of adolescent period. But, these experiences are also necessary for the awareness regarding our emotions and feelings. Except this, it is very natural that, every one of us expresses our feelings and emotions. But, it must know everyone that; there have the way to express both - positive and negative emotions. We feel mental stress, because negative emotions and their expressions are expressed negatively.

***Assistant Teacher of Philosophy, Salsalabari Model High School(H.S.), Salsalabari, Alipurduar, West Bengal, India.**

Now a day, our maximum health problems are due to our mental stress. It has been mentioned by Patañjali in his Yoga-Sūtra that, misery, pain, mental depression, vibrancies of body parts, hindrance of respiration etc. are the main cause of the chaos of mind. ("Duḥkha-daurmanasya-aṅgamejayatva-śvāsapraśvāsāḥ vikṣepa sahabhuvaḥ" - Patañjali, Yoga-Sūtra, 1.31).

We cannot deny that, the mental stress influences our health negatively. In mental stress management the lifestyle keeps a very important keeps a very important role. The lifestyle is identified by our some habitual features, which influences our life and health. Actually, lifestyle means habit of our taking food, entertainment, thinking and our all everyday activities. Our mental happiness and development of our health depend on a well lifestyle. Through a healthy lifestyle we can reduce our mental stress. There are some situations, which we don't control and as a result we feel mental stress. So, we have to control these situations. Identifying the mental stress we have to face, control and reduce it.

There are two types of mental stress - good and bad. In Yoga, there is no contrary between good and bad mental stress. Yoga means prevention of inclination. ("Yogaḥ Chitta Vṛtti Nirodhaḥ" - Patañjali, Yoga-Sūtra, 1.2). 'Nirodhaḥ" means to constipate something, and 'Chitta-vṛtti' means complexion of Chitta or mind. According to Yoga, it is possible to conciliate the mental restlessness fully, and also to know ourselves through transcendental consciousness. The Yoga literature discusses on this transcendental state of consciousness, and also on the worldly stress of life and livelihood. Through Yoga, we will be able to realize the extent of the transcendental state of consciousness, and also we will be able to realize that, how much we are receding from our self-identity.

It has been mentioned in Yoga-Sūtra of Patañjali that, a person who will prevent his inclination (Chitta-Vṛtti-Nirodhaḥ), that person will remain in his actual inequities. That means, if someone thinks himself/herself as the part of God Siva, then after preventing the inclination (Chitta-Vṛtti-Nirodhaḥ) he/she will be able to see himself/herself actually as part of God Siva. According to Patañjali, you will be able to realize that complexion, as you will think yourself. Whatsoever, regularly we have to practice Yoga to get the psycho-physiological balance. Actually, the Yoga brings equality in our mind, and for this our all activities become skillful and creative. ("Yoga-sthaḥ kuru karmāṇi saṅgaṁ tyaktvā dhanañjaya siddhy-asiddhyoḥ samo bhūtvā samatvaṁ yoga uchyate"- Bhagavad Gītā, 2.48) Practicing Yoga, we can attain positive health, mental constancy, mental fulfillment and also mental growth. Thus, by practicing Yoga regularly we will be able to reduce the mental stress.

Components of Yogic Path: Yoga is a way of life. It is not only a meditation of some minutes, or a bodily stance or a technique of breathing. The Yoga includes the principle of Yama (abstinences), Niyamas (observances), Āsana (physical posture) {"Sthira sukham āsanam"- Patañjali, Yoga-Sūtra, 2.46}, Prāṇāyāma (breath control) {"Prachchhardana- vidhāraṇa-ābhyāṁ vā prāṇasya"- Patañjali, Yoga-Sūtra, 1.34}, Kriyā (completed action), Mudrā (symbolic gesture), Bandha (body lock), Dhyāna (meditation) etc. All these principles of Yoga are relevant with our healthy living. These principles of healthy living can be acceptable for all types of people. As a way of life, the Yoga can give a direction regarding our food habit, food, thinking, method of entertainment and our behavior. If the Yogic path of our life is accepted in actual sense then physically and mentally we will be developed, and this power will be able to face with mental stress. In our life the components of Yogic path are as follows :-

1. **Food (Āhāra):** Main principles of food are related with eating. Yoga gives importance on frugality or abstinence. This frugality is related with the measure of food, quality of food,

and the mental condition at the time of eating. In the quality of food, the concept of frugality is that, the food should be natural, nutritious and nutrient, and at the time of eating, it should cook newly every time. In the measure of food, the concept of frugality is that, if we divide our stomach into four parts, then we should fill two parts of it with food, another one part with fluid, and we should keep blank the rest one part for freely wind blowing. So, frugality or abstinence has emphasized on taking food in positive state of mind, on proper quality of food and on proper measure of food.

2. **Relaxation (Vihāra):** Vihāra or relaxation means comfort which includes - entertainment, exercise, various creative activities, like - drawing, singing, playing etc. These activities control and lead our emotion towards a proper direction. Also these activities produce happiness and pleasure in our mind. Our mind and body are relaxed by the Yoga practices of - Āsana (physical posture), Prāṇāyāma (breath control), Dhyāna (meditation) etc. The sound sleep is also very important for the relaxation. So, regularly we should do creative activity and we should practice Yoga following a certain time limit.
3. **Conduct (Āchāra):** Āchāra means conduct, with which emotion, will, attitude, tendency, habitat etc. are included. If we want stress less life, then good conduct is necessary. Good habit, control on desire, positive attitude, positive emotion etc. make us more powerful from social and individual aspect. Unnecessary mental stress is reduced by our good conduct. Through Yoga we will be able to control our desire, attitude, tendency, habit and our emotion. The practice of Yoga helps to be inspired in good conduct in our individual and social life. In positive emotion and in positive attitude the role of Yoga is very important. Yogic principles of Yama and Niyamas help to enhance control on our desire and emotion. These principles also help to bring peace and love in our life.
4. **Thinking (Vichāra):** By 'Vichāra' we mean thinking. In management of our behavior, the function of our thinking is very important. The equilibrium of our mind is gained through Yama (ethical abstinences) and Niyamas (ethical observances). In this context Mahatma Gandhi said - "There is enough in this world for everyone's need but not enough for any one person's greed". We know that, thinking is two types - positive and negative. We can think both - positively and negatively, but positive thinking brings pleasure in our life and negative thinking brings pain or sorrow in our life. So, always we should think positively. Good thinking decides the exact path of our suitable behavior. This positive thinking helps in prevention and management of our health problem regarding mental stress. It is instructed by the Yoga that, everyone should think positively. Yoga practices, such as - Prāṇāyāma (breath control), Dhyāna (meditation) etc. control our thinking. These practices help to make our life more optimistic. Positive or good thinking which is gained through Yogic practices, provide more strength to tolerate pain or sorrow of our life.
5. **Behavior or Action (Vyāvahāra):** Actions or activities are called Vyāvahāra. Vyāvahāra is the result of Āhāra, Vihāra and Vichāra. We may divide the activities as good and bad. According to Yoga Philosophy, we always should involve in good action. We always should give up the bad work. We always should treat others well. According to Karma Yoga, everyone should do good work not fearing the result of the work. If we do good work following Yoga Philosophy, then we will be able to free ourselves from the mental stress, and thus we will be able to keep ourselves as happy.

Yogic Dietary Considerations: The Yogic practices are related with the increase of intuitive stimulus. This stimulus is sensitive and this is the subtle layer of exercise and this subtle layer is the signifying of high stage of intuitive activity of nervous system. This intuitive stimulus

influences our overall thinking, feeling and behavioral mode. This stimulus takes us towards the deep state of our consciousness. Due to our internal stimulus of nervous system, irritating features of wine, meat, fish, egg, salt, spice, smoking, maximum hot or cold food etc. are naturally revoked by us. Our nervous system is irritated or troubled by rich and non-vegetarian food. Ghee, butter, cow-milk etc. light poly unsaturated fatty acidic foods. These types of food keep our nervous system calm and healthy. Also, these types of food make our nerve flow easier.

It has been mentioned and claimed in Śiva Saṃhitā that, pure extracts of food can incubate our subtle body. Same statement has also been mentioned in Chāndogya Upaniṣad. We have to mind it that the neurotransmitters are micro in size. Also, we have to mind it that, in the synapses of two nerves the electric power is mill volt. When we practice Yoga, our nervous system loses its power of communication within its kinetic or motor perimeter, because at the time of Prāṇāyāma our respiration is intermitted for a while, and at the time of Dhyāna, our respiration goes very slowly. At that time the lump of food continues to accumulate in the gastrointestinal duct. As a result, our intestine and colon are prolonged excessively and we feel pain in stomach. So, we should not take excessive non-vegetarian food. We always should take vegetarian and fatty acidic food to keep our body disease free, calm and healthy.

Conclusion: From the above discussion we may conclude briefly that, above mentioned Yogic methods are very important for healthy, strong and beautiful livelihood. Moreover, the Yogic diet is also important for the healthy living. We always should take good quality, good type and exact measure of food. So, we can say decidedly that, if we follow all these Yogic practices and diet, then we will be able to control our mental stress, and also we will be able to manage our positive health. So, it has been mentioned in the Constitution of World Health Organization (page-2) that - "Health is a state of complete physical, mental and social well being and not merely an absence of disease or infirmity".

References:-

1. The Yoga-Sūtras of Patañjali: Sri Swami Satchidananda, Integral Yoga Publications; Reprinted edition, September 15, 2012.
2. Yoga Nidrā: Swami Satyananda Saraswati, Yoga Publications, Trust/Munger/India; 6th Edition, 8 times reprinted, October 1, 1976.
3. Prāṇa and Prāṇāyāma: Swami Niranjanananda Saraswati, Bihar School of Yoga/Yoga Publications Trust/Munger; 1st edition, January 1, 2010.
4. Light on Yoga: B.K.S. Lyengar, Harper Collins Publishers; 2/18/6 edition, March 20, 2006.
5. The Heart of Yoga: Developing a Personal Practice : T.K.V. Desikachar, Simon & Schuster Publications, 1st edition, 2003.
6. The Seven Spiritual Laws of Yoga: Deepak Chopra & David Simon, Wiley Publications; 1st edition, May 25, 2010.
7. Bhagvad Gītā: Sri Swami Sivananda, A Devine Life Society Publication, World Wide Web Edition, 2000.
8. Āsana Prānāyāma Mudrā Bandha: Swami Satyananda Saraswati, Bihar School of Yoga, August 1st, 2013.
9. Stress Management: A Comprehensive Handbook of Techniques and Strategies : Jonathan C. Smith, Springer Publishing Co. Inc., 31st August, 2002.
10. Yoga & Stress Management: Acharya Yatendra, Fingerprint Publishing, 1st June, 2019.
11. Yogic Diet: All You Need To Know About Food : Sadhguru Jaggi Vasudev, Kindle Edition, 18th September, 2019.

Assessment of Nutrient Intake in Daily Diet of U.G. Girls Students from Collages of Rural and Urban of Azamgarh District to Combat Nutritional Anaemia

Rina Devi*
Deepa verma**

Abstract :- The dietary requirement of adolescent girls is increases with menarche especially for haemopoietic micro-nutrients with protein due to regained the menstrual loss of blood and rapid development of reproductive capacity as well as endocrine changes. But lack of family attention due less dietary concept towards the dietary need is a factor and prevalence of wrong dietary practices, that is from their own side of girl students is an another cause of poor intake. Many researches resulted that main cause of more prevalent iron deficiency anaemia is imbalance dietary management. As National Family Health Survey- 5 (2015) estimated that there are > 47 percent adolescent girls are affecting from anaemia in all over the contrary due to these two reasons.

This present study was carried out to keeping above in view for investigating through nutrition interaction with 100 college going girls, aged 15 – 25 years, randomly recruited from different colleges of rural and urban area of Azamgarh district for sample size. Selection was purposive based on inclusion criteria: mild to sever anaemia conformation. After ethic approval the haemoglobin levels of blood of respondent girl students were estimated in biochemical assessment to conform anaemia. The dietary interaction was made individually to assess their nutrient intake, inclusion of quality foods and adoption of diversification in diet through 24 hours recall, food frequency and dietary diversity scoring methods from reliable tools. There was 75% had mild anaemia, followed by 17% moderate and 8% girls found to be sever anaemic on the basis blood haemoglobin (the grade anaemia given by of WHO). The poor mean intake of iron, folic acid, vitamin B12 and vitamin C with low protein intake had found among them as showed in deficient percent from their recommended dietary allowances (RDA). Less diversity was seen in food selection and intake. The dietary intervention is only an option with required content for improvements in present nutritional and health scenario of college girls to combat anaemia.

Key words:- Dietary intake, nutrition interaction, adolescent girls, menarche, biochemical assessment, dietary.

Introduction:- India is counted among the countries with highest prevalence of anaemia in the world, especially nutritional anaemia in females. Nutritional anaemia is also called hypochromic micro or macrocytic anaemia and also named deficiency anaemia, caused by inadequate dietary intake on improper absorption and assimilation of the nutrients required to formation of haemoglobin or red blood cells (RBCs)- WHO (2017). The deficiency of these nutrients such as iron, vitamin C, folic acid and vitamin B12 etc. leads nutritional anaemia among the adolescent girls as dual reasons: insufficient dietary intake and loss of menstrual blood loss. On this nutritional status with anaemia, the present quality of life of those anaemic girls are deteriorate even with loosing cognitive strength and mental health, and gradually affected their reproductive

***Research Scholar GPS. Government Mahila Degree College, Ambari, Azamgarh, (U.P.)**

****Assistant Professor, Department of Home Science, GPS. Government Mahila Degree College, Ambari, Azamgarh, (U.P.)**

health in future, causing the maternal deaths, complicated pregnancy and so on. It was estimated by National Nutrition Monitoring Bureau (NNMB, 2006) that about 20 - 30 % of maternal deaths in India are due to anaemia.

Therefore, different aspects investigating interactive researches are needed on gross root level to determine it's etiology in changing heath and nutrition scenario to resolve this national nutritional problem.

Methodology:- A descriptive, cross sectional study was carried out to find out the dietary facts with associated factors regarding prevalence of anaemia among under graduation enrolled college going girl students.

Sample size and sampling technique:- As sample size, 100 girl students, aged 15 – 25 years, were randomly selected as: 50 from colleges situated at different localities of Azamgarh urban area and 50 from various villages of this district.

Data collection and analysis :- Demography-The respondents were interviewed for investigation by an approved questionnaire on selected parameters: the demography of respondents were investigated from survey method with the help of approved questionnaire. **Biochemical**- After approval of the study from ethic committee the female students were testes their blood haemoglobin level using haemoglobinometer. **Dietary survey** was carried out through dietary survey using 24 hours recall methods, food frequency table, dietary diversity scoring methods.

After data collection the analysis was made from statistical methods as percentage, deficient percentage, mean values, correlation, X^2 and t test etc. Then tabulated and diagrammatically presented with interpretations.

Results :- The investigation revealed results on different parameters, that are presented here in following manner:

1. Demography of respondents presented in table no. 1.1 and table no. 1.2 on the age and socioeconomic class wise distribution respectively. Table no. 1.1 shows that most (67%) of the girls were belonging to 20 -25 years and 33% from 15 - 20 years age groups.

Table no. 1.1 Age wise classification of college students

Age (years)	Frequency (N = 100)	Percent (%)
15 - 20	33	33.0
20 - 25	67	67.0

Table no. 1.2 presented the socioeconomic status (SES) of rural and urban girl students on the basis of per-capita family income. The classes of socioeconomic status were assessed using revised SES scale of B.G. Prasad (2019). Table shows that most of the families (84%) of urban females were belonged from I (upper) whereas most of the rural females had III (middle) class. No any urban female students was found to be lower class whereas 6% female students from urban region belonged from lower class. There was an association showed between two attributes (SES and region).

Table no. 1.2 Comparison of SES class of respondent female students from urban and rural regions

SES classes on Per-capita family income	Female students of urban area (N=50)		Female students of rural area (N=50)	
	N	%	N	%
I (>7008)	42	84.0	1	2.0
II (3504 - 7007)	5	10.0	7	14.0
III (2102 - 3503)	2	4.0	34	68
IV (1051 - 20101)	1	2.0	5	10
V (<1050)	0	0	3	6.0

2. Haemoglobin (Hb) estimation findings: Table no.2 presented the mean haemoglobin level of rural and urban respondents that was found 10.16 g/dl of blood in girls of urban colleges and having mild grade anaemia as per WHO grading. The mean Hb level of girls of rural from colleges was estimated-8.95 g/dl as moderate grade. The correlation between two attributes was significant it may be maximum from lower income group of lacing in dietary intake.

Table no. 2 Haemoglobin level of blood with grade of anaemia prevalent among the girl respondents from urban and rural regions

Region wise frequency	Mean Hb level (g/dl)	Grade of anaemia (according to WHO)
Urban (N=50)	10.16	Mild
Rural (N=50)	8.95	Moderate
		r = 0.645

3. **Dietary information:-** In table no. 3.1, it was clearly show that the essential nutrients to combat anaemia were consumed in less amount from their recommended dietary allowances (RDA) suggested by Indian counselling of medical research (ICMR, 2020) by the respondents. The significant association was seen in regional factor on the nutrient intake of girls of urban and rural areas. It was found that the lesser mean iron intake of urban college girls (19.75 mg / day) than the intake of rural college girls (20.30 mg./ day). But the intake of folic acid, vitamin B12 , vitamin C and protein was higher than the intake of diet of rural girl respondents.

Table no.3.1 Mean intake of haemopoitic nutrients among urban and rural female students compared with RDA

Nutrients	Female students of urban area (N=50)			Female students of rural area (N=50)		
	Mean intake	RDA	Deficient %	Mean intake	RDA	Deficient %
Iron (mg)	19.75	30	-34.17	20.30	30	-32.34
Folic acid (µ.g.)	74.57	200	-62.71	71.70	200	-64.15
Vitamin B12 (µ.g.)	0.77	2	-61.5	0.74	2	-63
Vitamin C (mg.)	34.42	68	-49.36	31.88	68	-53.11
Protein (g.)	42.63	55	-22.49	35.33	55	-35.76
						r = -0.96

Table no, 3.2 shows that the consumption of quantity food frequency has maximum in frequency among the respondents (as cereal consumption was seen twice a day among 100% respondents) whereas the quality food's such as milk and milk products, fruits and vegetables, jaggery, oil seeds and nuts, egg/meat or poultry intake was poor among the college girls to combat anaemia. 28 percent girls did not consume oil seeds and nuts even once a month.

Table no. 3.2 Frequency of quality foods intake in diet of respondent girls from urban and rural colleges

Food groups (As one serving amount)	Percent intake among the respondents in frequency				
	Twice a day or more	Once a day	Twice or thrice a week	Once a week	Once a month or None
Cereals	100 %	0.0 %	0.0 %	0.0 %	0.0 %
Pulses and legumes	7.0 %	68.0 %	8.0 %	7.0 %	0.0 %
Dense milk and milk product	0.0 %	0.0 %	88.0 %	12.0 %	0.0 %
Root and tubers	77.0 %	23.0 %	0.0 %	0.0 %	0.0 %
Green leafy vegetables	0.0 %	0.0 %	88.0 %	12.0 %	0.0 %
Other vegetables	82.0 %	18.0 %	0.0 %	0.0 %	0.0 %
Fruits	0.0 %	32.0 %	68.0 %	0.0 %	0.0 %

Oil seeds and nuts	0.0%	0.0 %	10.0 %	62.0 %	28.0 %
Fat and oils	42.0 %	56.0 %	0.0 %	0.0 %	0.0 %
Jaggery and their sweets	-	-	88.0 %	12.0 %	0.0 %
Meat, fish and poultry & eggs	00 %	0.0 %	56.0 %	0.0 %	44.0 %

Conclusion:- The study concluded that college going girls from rural region had suffering from moderate level anaemia whereas mild level from urban. The poor intake of haemopoietic nutrients were estimated that was > -20% deficient from their RDA. This is because of very lesser frequency of quality foods in their daily diet. The government of India and NGOs have been made and implemented many nutrition programme as preventive efforts regarding malnutrition prevalent in vulnerable segment especially for adolescent girls to combat anaemia. These are hardly touch the outer of the problem. The more intensive and participatory nutrition awareness programmes and nutritional interventions are required to develop the healthy eating and quality food selection practices among the target groups thereby resolve this nutrition and health problems.

The nutrition intervention through nutrition education process with each respondent girls is a great preventive approach. It showed strong impact of knowledge of girls on follow up their healthy food behaviour. In this convincing process they realised from their wrong cooking and eating practices and learn the selection of good healthy food , life style and related practices can be change at gross root level. Studies shows that these wrong practices are more responsible factors of infection and malnutrition included anaemia.

References:

1. Blom-Hoffman J, Kelleher C, Power TJ, Leff SS. Promoting healthy food consumption among young children: Evaluation of a multi-component nutrition education program. J Sch Psychol. 2004;42:45–60.
2. Bowman SA, Gortmaker SL, Ebbeling CB, Pereira MA, Ludwig DS. Effects of fast-food consumption on energy intake and diet quality among children in a national household survey. Pediatrics. 2004;113:112–8.
3. CARE India,16 oct. 2016, Nutrition intervention helped to rehabilitate the severely malnourished .
4. N. Arlappa et. al. (2012), Prevalence of anaemia among rural pre-school children of Maharashtra in India .Indian Journal of Community Health, Vol. 24, No. 1, page No.1-8
5. Nutritional requirements for Indian , a report of experts group (2020). ICMR, NIN
6. P.V. Kotecha, S. et.al.(2009). Adolescent girls' anaemia control programme, Gujarat in India. Imdian Journal Medical Researches130, pp 584-589.
7. Rajaratnam j. et.al.(2000), Prevalence of anaemia among adolescent's girls of rural Tamilnadu. Indian pediatr. 37(5): 532-6.
8. Shri laxmi B, 2016, 5th ed, Nutrition Sciences, new age publication, 'Nutrition education', p. 430 - 440.
9. Shekher A. et. al. (2005). The iron status of adolescent's girls and its effect on their physical fitness. Indian Journal Nutrition diet, 42 ;(10): 451-45.
10. Singh j. et.al.(2006). Health status of the adolescent's girls in the slums of Luckhnow. Indian journal community; 31(2): 102-03.
11. World Health Organization. World Health Statistics 2011. Available from: http://www.who.int/whosis/whostat/. Accessed July 19, 2002.
12. World Health Organization (WHO). 2009. World health statistics. Geneva: World Health Organization. World Health Organization (WHO). 2015.
13. Vakili M, Baghiani-Moghadam MH, Pirzadeh A, Dehghani M. Assessing the effect of education on knowledge, attitude and practice of guidance school students about milk and dairy products. Knowl Health J. 2007;2:41–7. [Google Scholar]
14. Verma R, et.al. (2013). Prevalence of anaemia in college going youth in rural blocks of a district of northern Indian. EXCEL Intentional journal of Multidisciplinary Management studies; 3 (2):15-22.

The unexplored Rock art Site of 'Sindur' Village

Dr. Nitesh Kumar Mishra*
Anshu Mala Tirkey**
Baleshwar kumar Besra***

Abstract :- *This research paper is related to the study of rock arts of the Sindur village. This village consists of two rock arts site namely "Gobar Manda" and "Bael Gutra". The paper consists of the geographical feature of the Sindur village. The village Sindur is geographical very rich, which leads to the survival of prehistoric man. The abundance of wild animals and water resources make the life of mankind easy to go on. There is Sindur River bordering the village from one side and from other side there are mountain rangers. Not only this, the village also consists of various mountain ranges, which has many natural shelters for living. These shelters were used by the prehistoric man for living as well as for presenting their artistic art on these walls known as rock art. This rock art consists of the figures of wild animals, hunting scenes and ritualistic scenes. The paper consists of the detailed study of the various facts and figures of these rock arts. It also consists of the information about the associated materials found along with the rock arts.*

Keywords :– **P**ictograph, petroglyph, geoglyph, prehistory, Gobar Manda, Bael Gutra, ethnic.

Introduction :- *Rock arts are the prehistoric art (painting or drawing) made on the stone. The rockart are feelings and expressions of the prehistoric man. The paintings show the inner art and creativity of the artist. The rock art is divided into three parts namely pictograph, petroglyph and geoglyph. Pictograph means the figures made by the colors like red, yellow,blue and white etc. the pictographs are made on the ceilings and wall of the rocks. Petroglyph means the figures made by carving or engraving whereas in geoglyph the figures are made on the ground (rocks).[1] The prehistoric rock arts shed light on the daily life of the mankind. It shows the ancient animals, their tools, human activities (consists of food gathering and hunting) and few scene of their ritualistic form. The art also consists of the scenes of their enjoyment like the prehistoric man doing dance.[2] The rock art also depict the intelligenceof the prehistoric man, they have the knowledge of various things like the depiction of various picture in rock art like the animals having baby inside her womb, the animals giving birth of her one baby and the natural things the depiction of sun, and geometrical designs etc. The prehistoric man was aware of every aspects of life. All the depiction of rock arts indicates the developing phases of the mankind of different periods.*

Geographical background :- The village Sindur is situated in Ramanujganj Block, in Balrampur district, Chhattisgarh. This village is located about 25 km from district head quarter Balrampur. Tatapani is the neighboring village of Sindur village. The main river which flows in this village is Sindur River. The river borders the village from one side. And from the other side the village is surrounded by mountain ranges. The main mountain is Kindar Pahar. The mountain is made up of red sand stone, due to which the mountain ranges seem to be red like vermillion, hence this village is known as "Sindur". The village is enriching with abundant flora and fauna. The village consists of forest which makes the life easy of various wild animals and human beings. The forest of this village is the part of Joba forest. The forest consists of various varieties of trees like, Sal (Shorea

*** Assistant Professor, SoS in AICHA, Pt. Ravi Shankar Shukla University, Raipur (CG)**
****Research Scholar SoS in AICHA Pt. Ravi Shankar Shukla University, Raipur**
***** MA. In Archaeology & Museology (RU)**

robusta), Bael tree (Aegle marmelos), Mahua (Mudhuca longifolia), Kendu (Diospyros melanoxylon) and Chironji tree (Buchanania lanzan). The forest consists wild animals like bear (Ursidae), fox (Vulpes vulpes), wild boar (Sus scrofa) and wild rabbit (Oryctolagus cuniculus) etc.

The village consist a huge population of tribal groups like Korwa, Gond and Kherwar tribes. The tribal communities are residing here from many years. Their settlement could be seen on the slopes of the mountains. The tribal people acquire various forest products for their survival. The tribal people dependon the Sindur River for aquatic animals.

Literary review :- any rock art has been discovered in the Chhattisgarh region. Different research scholars and experts have work in this field. The first rock art was discovered in 1910 in Raigarh district namely Singhanpur. The site of Singhanpur was discovered by CW Anderson.[3] In Chhattisgarh region more 100 sites were discovered. The district of Chhattisgarh like Durg, Jashpur, Keskal, Bastar and Surguja consists of numerous rock art. Few important rock arts discovered by different experts are Kulgaon, Alor, Guraoudi, Khairkheda, Gotitola, Sita ramguda, Udkhuda, Kanhagaon and Chandeli. Likhaarra, Rengle, Jaimarga and Tamta consists rock arts in Jashpur region. These rock arts consists animals figurines, anthropomorphic figure, palm prints and geometrical designs. "Dancing elements of Indian rock art painting with special reference to Chhattisgarh, in Kosala"2008 by Kulbhushan Mishra;the author has discussed about the dance form depicted on the rock arts. "Sarangarh Tahsil ke Chitrit Shailashraya" was a paper written by Bharti Shorti, has shed light on the magnificent rock arts of Sarangarh and Raigarh in 2009.

Aim of study :- The study of rock art will enlighten the history of the northern part of the Chhattisgarh. As far no work has been done in the field of prehistory, this rock art site will reconstruct the history of Balrampur region. The history of Balrampur is known till the historical period as there is the temple remains scattered in Dipadih, but the study of prehistory will add a new subject to the history of Balrampur region. The study of this rock art will ensure that there was the settlement of prehistoric man in this region.

Research methodology :- This research paper consists of primary data, excessive field work and interpretation has been done by the people of tribal communities. Documentation work also has been done of this site. The Documentation consists of measurement, analysis of the figures and importance of rock arts in the tribal communities. The rites and rituals of the tribal community have been discussed in this paper, which is still followed by the tribal people.

Analysis :- Rock arts are the platform to understand the human behavior and it is the authentic records of various periods from Stone Age.[4] This art is a mirror of human mind, which show the sequence of the human development.

There are two rock art sites present in the small village named Kotwaritarn, the latitude and longitude is 23º36´16.62´´ north and 83º37´4.97´´ east. This small village is situated in Sindur village, Ramanujganj block, Balrampur district. The village resides beside the Sidur River. The first rock art site is located in the "Gobar Manda". According the tribal people the ward 'Manda' means 'shelter'. The shelter faces towards the east direction. There is a nala namely "Lehada" which flows near the mountain which consist of a rock art. The used for the painting is red color. The rock art consists of various scenes like hunting, ritualistic, reproduction and domestication. The panel 1 consists of the amphibian along with the human. In panel 1 there is the depiction of two tortoises, four legs could be seen and lines are drawn on the back. A human figurine is also drawn along with the tortoise. The human is holding hunting tools in his hand. The big tortoise is about 23 cm, whereas the small tortoise is about 12cm. the human is measuring 18cm. Panel 2 consists hunting scene, there are deer, human and an unidentified figure. The deer are depicted in a

straight line, one after the other. And the human is behind the deer holding bow and arrow in his hand. The deer are measuring 11cm, 11cm, 13cm, 12cm and 10 cm. Panel 3 consists of unidentified figures. One figure seems to be an animal. Panel 4 consists of the ritualistic scene; it seems that prehistoric man is performing some rituals. In this panel an altar is drawn along with two wheels like structure, and in between a pole is made. On the pole four animals are hanged, namely two bulls (20cm and 27cm)and on the other side two elephants are hanged (23cm and 25cm). Below the animals there is the depiction of four men (17cm, 17cm, 13cm, and 13cm). A man is depicted above the animals, he is raising his both hands, it seems that he is performing some rituals. In panel 5 there is same depiction as panel4. There is an altar consisting of two wheels like structure and a pole drawn in between the altar. There are four animals hanged on the pole namely, two bulls and two elephants. There is a man raising his hands towards the sky and praying to god or performing some rituals. The other man is beside that man and holding hunting tools. Panel 6 there is a fig of man; he is having head gear on his head. His both hands are open straight. Next to him to men are depicted with head gear on his head. Then there is man raising his hand towards the sky, it seems that he is praising god. I panel7 consists of two men dancing by facing other. In panel8 one man is standing straight by raising his hands. In panel 9 domestication scenes are depicted, the panel consists of human figurine with head gear. Surrounded with three humped bull, next to these bulls there are two bulls facing each other. In panel 10 there is the depiction of reproduction, an animal (17cm) is depicted by a baby inside her womb. There are small animal babies (9cm, 8cm, 6cm) are drawn along with mother.A human is standing in front of the animals. There is a depiction of wild rabbit in pannel11. In panel 12 there is the depiction of eight humped bull. In panel 13 there is the depiction of human wearing head gear on his head, his hand is on his waist. Apart from these figures there are figures of a human sitting on the elephant, a geometrical design, humped bull, a man holding bow and arrow, figure of fox, figure of wild boar and sun. microliths tools are found as the associated material along with the rock art. There are point, scraper and core of the tools etc.

The next rock art site was named as “Bael Gutra”, latitude and longitude is 23º41´45.08´´ north and 83º34´12.44´´ east. The shelter is in the west facing direction. The rock painting consists of human figurine and figures of animals. The paintings are done in red color. The painting consists of a man (8cm) holding bow and arrow. It seems that he is ready for hunting. The next figure is an altar; it consists of two wheels having 17 and other 16 spokes. On the middle of the wheels there is a box like structure which consists of two vertical lines and five horizontal lines. The painting consists of a rectangle box which consists of three vertical lines and four horizontal lines (10×7cm). There is a mythical human present in this painting, the human consist of the animal head and body is of human being. The painting consists of an unidentified animal; the animal is made by line drawing. The animal is presented by legs and tail. There is picture of squirrel in red color. The rock art consists of unidentified figure, it looks like a triangle from head side and consist of two legs. A human is depicted as hunter, holding bow and arrow. The figure of horse is also depicted in this rock art. Two humans are made by line drawing. A human is made as geometrical design, two triangles are made, one from upside and the other from below. The point of both triangles touches each other; two legs are made in L shape, both facing on opposite direction.

Conclusion :- During the exploration of Sindur we came to know that, the name Sindur derived from the red color of the paintings as well as the color of the mountain is also red (red sand stone). We have discovered two rock arts in village namely “Gobar Manda” and Bael Gutra”. These two rock art depicts the hunting scene as well as the rituals of prehistoric times. The prehistoric man

was fond of rituals after hunting and before hunting. The man hunted wild animals and then performed rituals by constructing and altar. This painting also shows the availability of deer, elephant and humped bull in this area.

Due to lack of preservation these paintings are getting destroyed, continuous rainfall, heat and cold (climatic condition) on the figures, making them fade each day. These paintings are very important for the chronological history of Balrampur. The rock art of Sindur village shows the prehistoric settlement of mankind in this region. So the human activity could be seen from prehistoric time till toady in this region. The rock art should be analyzed by the comparative study with tribal art, so that we may get the better result about the hidden facts and figures of the rock arts.[5]

Pannel - 1

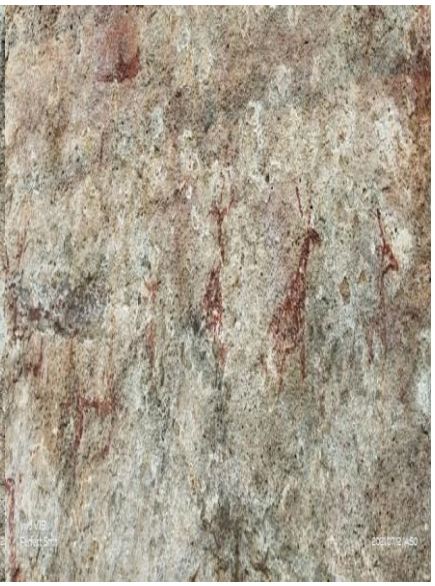

Pannel - 2

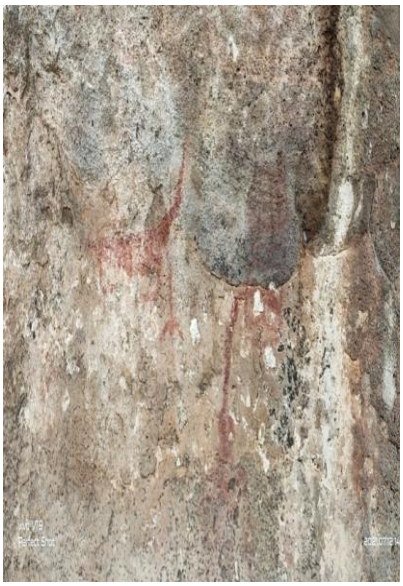

Panel - 3

Panel - 4

Panel - 5

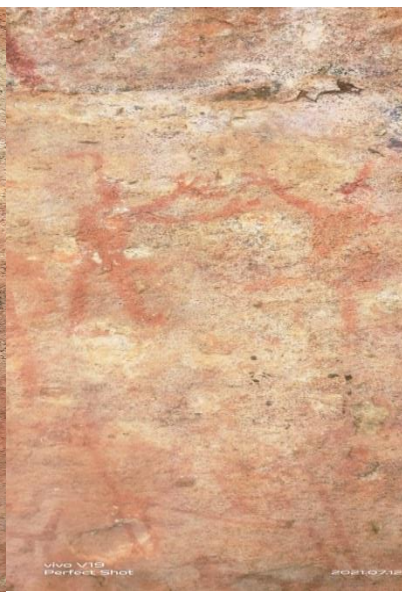

Panel - 6

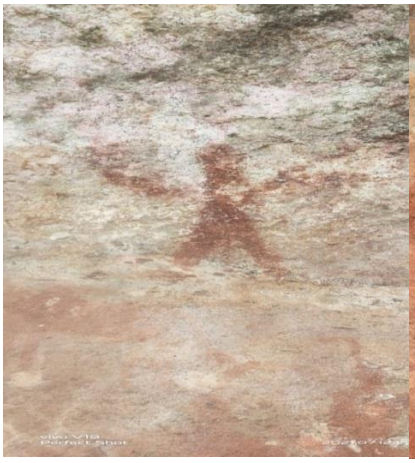

Panel - 7

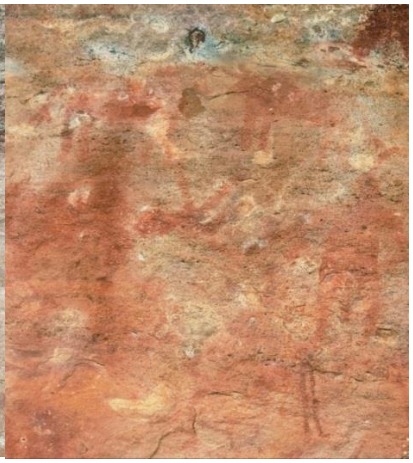

Panel - 8

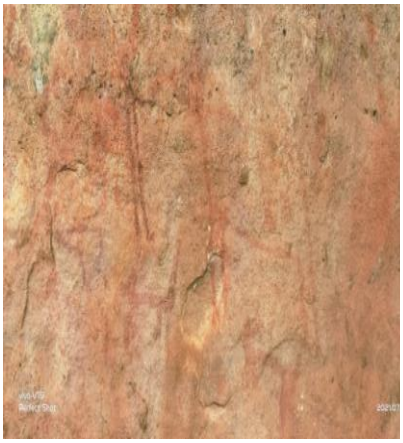

Panel - 9

Panel - 10

Panel - 11

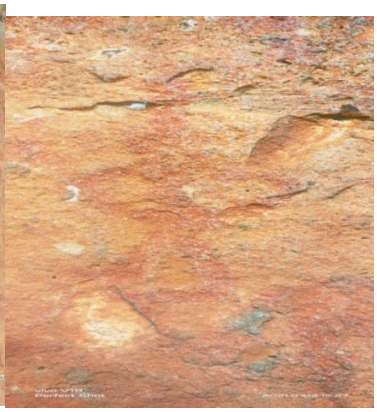

Panel - 13

Panel - 12

References :-

1. Ghosh A, "An Encyclopedia Of Indian Archaeology", Vol 1, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt Ltd, New Delhi, pp282.
2. Pandey Jai Narayan, "Puratatwa Vimarsh", Prachaya Vidhya Sansthan, Allahabad, (1983) pp223.
3. Anderson, CW, "Rock painting in Singhanpur", Journal of Bihar and Orrisa Research Society (1918), 298.
4. Kumar Giriraj, "Rock Art of India), Sharda Publishing House, New *Delhi*, (2015), pp19.
5. Chakraverty Somnath, "Early Rock Art and Tribal Art in India", B.R. Publishing Corporation, New Delhi, (2018),

Case Study : Developing Theory Of Mind In Students With Autism Having Intellectual Disabilities Using Ict Social-Story

Diana Lil Philip*

Jayanti Pujari**

Abstract :- The study was on a self-developed instructional ICT based digital social story module as an intervention for improving Theory of Mind, described as perspective taking; for students with Autism having intellectual disabilities. The study included five students in the age group of 8-16years and observations noted in exploratory, mixed method case study design. The module was designed under five domains - facial expressions, desire-based emotion, seeing leads to believing, line of sight, and perception based action; where 30 individual sessions were given using various devices in school setting for a period of one month. The results indicate significant increase in overall theory of mind abilities, with the consolidated percentage of abilities at entry level at 23.63% and 48.5% at exit level. All the samples show highest improvement in the domain of 'line of sight', with the consolidated percentage increase from 4.38% score at entry level and 18.13% score at exit-level. However, the least improvement secured in 'perception based action' domain, with the consolidated entry-level score at 25.63% and the exit level score at 45.63%. Further, the module will help parents, teachers or professionals working on development of theory of mind abilities in students with autism having intellectual disability.

Keywords :- Students with Autism having intellectual Disabilities, ICT based digital module, Social Story, self-instructional, Theory of mind.

Introduction :- The characteristic features of Autism as studies have proven; observed in the early years of the child's life with marked deficiency in social communication. These students remain to have challenges to perceive and exchange based on emotions, seem passive towards the social event and are aloof (Smyke et al. 2002). Social problems seen in autism include gaze avoidance and absence of joint attention (sharing with caregiver the experience of the third object) (Baron-Cohen 1995). Theory of mind is considered to be the ability of a person to perceive & comprehend his own intentions and with reference to that of others. (Yun Chin & Bernard-Opitz, 2000).

Practitioners working in providing interventions for students with Autism have over the years understood the relevance of creating exposure and simulated scenarios to improve their social understanding and effective dealing with it. Social stories was coined by Carol Gray (2019), who described a Social Story to be a plot or a script that attempts to explain a social situation. It is the social and perceptual skills required to identify the situation, possible outcomes of the situation based on the responses seen or models the acceptable response to the situation or demonstrated a concept.

Kokina and Kern (2010) in their meta-analysis comprising of 18 single subject studies social stories as an intervention. It was found that social stories were more effectual when reducing problematic behaviour. With autism, it is known that they are visual learners, ICT based modality not only digitises the experience but also permits a simpler and more efficient means of creating near to real realities with its wide variety to tools- like video imaging, audio feedback, text and audio back up. ICT based digital module is any use of technology interface in intervention delivery; not only creates a wide resource for intervention but also permits the service provider to edit and update the intervention system as per the pace of the learner. "Information and communication technologies (ICT) is defined as a diverse set of technological tools and resources used to transmit, store, create, share or exchange information. Social stories are a handy tool to

*** Research Scholar, Amity Institute of Rehabilitation Sciences, Amity University, Noida**

**** Professor, Amity Institute of Rehabilitation Sciences, Amity University, Noida**

document and create direct intervention to the targeted behaviour unique to the person and effective management of the same with structured pattern.

Purpose Of The Study :- In individuals with autism, Theory of Mind abilities are vital for interpreting a person's behaviour and actions within a cognitive framework, and through a novel understanding of the immediate environments. Computer Assisted Technology based intervention was found to increase the number of verbal and physical responses during play and in teaching complex social sequences in a relatively short time, evading time-consuming chaining procedures (Ploog et al. 2013). There is clear research evidence support the use of computers in the intervention and education of persons with autism has advantages in terms of cultivating motivation and treatment reliability (Ploog et al. 2013).

To examine the efficacy of the ICT based module, the researcher undertook the study examine whether the ICT based digital story module will be effective for development of Theory of mind; and its domains- "*facial expression*", "*desire based emotion*", "*seeing leads to knowing*", "*line of sight*" and "*perception based action*" for students with Autism having Intellectual Disabilities.

Methodology :- For the present study the exploratory piloting case study design on person specific subjects using mixed method research was conducted to examine the efficacy of ICT based digital social story module for the development of Theory of Mind.

The Scale - ICT Based Digital Social Story Module :- A self-developed ICT based social story module was used; to illustrate social scenarios true to a student with autism having intellectual disabilities. The student is expected to respond to a situation on the basis of emotion, desires, line of sight and perception based emotion; depicted with 5 activities in each domain; with additional 3 activities for samples with higher abilities. At each level, the module provided 4 chances for the student to respond correctly, 4 being the highest score and 0 being lowest.

Figure 1. Samples of illustrations of ICT based digital social story module

Domain1- Recognition of Facial Expressions: in this domain 3 basic emotions that students can identify, namely- happy, sad, and angry were taken. This domain is meant as a superficial training so that the students are able to participate in the programme and respond.

Domain 2- Desire-Based Emotions: it is concerning the understanding that emotions are connected to desires such as, people will be happy when the situation is pleasant or sad if the situation is unpleasant. This is responded by matching pleasant objects or situations to happiness; matching given situations to sadness; and at higher level to matching the given situations to anger.

Domain 3: Seeing Leads to Knowing: in this stage the ability is to perceive the social event and participate when it is referred to in later point of time. The difficult level increases with respect to displacement of materials or series of events.

Domain 4: Line of Sight: at this stage the concept suggested is that people will have different visual perspectives based on physical positioning to an object.

Domain 5: Perception Based Action –this involves inferring of emotions in the context of actual events for individuals and groups. The student is to identify a situation and able to respond with appropriate action to be taken. The response will be recorded as pass or fail.

Participants :- For this exploratory piloting case study, 5 samples were identified from the sample pool who were diagnosed with Autism having intellectual disabilities; age ranging from 8-16 years; attending special schools; considered due to their resemblance with reference to their similar condition and similar

functioning. It was ensured that the samples had some exposure to basic use of ICT on any of the devices- smart phones, laptops, or smart boards.

Table 1. Details of participants of the study

Sample	Age (years)	Gender	Disability	Setting	Modality of intervention
Case 1	8 years 3 months	Male	Autism with Intellectual Disability	Special School	Laptop
Case 2	9 years	Male			Laptop and Smart board
Case 3	15 years	Male			Phone
Case 4	15 years	Female			Laptop and Smart board
Case 5	16 years	Female			Laptop and smart board

Implementation

Each sample was given individual 30 sessions of 30 minutes to observe the use of the module, time taken for responses, possible hurdles in understanding the visuals seen and any technical concerns in using the test. Responses were recorded on the bases of the ICT based social story module base line of response delivery at entry level and on completion of the intervention duration of one month.

FINDINGS :- It is attempted to closely describe the intervention with each student and to assess the impact of the intervention in the lines of response to investigator, response to module and overall efficacy of the ICT based Digital module on development of theory of mind, general behaviour and overall performance in the duration of the study. The student was given intervention for 30 sessions in all.

Case 1 Sample was a male student of 8 years with no physical limitations. The student had limited vocabulary and was receiving intensive speech training. The schedule was designed to have off seat activities and sensory integration activities in regular intervals along with functional academics, time selected after his tiffin break allowing the module to be treated as a leisure activity for the student. The student has impulsivity, making it a challenge to retain the student in front of a smart board to use the module. It was decided to train the student seated in a secure workstation using a laptop and allow intermittent breaks in the between with toys and other paper based activities. There was improvement in the on-seat work behaviour longer in duration as compared to the level in the beginning of the intervention.

Case 2 Sample was a male student of 9 years with no physical limitations with echolalia to vocalize instructions which may not be relevant to the situation. Sessions were usually designed to encourage the student to read the instructions from the module and vocalise what response he would feel is fit for the task at hand. The student would respond to reinforcement with eye contact to the speaker. It was vital that the teacher be present at all times with the investigator during the intervention. The student had difficulty to accept new persons in his immediate surroundings, however the behaviour management goals was to encourage the student to greet and interact with shadow support of the teacher.

Case 3 Sample was a male student of 15 years with no physical limitations. The student had echolalia and makes rhythmic sounds while working. The student was given pre-vocational training and basic computer training to type words and sentences, save the document and print the document. The student showed resistance verbally when given impromptu task allocation or change in materials, environment and change in person giving instructions. The student could attempt the module with least prompts from the investigator. However, continuation of task was only achieved when the student has no other triggers or concerns and can focus on the task at hand. The student has been given behaviour modification to manage his aggressive outburst instead of successfully vocalisation of concerns.

Case 4 Sample was a female verbal student of 15 years with no limitations on speech and physical functioning. The student was easily anxious when repeatedly asked to perform new tasks. The student enjoys interacting with others and very talkative towards new persons. The student was taught on open schooling curriculum along with basic computer skills. The student was seen to constantly talk with slight provocation. The student was attention seeking and demands teacher's attention and approval at all times and interferes with the teacher's interaction with others. However, having been included in the study the student felt motivated to control her behaviour. The intervention was used as a reward for the student on controlling her behaviour as she was interested in using the smart board.

Case 5 Sample was a female nonverbal student of 16 years with abilities of sound production but no articulation; most responsive to hands on activities and therapy activities. The student was training for independence on personal skills and home management skills apart from functional academics on request of the parents. Being non-verbal and required the investigator to physically prompt to participate in the session

and explain the activity level each time using voice modulation and translation as applicable. The student required immense amount of reinforcement and prompts to function in the session with intermittent breaks. The student would leave the session without warning to pursue play or idly sit in a place with some body-rocking.

Data Representatıon Table 2. Individual score on ICT based digital social story module

Sample	Assessment Period	Intervention Domains of Perspective Taking Abilities – Theory of Mind					Total Score	Score in %
		Facial Expression	Desire Based Emotion	Seeing Leads to Knowing	Line of Sight	Perception Based action		
		(Max Score 32)	(Max Score 32)	(Max Score 32)	(Max Score 32)	(Max Score 32)	(Max Score 160)	
Case 1	Entry	18	10	0	0	9	**37**	23.13
	Exit	24	20	8	6	15	**73**	45.63
Case 2	Entry	15	8	2	0	9	**34**	21.25
	Exit	28	20	8	3	13	**72**	45.00
Case 3	Entry	10	13	5	5	10	**43**	26.88
	Exit	26	21	10	11	13	**81**	50.63
Case 4	Entry	10	17	15	0	7	**49**	30.63
	Exit	24	26	30	4	18	**102**	63.75
Case 5	Entry	10	4	4	2	6	**26**	16.25
	Exit	20	12	9	5	14	**60**	37.50

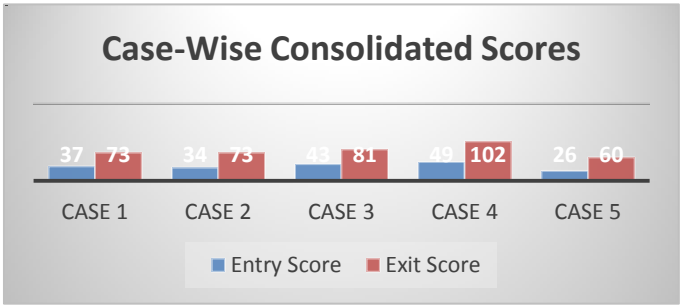

Figure 2. Consolidated scores of participants wise

In table 1, the scores of each case is tabulated to find the development of the skills at each domain at entry level and then at exit level of the intervention. All the samples scored poorly in 2 domains of seeing leads to knowing with score 0 at entry level for 2 samples. Highest percentage of development is seen in case 4 who achieved 63.75% on the module, second highest score for case 3 at 50.63%; and case 1 and case 2 with 45% achievement at exit level.

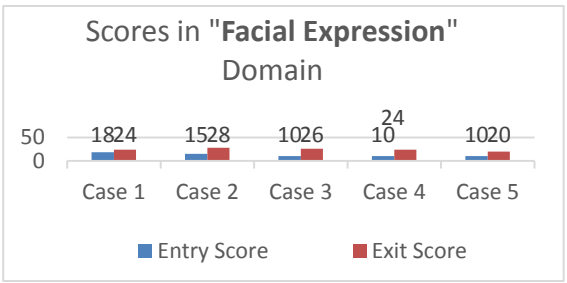

Figure 3. Depiction for facial expression domain

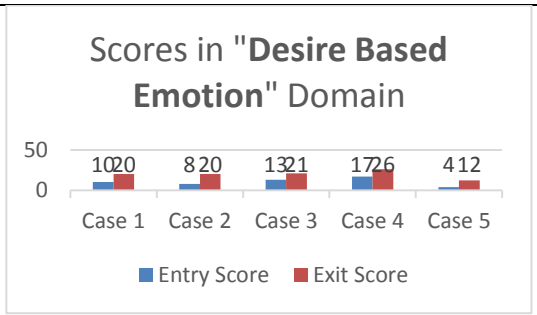

Figure 4. Depiction for desire-based emotion

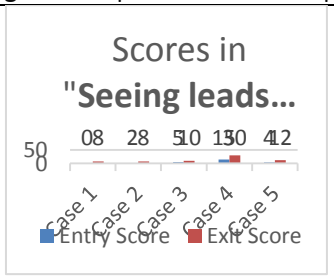

Figure 5. Depiction for seeing leads to knowing

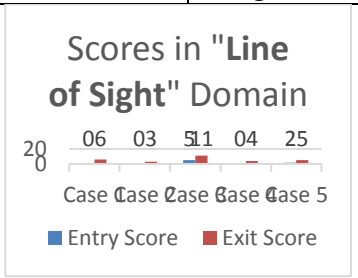

Figure 6. Depiction for line-of-sight domain

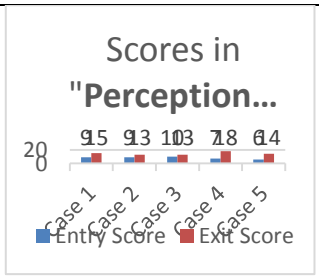

Figure 7. Depiction for perception-based action domain

Table 3. Total score on ICT based digital social story module

Assessment Period	Facial Expression (Max Score 160)	Desire Based Emotion (Max Score 160)	Seeing Leads to Knowing (Max Score 160)	Line of Sight (Max Score 160)	Perception Based Action (Max Score 160)	Total Score (Max Score 160)
Entry	63 (39.38%)	52 (32.5%)	26 (16.5%)	7 (4.38%)	41 (25.63%)	**189 (23.63%)**
Exit	122 (76.25%)	99 (61.88%)	65 (40.63%)	29 (18.13%)	73 (45.63%)	**388 (48.5%)**

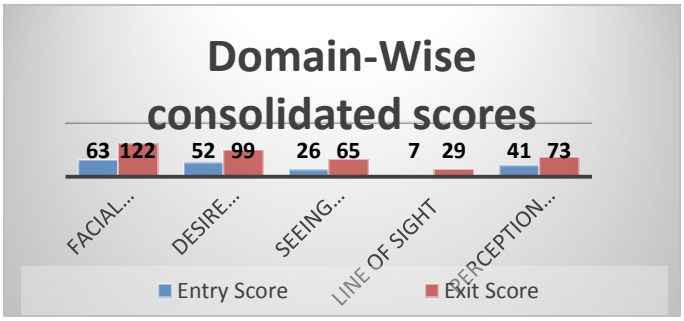

Figure 8. Domain wise consolidated scores of participants

In table 2, the scores revealed the cumulative domain wise progress of the samples when provided the intervention using the ICT module. In the order of scores of the domains, it revealed that the samples achieved a consistent development in all the domains, and the highest improvement was in the domain of 'line of sight', with the consolidated percentage increase from 4.38% score at entry level and 18.13% score at exit level. The second highest improvement among the samples was seen in the domain of 'seeing leads to knowing' with an entry level score of 16.5% and the exit level score of 40.63%. The domain of 'facial expressions' was the next to achieve a significant improvement from the ICT based module, with an overall entry level score at 39.38% and the exit level score at 76.25%. The two domains that showed the least improvement from the intervention were 'desire based emotion' and 'perception based action'. The second lowest improvement was seen in the 'desire based emotion' domain, with an entry level score of 32.5% to exit level score of 61.88%; and the lowest percentage of improvement was seen in 'perception based action' where the consolidated entry level score was at 25.63% and the exit level score was 45.63%.

The study results indicate that there was significant increase in overall theory of mind abilities of all the 05 cases, with the consolidated percentage of abilities at entry level at 23.63% and 48.5% at exit level.

Table 4. Individual engagement strategies

Sample	Management of Adaptive Behaviour and Learning					Management of Maladaptive Behaviour				
	Shaping	Modelling	Prompting	Fading	Reinforcement	Extinction	Differential reinforcement of Alternate Behaviour (DRA)	Differential Reinforcement of Other behaviour (DRO)	Differential Reinforcement of Low Rate behaviour (DRL)	Token Economy
Case 1	✓	✓	✓		✓	✓	✓			✓
Case 2	✓				✓				✓	✓
Case 3		✓	✓			✓	✓		✓	
Case 4		✓	✓	✓		✓		✓		✓
Case 5	✓	✓	✓		✓		✓	✓		✓

The strategies and techniques for management of behaviours were selected based on their existing ongoing IEP and individualised behaviour modification plans.

Discussion :- Through the study, it revealed that theory of mind development, which is understood as perspective taking of a person in an immediate social setting. The results show that the domain of facial expressions (total score percentage at 76.25%) was best performed by the samples and line of sight being the least preferred domain (total score percentage at 18.13%) as the current deficit of perspective taking interferes in acquiring the skill. In the study the observations were made in lieu of the usage of ICT based digital social story module for teaching perspective taking; the module was effective due to the visual stimulation with the use of animation. As the students with autism prefer visual medium of instructions, the samples were comfortable in the intervention. However, disinterest would develop easily with successive failures & leading to discontinuation of session.

Conclusion :- In the light of the study, results show that the ICT based digital social story module can be considered to be a successful alternative modality to make the therapist- student interaction effective. Also,

the domain of line of sight was identified from which the onset of deficit is identified in theory of mind of students with autism having intellectual disabilities; which should be supplemented with traditional teaching methods. The module also permits creation, adaptation; and presentation of novel social scenarios that need repeated exposure for the student to perceive the elements of the social situation and act effectively as per his/ her participation. However, it does not remove the role of the therapist or caregiver in the training package as it is an augmentation to the existing therapy modality.

References :-

1. Baron-Cohen S (1995). The eye direction detector (EDD) and the shared attention mechanism (SAM): two cases for evolutionary psychology. In: Moore C, Dunhan PJ, editors. Joint attention: its origins and role in development. Hillsdale: Erlbaum; 1995. pp. 41–59.
2. Erle, T. M., & Topolinski, S. (2017). The grounded nature of psychological perspective-taking. *Journal of Personality and Social Psychology, 112*(5), 683-695. doi:10.1037/pspa0000081
3. Gray, C. (2015, October 23). What is a Social Story. Retrieved June 01, 2019, from https://carolgraysocialstories.com/
4. Golzari, F., Hemati Alamdarloo, G., & Moradi, S. (2015). The effect of a social stories intervention on the social skills of male students with autism spectrum disorder. *SAGE Open, 5*(4), 215824401562159. doi:10.1177/2158244015621599
5. Hutchins, T. (2007, November 30). Test-retest reliability of a theory of mind task battery for children with autism spectrum disorders. Retrieved November 08, 2021, www.eric.ed.gov/?id=EJ817767
6. Kanner, L. (1943). Autistic disturbances of affective contact. *Nervous Child, 2*, 217–250.
7. Kloo D., Perner, J., & Gritzer, T. (2010). Object-based set-shifting in preschoolers: Relations to Theory of Mind. In B. W. Sokol, U. Müller, J. I. M. Carpendale, A. R. Young, & G. Iarocci (Eds.), Self and social regulation: Social interaction and the development of social understanding and executive functions (pp. 193-217). New York, NY, USA: Oxford University press.
8. Nikopoulos, C. K., & Keenan, M. (2006). Using video modeling to teach complex social sequences to children with autism. *Journal of Autism and Developmental Disorders, 37*(4), 678-693. doi:10.1007/s10803-006-0195-x
9. Ozdemir, S. (2010). Social Stories: An intervention technique for children with autism. *Procedia - Social and Behavioral Sciences, 5*, 1827-1830. doi:10.1016/j.sbspro.2010.07.372
10. Parsons, S. (2015). Learning to work together: Designing a multi-user virtual reality game for social collaboration and perspective-taking for children with autism. *International Journal of Child-Computer Interaction, 6*, 28-38. doi:10.1016/j.ijcci.2015.12.002
11. Peters, L., & Thompson, R. (2018, January 29). How teaching perspective taking to individuals with autism spectrum disorders affects social skills: Findings from research and suggestions for practitioners. Retrieved November 08, 2021, from https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC6269388/
12. Ploog, B. O., Scharf, A., Nelson, D., & Brooks, P. J. (2012). Use of computer-assisted technologies (CAT) to enhance social, communicative, and language development in children with autism spectrum disorders. *Journal of Autism and Developmental Disorders, 43*(2), 301-322. doi:10.1007/s10803-012-1571-3
13. Smyke, A., Koga, S., Johnson, D., & Zeanah C. (2002). The caregiving context in institution reared and family reared infants and toddlers in Romania. Retrieved November 08, 2021, from https://www.scirp.org/(S(351jmbntvnsjt1aadkposzje))/reference/referencespapers.aspx?referenceid=2370016
14. Sokol, B. W. (2010). Object-based set-shifting in preschoolers: Relations to Theory of Mind. In *Self and social regulation: Social interaction and the development of social understanding and executive functions* (pp. 193-207). Oxford: Oxford University Press.
15. Tryon, A. S., & Keane, S. P. (1986). Promoting imitative play through generalized observational learning in autisticlike children. *Journal of Abnormal Child Psychology, 14*(4), 537-549. doi:10.1007/bf01260522
16. Understanding autism spectrum disorders: Frequently asked questions. (2016, September 06). Retrieved November 08, 2021, from https://yapko.com/understanding-autism/
17. Van der Paelt, S., Warreyn, P., & Roeyers, H. (2014). Social-communicative abilities and language in preschoolers with autism spectrum disorders: Associations differ depending on language age. *Research in Autism Spectrum Disorders, 8*(5), 518-528. doi:10.1016/j.rasd.2014.01.010
18. Yun Chin & Bernard-Opitz (2000) Teaching conversational skills to children with autism: Effect on development of a theory of mind. vol. 30, no. 6, pp. 569–583. *Child Psychology and Psychiatry Review, 6*(4), 194-198. doi:10.1017/s136064170133277x

पत्रिका में शोध-लेख प्रकाशन की अनिवार्य शर्तें

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।
2. अपने शोध–लेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पी.डी.एफ. फाइल बनाकर सी.डी. या डी.वी.डी. में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचन दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचन दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।
3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**
4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों/आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।
5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।
6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।
7. शोध–लेख के लिए 2000–2500 शब्द–सीमा निर्धारित की गई है, अतः शब्द–सीमा का ध्यान रखें।
8. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों/आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

Essential conditions for publication of research articles in the journal

1. The research article sent by you should be original, quality, worthy of publication and unpublished, and the **Author's Declaration Form** issued by **Aalochan Drishti** must be filled.
2. To send CD or DVD of your research articles Word & PDF File, with hard copy (Hindi & Sanskrit in **Kruti Dev 10 Font** and English in **Times New Roman Font**) at the address of **Aalochan Drishti**. If you want the Acceptation Letter of your dissertation/article, then write your name, address with pin code in an envelope, to affixing required speed post postage stamp and No unnecessary call for 3-4 months from any officer/ Member of Aalochan Drshiti. If there is a need to talk to any Officer/Member, then contact between 6.00-8.00 in the evening.
3. Mobile number, e-mail and address should be mentioned in the research paper/article.
4. The research-articles will be examined by the **Editorial Board** and **Aalochan Drishti -Family**, only after that the research articles/articles will be published, in which the decision of the **Editorial Board** will be final and binding.
5. Research articles should be as per **UGC standard** and in the **Bibliography** the name of the book, the name of the author, the name of the publication, the edition-year and page number and for the reference of the journal, its issue, year, page number etc.- fixed must be clearly marked. Otherwise, the **Bibliography** of the article will be considered misleading.
6. Subscription may also be required from writers, readers and critics for the publication of the magazine, because the magazine is not receiving any grant or contribution.
7. 2000-2500 word limit has been set for the research article, so keep in mind the word limit.
8. Preference will be given to conceptual research articles/articles in the journal rather than survey.

-Editor

'आलोचन दृष्टि'-परिवार की ओर से
भारत के पहले रक्षा प्रमुख 'जनरल बिपिन रावत' को
भावभीनी-श्रद्धांजलि

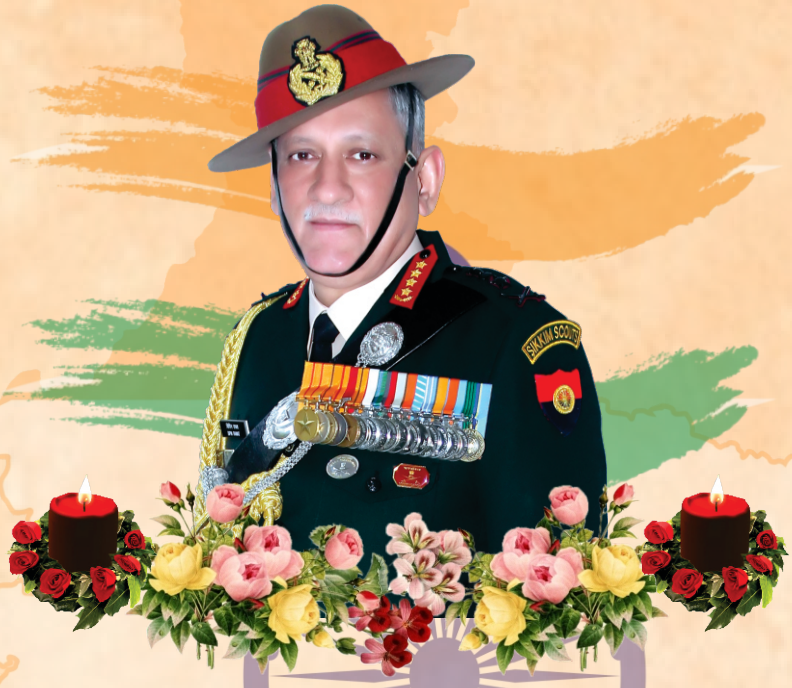

(16 मार्च 1958- 8 दिसंबर 2021)

(8 दिसम्बर, 2021 को हैलिकाप्टर-दुर्घटना में 63 वर्ष की आयु में आकस्मिक निधन)

'आलोचन दृष्टि'-परिवार 'देश के गौरव', 'भारत के अमर सपूत' एवं 'भारत के पहले रक्षा प्रमुख' (चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ) जनरल बिपिन रावत के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है...।

हम सभी को जनरल बिपिन रावत के योगदान पर गर्व है, गौरव है, अभिमान है....। विपिन रावत अपनी एक ऐसी सशक्त पहचान बनाते हैं, जो उन्हें केवल सैन्य-शक्ति के शीर्षस्थ पद पर ही नहीं पहुँचाती, बल्कि अपने तमाम अध्ययन एवं चिंतन के बलबूते वे सैन्य अभ्यास से लेकर सेना के आवश्यक उपादानों की लगातार खोज एवं शोध भी करते रहे हैं, लगातार समस्याओं का समाधान करते रहे हैं और भविष्य की सुदृढ योजना भी बनाते रहे हैं...। आपकी श्रद्धांजलि हेतु मुझे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के कहे गये ये अन्तिम शब्द (हिन्दी में अनुवादित) याद आ रहे हैं-

जब वह सत्य खोज लेता है
कोई उसे वंचित नहीं कर सकता
वह उसे अपने साथ ले जाता है
अपने निधि-कोष में
अपने अंतिम पुरस्कार के रूप में....।

- डॉ. सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
दूरभाष : 09451949951 / 7376267327